Enduring Value

classmate

BECAUSE YOU ARE ONE OF A KIND

COLOURS

FLYING COLOURS

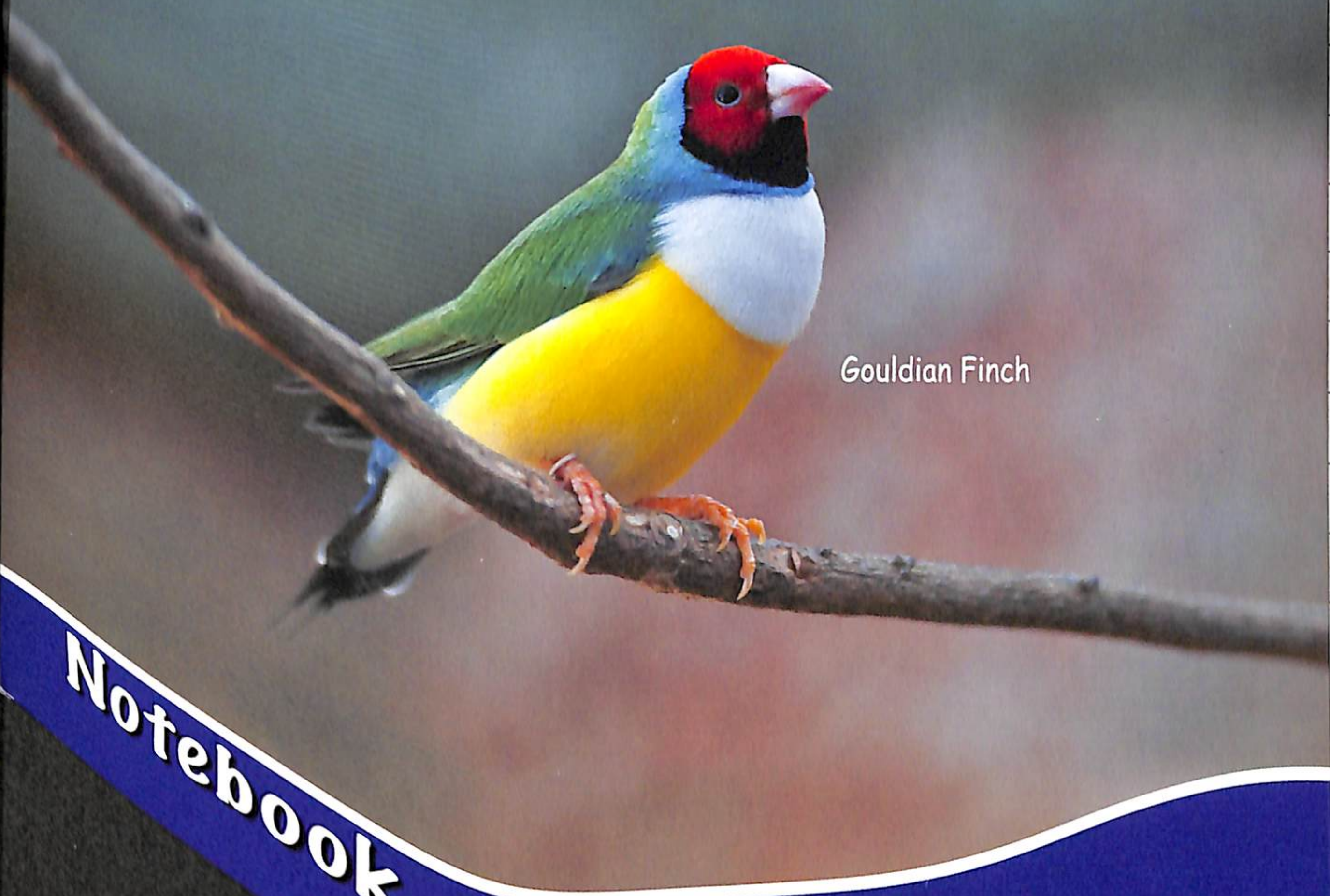

Gouldian Finch

Notebook

ॐ ह्रीं

INGIRAS ARYA

हिन्दी
प्राण-तोषिणी तन्त्र

अनुवादक

'कुल-भूषण' पण्डित रमादत्त शुक्ल, एम० ए०

SWAMI VEDA BHARATI
LIBRARY
Accn. No. 2848
Date 10.10.07

प्रथम संस्करण :: ज्येष्ठ पूर्णिमा २०४० वि०—२५ जून १९८३

प्रकाशक

पं॰ देवीदत्त शुक्ल स्मारक

शाक्त साधना पीठ

प्रयाग-६

अनुक्रमणिका

प्राक्कथन सात

सर्ग-काण्ड

१ पहला परिच्छेद : बीज-रूप-शब्द का प्रादुर्भाव १-४

[१ तन्त्र-शास्त्र की प्रशंसा एवं महत्व, २ तन्त्र-शास्त्र का अधिकारी, ३ कलियुग में तन्त्रोक्त कर्म से ही फल की प्राप्ति, ४ तन्त्र-वर्णन एवं श्रवण की प्रशंसा, ५ शक्ति की उत्पत्ति, ६ सृष्टि का विवरण, ७ तीन बिन्दुओं का कथन, ८ तीन शक्तियों का कथन, ९ ब्रह्मा, विष्णु और शिवादि की उत्पत्ति, १० शब्द-ब्रह्म की उत्पत्ति, ११ ब्रह्म के दो रूप।]

२ दूसरा परिच्छेद : शब्दार्थ-स्वरूप ब्रह्म एवं गर्भाक्षर-जात जगत् ५-१३

[१ शब्दादि का स्फोट-वाद, २ छत्तीस तत्वों, अष्ट-पाशों और जीव-शिव का निरूपण, ३ प्रणव का स्वरूप एवं पचास कलायें, ४ चन्द्र-सूर्याग्नि की अड़तीस कलायें, ५ वर्णोद्भूत विष्णु-रुद्र-स्वरूप और उनकी शक्तियाँ, ६ वर्णौषधियाँ और उनका उद्देश्य, ७ परम ब्रह्म का निरूपण, ८ वर्णों से नाना शास्त्रों की उत्पत्ति, ९ वर्णों से ग्रहों की उत्पत्ति, १० वर्णों से राशियों की सृष्टि, ११ राशियों के स्वामी और तीन राशि-चक्र, १२ वर्णों से नक्षत्रों की सृष्टि, १३ अमावास्या की उत्पत्ति, १४ नक्षत्र, वार आदि में जप, १५ जन्म-नक्षत्र में वृक्ष काटने का निषेध, १६ नक्षत्रों के देवता एवं योनि-भेद, १७ पक्ष-तिथियाँ और तिथि-स्वामी]

३ तीसरा परिच्छेद : चतुर्विध देह की सृष्टि १४-१७

[१ सृष्टि का वर्णन, २ लव आदि काल-मान, ३ तत्वों की सृष्टि, ४ पञ्च-भूतों की उत्पत्ति और उनका लय, ५ पञ्च-भूतों के गुण, ६ पञ्च-भूतों के मण्डल, वर्ण और स्वरूप, ७ पञ्च-भूतात्मक चार प्रकार की देह और त्रिवृत् या पञ्चीकरण, ८ उद्भिद् आदि की उत्पत्ति, ९ मनुष्य-जन्म की प्रशंसा।]

४ चौथा परिच्छेद : अन्न-मय-कोष-वाली मनुष्य-देह १८-२२

[१ गर्भ से देह की सृष्टि, २ शुक्र और शोणित से उत्पत्ति, ३ देह-सृष्टि में धातुओं का वर्णन, ४ इन्द्रियाँ और उनके अर्थ तथा गुण, ५ पञ्च-भूतों से अस्थि आदि की उत्पत्ति, ६ जन्तु (जीव) के लक्षण, ७ नाड़ियों की उत्पत्ति, ८ अस्थ्यादि की उत्पत्ति एवं नाड़ियों के मुख।]

५ पाँचवाँ परिच्छेद : मनुष्य का जन्म २३-२८

[१ शरीर में स्थित वायु का वर्णन, २ अग्नि के दश रूप, ३ शरीर की छः अवस्थायें और देह के दश कोष, ४ गर्भस्थ जीव की विशेष अवस्थायें, ५ इन्द्रियों में पाँच भूतों की अवस्थिति, ६ देह में चौदह भुवन एवं कुल-पर्वत, द्वीप, सागर, ग्रह, राशि, नक्षत्रादि, ७ शरीर में तीर्थ, ८ गर्भ से जीव का निकलना, ९ कुण्डलिनी से वर्णों की उत्पत्ति, १० जीव की पञ्च निश्चित बातें एवं एकादश अवस्थायें, ११ कर्मों के अनुसार स्वर्गादि की प्राप्ति ।]

६ छठा परिच्छेद : वर्णों की उत्पत्ति का क्रम २९-३५

[१ कुण्डलिनी का स्वरूप, २ अक्षरों की उत्पत्ति का क्रम, ३ काम और गणेश के ५० नाम तथा उनकी शक्तियाँ और ४९ क्षेत्रपाल, ४ वैखरी की सृष्टि, ५ वर्णोच्चारण की विधि, ६ ह्रस्व और दीर्घ स्वर तथा वर्णों का शिव-शक्त्यात्मक स्वरूप, ७ वर्णों का पञ्च-भूतात्मक रूप और 'मातृका' नाम ।]

७ सातवाँ परिच्छेद : वर्णों को मूर्ति-कल्पना और लिखने का ढङ्ग ३६-३९

[१ वर्णों की मूर्ति-कल्पना, २ भूमि पर वर्ण, मन्त्र, पुस्तकादि लिखने का निषेध, ३ लेखनी बनाने में शुभ-अशुभ का विचार, ४ पुस्तक का मान उसका वेधन, ५ पुस्तक के लिये शुभ पत्र, ६ वेद लिखने का निषेध, ७ लेखक की पूजा का फल, ८ पुस्तक लिखने में वेतन लेना निषिद्ध ।]

८ आठवाँ परिच्छेद : वर्णों के अभिधान (नाम) ४०-४५

९ नवाँ परिच्छेद : आम्नाय-भेद रूपी केशर ४६-४९

[१ मन्त्रों का प्रकरण, २ पृथ्वी पर तन्त्र का अवतरण, ३ पञ्चाम्नायादि भेद और 'भट्टारक' का अर्थ, ४ अष्टादश विद्याएँ, चतुर्वेद, उपवेद, वेदाङ्गादि, ५ शैव, पाशुपतादि शास्त्रों की उत्पत्ति, ६ आण्विक्षिकी-शास्त्र के अध्ययन से शृगाल-योनि, ७ तन्त्र के पञ्चाम्नायादि भेद, ८ आम्नाय-भेद से आचार-भेद, ९ तन्त्र और वेद का घनिष्ठ सम्बन्ध, १० अन्य सामान्य शास्त्र, ११ मातृका-वर्णों से मन्त्रोत्पत्ति और दो प्रकार के मन्त्र, १२ प्रयोग-विशेष की सिद्धि के लिये मन्त्रों के तीन विभाग, १३ कर्म-भेद के अनुसार मन्त्र की उपयुक्तता, १४ सुप्त और प्रबुद्ध मन्त्र ।]

१० दसवाँ परिच्छेद : मन्त्रों के फल का कथन ५०-६१

[१ मन्त्रों की 'छिन्न' आदि दूषित अवस्थाएँ, २ मन्त्र-शोधन की आवश्यकता, ३ मन्त्र-शोधन की विधि—महा-मुद्रा, ४ योनि-मुद्रा का वर्णन, ५ भूत-लिपि आदि द्वारा मन्त्र-दोषों की शान्ति, ६ भूत-लिपि की साधना-विधि, ७ भूत-लिपि के न्यासों का क्रम, ८ भूत-लिपि की पूजा विधि, ९ भूत-लिपि के प्रयोग का फल, १० मन्त्रों की दोष-शान्ति के लिये दश संस्कार, ११ बीजाभिधान (बीज-कोष) ।]

धर्म-काण्ड

१ पहला परिच्छेद : संस्कार-रूपी ग्रन्थि का वर्णन ६२-६५

[१ गर्भाधानादि दस संस्कार, २ शिशु की जिह्वा पर 'वाग्भव', तारा-त्र्यक्षरी, मूल-मन्त्र का लेखन, ३ यज्ञ-सूत्र का परिमाण, ग्रन्थन-विधि, ४ यज्ञ-सूत्र का जीव-न्यास, ५ दार (स्त्री) के परिग्रह की आवश्यकता, ६ दश-संस्कारों की प्रयोग-विधि ।]

२ दूसरा परिच्छेद : 'गुरु' का प्रकरण ६६-७६

[१ गुरु के लक्षण आदि, २ कुलीन गुरु की प्रशंसा, ३ गुरु, नाथ, आचार्य शब्दों के अर्थ, ४ गुरु के विशेष लक्षण, ५ गुरु की महिमा, ६ गुरु-मन्त्र-देवता की एकता, ७ गुरु के सन्तुष्ट होने का फल, ८ 'गुरु' शब्द के कहने का फल, ९ गुरु-शरीर में ब्रह्मा आदि की स्थिति, १० सबकी अपेक्षा 'गुरु' की श्रेष्ठता, ११ दीक्षा और शिक्षा-भेद से 'गुरु' के दो प्रकार तथा अन्य भेद, १२ गुरु का विशेष वर्णन, १३ स्त्री-गुरु के लक्षण और उसकी महिमा, १४ वर्जनीय गुरु का वर्णन, १५ शिष्य-शब्द की व्युत्पत्ति और लक्षण, १६ वर्जनीय शिष्य के लक्षण, १७ गुरु-आज्ञा का पालन, विरुद्धाचार या गुरु-द्रोह, १८ गुरु के सम्मान की विधि, १९ गुरु की प्रसन्नता का फल, २० गुरु-गृह में किये कर्म, गुरु-चरणों की धूलि और गुरु-पादोदक, २१ गुरु एवं गुरु-पुत्रादि के उच्छिष्टादि की महिमा, २२ गुरु के समीप क्या करे, क्या नहीं, २३ गुरु-भक्ति की महिमा, २४ शिष्य के कर्तव्य ।]

३ तीसरा परिच्छेद : गुरु-शिष्य-विचार से अंकुरारोपण तक के कर्म ७७-८२

[१ दीक्षा के पूर्व नाड़ी-नक्षत्र का विचार, २ दीक्षा-मण्डप के लिये भूमि-परीक्षा, ३ भूमि का शल्योद्धार, ४ 'अहि-चक्र' से शल्योद्धार और घनोद्धार, ५ अहि-चक्र का फलादेश, ६ शल्योद्धार की अन्य विधियाँ, ७ मण्डपादि की दिशा का ज्ञान, ८ मण्डप का निर्माण, ९ अंकुरार्पण आदि ।]

४ चौथा परिच्छेद : अधिवास की विधि ८३-८९

[१ दीक्षा का शब्दार्थ और उसकी महिमा, २ दीक्षा से ज्येष्ठता की प्राप्ति, ३ एक मन्त्र की साधना का फल, ४ दीक्षा के भेद, ५ अधिवास की विधि, ६ अंकुरार्पण का प्रयोग ।]

५ पाँचवाँ परिच्छेद : दीक्षा का वर्णन ९०-९७

[१ दीक्षा का विषय, २ पञ्च-देवादि की पूजा, ३ नव-ग्रह-मन्त्र और उनका पूजन-पुरश्चरणादि, ४ ग्रह-कवच स्तोत्र, ५ तिथि-पूजा, ६ पक्षों के ध्यान और मन्त्र, ७ तिथि-कवच-स्तोत्र, ८ अकारादि वर्णों का ध्यान ।]

६ छठा परिच्छेद : दीक्षा की विविध विधियाँ ९८- १०४

[१ क्रियावती दीक्षा का पूजन-क्रम, २ अध्वादि - शोधन - विधि, ३ अभिषेक-प्रकार, ४ अभिषेक का फल और उसकी विधि, ५ विनियोग एवं अभिषेक के मन्त्र, ६ आणवी दीक्षा, ७ वर्ण-मयी दीक्षा, ८ कलावती दीक्षा, ९ वेध-मयी दीक्षा, १० पत्र-रत्न दीक्षा, ११ प्रबल 'कलि'-लक्षण, 'कलि'-शान्ति के उपाय और 'कलि'-गुण]

प्राक्कथन

'कौल-कल्पतरु' पण्डित देवीदत्त शुक्ल की कामना थी कि संस्कृत में उपलब्ध तन्त्र-साहित्य हिन्दी में सुलभ हो जाय, जिससे सभी लोग तान्त्रिक साधना के सिद्धान्तों और उसकी वैज्ञानिक पूजा-पद्धति को हृदयङ्गम कर सकें। स्वयं उनकी देख-रेख में 'चण्डी' पत्रिका में 'शाक्तानन्द-तरङ्गिणी', 'कौलावली-निर्णय', 'बृहत् तन्त्रसार' और 'साधन-माला' नामक पुस्तक-माला के अन्तर्गत 'कुलार्णव तन्त्र' आदि के हिन्दी-अनुवाद प्रकाशित हुये, जिन्हें तन्त्र के जिज्ञासुओं ने बड़े चाव से पढ़ा और उनसे लाभ उठाया। इसी परम्परा को अग्रसर करते हुये पूज्य शुक्ल जी की पुण्य स्मृति में गत वर्ष पहले पहल **'महा-निर्वाण तन्त्र'** का विस्तृत हिन्दी-रूपान्तर प्रस्तुत किया गया। इस वर्ष पुनः एक दुर्लभ एवं अत्युपयोगी संग्रह-ग्रन्थ **'प्राण-तोषिणी तन्त्र'** का हिन्दी-रूपान्तर तन्त्र-प्रेमियों के लाभार्थ प्रकाशित किया जा रहा है। यह ग्रन्थ वर्षों से अप्राप्य रहा है और इसका हिन्दी-सारांश विस्तार से पहली बार प्रस्तुत हो रहा है।

प्रस्तुत संग्रह-ग्रन्थ के प्रणेता श्री रामतोषण विश्वास का जन्म वङ्ग-प्रदेश के एक ऐसे ब्राह्मण-कुल में हुआ था, जो अनेक पीढ़ियों से तन्त्र-साधना में प्रवृत्त था। इसी कुल में इनसे सात पीढ़ी पूर्व सन् १५०० में श्री कृष्णानन्द 'आगमवागीश' का जन्म हुआ था, जिन्होंने सन् १५८० में शैव, शाक्त, वैष्णव, सौर, गाणपत्यादि सभी सम्प्रदायों के लिये उपयोगी-ग्रन्थ **'बृहत् तन्त्रसार'** की रचना कर देशव्यापी ख्याति अर्जित की थी। इस संग्रह-ग्रन्थ की उपयोगिता आज भी सर्व-मान्य है। श्री रामतोषण ने सन् १८२१ में बंगाल के प्रसिद्ध विद्या-प्रेमी जमींदार श्री प्राणकृष्ण विश्वास (१७६४-१८३४) के संरक्षण में उन्हीं की प्रेरणा से प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना की और उनके नाम के पूर्वांश **'प्राण'** तथा अपने नाम के अन्तिम पद **'तोषिणी'** को मिलाकर ग्रन्थ का नाम रखा **'प्राण-तोषिणी तन्त्र'**। इस तन्त्र में उन्होंने उन सभी विषयों का सङ्कलन किया, जिनकी चर्चा 'बृहत् तन्त्रसार' में नहीं हुई है। इस प्रकार यह ग्रन्थ एक प्रकार से उसी का पूरक-स्वरूप बन गया है।

'प्राण-तोषिणी तन्त्र' के सात काण्ड हैं—१ सर्ग-काण्ड, २ धर्म-काण्ड, ३ अर्थ-काण्ड, ४ काम्य-काण्ड, ५ भजन-काण्ड, ६ ज्ञान-काण्ड और ७ नैर्गुण्य-काण्ड। इन काण्डों में अनेक तन्त्रों और आर्ष ग्रन्थों के उद्धरणों के सङ्कलन द्वारा प्रतिपाद्य विषयों का प्रामाणिक विवरण प्रस्तुत किया गया है। ऐसे तन्त्रों के वचन भी इसमें उद्धृत हैं, जो अभी तक अप्राप्य हैं; जिनका केवल नाम ज्ञात है। यथा—पुरश्चरण-रसोल्लास तन्त्र, प्रयोगसार, परा-परिमलोल्लास, विश्व-सार तन्त्र, मातृकोदय, वामकेश्वर तन्त्र, ब्रह्म-ज्ञान,

ब्रह्म-यामल, वरदा तन्त्र, वर्णोद्धार-तन्त्र, भैरव तन्त्र, समयाचार तन्त्र, सम्मोहन तन्त्र, पिच्छिला तन्त्र आदि। उपलब्ध तन्त्रों के भी कुछ उद्धरण ऐसे हैं, जो उनके प्रकाशित संस्करणों में ढूंढ़े से भी नहीं मिलते। उदाहरण के लिये **'धर्म-काण्ड'** के छठे परिच्छेद (पृष्ठ १०४) में **'कामाख्या तन्त्र'** के ३२ वें पटल का उल्लेख है, जब कि वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित **'तन्त्र-संग्रह'** भाग ३ के अन्तर्गत जो कामाख्या तन्त्र छापा गया है, उसमें केवल नौ ही पटल हैं। वङ्गाक्षरों में प्रकाशित **'कामाख्या तन्त्र'** में भी मात्र ग्यारह ही पटल हैं। इससे पता चलता है कि 'कामाख्या तन्त्र' का आधे से भी कम अंश प्रकाशित हो पाया है। इस प्रकार 'प्राण-तोषिणी तन्त्र' से तन्त्र-साहित्य के अधिकाधिक शोध करने की आवश्यकता का प्रतिपादन होता है और उस दिशा में इसमें सङ्कलित दुर्लभ ग्रंथों से सहायता भी मिल सकती है।

श्री जीवानन्द विद्यासागर द्वारा प्रकाशित 'प्राण-तोषिणी तन्त्र' के तीसरे संस्करण के अनुसार इस ग्रन्थ की कुल पृष्ठ-संख्या लगभग ११०० है। यथा— १ सर्ग-काण्ड (दस परिच्छेद)......१४१ पृष्ठ २ धर्म-काण्ड (छः परिच्छेद)........१३५ पृष्ठ, ३ अर्थ-काण्ड (पाँच परिच्छेद)........१३६ पृष्ठ, ४ काम्य-काण्ड (सात परिच्छेद)......१७२ पृष्ठ, ५ भक्ति-काण्ड (सात परिच्छेद)......१६२ पृष्ठ, ६ ज्ञान-काण्ड (पाँच परिच्छेद)......१५४ पृष्ठ, ७ निर्गुण-काण्ड (पाँच परिच्छेद)......१५४ पृष्ठ, ओर परिशिष्ट......१० पृष्ठ। 'हिन्दी प्राण-तोषिणी तन्त्र' के इस प्रथम भाग में पहले दो काण्डों का सारांश दिया गया है। मूल ग्रन्थ में प्रमाण-ग्रन्थों का नामोल्लेख है, सभी परिच्छेदों में वर्णित विषयों का वर्णन है, काण्ड के आरम्भ और अन्त में लेखक के वंश का परिचय है—इस सबको छोड़ दिया गया है क्योंकि पाठकों के लिए इनका उनका महत्त्व नहीं है, फिर इन बातों का आवश्यक ज्ञान 'अनुक्रमणिका' एवं 'प्राक्कथन' में दिए तथ्यों से हो ही जाता है। इसी प्रकार मूल ग्रन्थ में जहाँ कहीं पुनरुक्ति-पूर्ण कथन हैं, उन्हें भी संयमित करने का प्रयत्न किया गया है।

सारांश लिखते समय यह ध्यान रखा गया है कि कोई भी महत्व की बात छूटने न पाये। फिर भी इस तन्त्र की उक्तियों की टीका करने का यह पहला प्रयास होने के कारण सम्भव है कहीं कुछ चूक हो गई हो। विज्ञ-जन यदि उसके लिये हमें सूचित करने की कृपा करेंगे, तो उसका परिमार्जन कर दिया जायेगा। मर्मज्ञ न होते हुये भी, तन्त्रों का हिन्दी-रूपान्तर का प्रयास हम इसी उद्देश्य से कर रहे हैं कि अधिकारी विद्वानों का ध्यान इस गहन विषय की ओर समुचित रूप से आकृष्ट हो। यदि ऐसा हुआ, तो हम अपने परिश्रम को सफल मानेंगे।

'प्राण-तोषिणी तन्त्र' के शेष काण्डों का साहित्य भी अत्यन्त ज्ञान-वर्द्धक है। श्री जगदम्बा की दया एवं तन्त्र-साहित्य-प्रेमी बन्धुओं की शुभ कामना के सहारे हम उन्हें भी निकट भविष्य में प्रकाशित कर सकेंगे; ऐसी आशा है। अस्तु।

प्रयाग
ज्येष्ठ पूर्णिमा २०४०

—'कुलभूषण'

श्रीगणेशाय नमः

हिन्दी प्राण-तोषिणी तन्त्र

सर्ग-काण्ड : पहला परिच्छेद

बीज-रूप-शब्द का प्रादुर्भाव

तन्त्र-शास्त्र की प्रशंसा एवं महत्व

तन्त्र, मन्त्र और यन्त्र के बिना भोग और मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती। देवों में जिस प्रकार विष्णु श्रेष्ठ हैं, जलाशय में सागर, नदियों में गङ्गा, पर्वतों में हिमालय, वृक्षों में पीपल (अश्वत्थ), राजाओं में इन्द्र, देवियों में दुर्गा और वर्णों में ब्राह्मण श्रेष्ठ है, उसी प्रकार सभी शास्त्रों में 'तन्त्र-शास्त्र' श्रेष्ठ है। जिस घर में 'तन्त्र' है, उसमें लक्ष्मी स्थिर होकर रहती है। शासक के द्वार पर, सभा में, युद्ध के बीच, निर्जन स्थान में, भयङ्कर बाढ़ में, पशुओं के बीच, 'तन्त्र' के द्वारा चमत्कार होता है।

तन्त्रागम में जो कर्म बताये गये हैं, उनकी उपेक्षा न करे क्योंकि ईश्वर द्वारा उनकी रचना की गई है। ज्योतिष, मन्त्रों की जिनमें चर्चा है अर्थात् तन्त्र, वैद्यक अर्थात् आयुर्वेद और वेदोक्त कर्मों के सम्बन्ध में यथार्थ को ग्रहण करना चाहिये, अप-शब्दों के प्रति ध्यान नहीं देना चाहिये।

शब्द के प्रति कोई सन्देह न करे। श्रद्धा के साथ उसे समझना चाहिये क्योंकि शब्द के अनन्त रूप होते हैं। शब्द ब्रह्म-स्वरूप है, अतः उसके सम्बन्ध में सन्देह न करे। सन्देह करनेवाला पितरों के सहित नरक जाता है। तान्त्रिक और वैदिक कर्मों में कभी अविश्वास न करे। अविश्वास बहुत बड़ा दोष है, यत्नपूर्वक उससे दूर रहे। सिद्धि पाने के लिये विश्वास मुख्य कारण कहा गया है।

'तन्त्र' को जानते ही व्यक्ति कर्म के बन्धनों से छूट जाता है। उसे तीर्थों में घूमने और यज्ञ, जप आदि साधनों की आवश्यकता नहीं रहती। वह सब शास्त्रों में सिद्ध होकर धर्मज्ञों में श्रेष्ठ होता है। जो तन्त्र को जानता है, वही ज्ञानी है और ब्रह्मज्ञ है। वेदों, पुराणों, स्मृतियों, संहिताओं और अन्य बहुत से तन्त्रों की क्या आवश्यकता ? केवल एक 'तन्त्र' को जानने से ही व्यक्ति सर्वज्ञ हो जाता है।

तन्त्रशास्त्र का अधिकारी

जो आस्तिक अर्थात् धर्म को माननेवाला है, पवित्र है, चतुर है, द्वैत-भाव से रहित है, जितेन्द्रिय है, ब्रह्म में निष्ठा रखता है, ब्रह्म की चर्चा करता रहता है, ब्रह्म के ही चिन्तन में लगा रहता है, सभी प्रकार की हिंसाओं से दूर रहता है और समस्त प्राणियों का भला करने में लगा रहता है, वही इस तन्त्र-शास्त्र के जानने का 'अधिकारी' है।

कलियुग में तन्त्रोक्त कर्म से ही फल की प्राप्ति

सत्ययुग, त्रेता और द्वापर—इन तीन युगों में श्रुति और स्मृति के विधान के अनुसार पूजा

होती थी। कलियुग में बुद्धिमान् व्यक्ति आगमोक्त विधि से ही पूजा करे क्योंकि इस युग में अन्य विधि से देवता प्रसन्न नहीं होते।

तन्त्रोक्त ध्यान और मन्त्र ही कलियुग में फल-दायक हैं। वेद-स्मृति और पुराण में जो बताये गये हैं, वे इस युग में प्रशस्त नहीं हैं।

आगम-मार्ग के बिना कलियुग में मुक्ति नहीं मिलती। पूर्व काल के लिये श्रुति, स्मृति, पुराणादि का कथन किया गया है। कलियुग में आगमोक्त विधि से ही देवों की पूजा करे। इस युग में आगम को न मानकर जो अन्य मार्ग से चलता है, उसे सफलता नहीं मिलती, यह सर्वथा सत्य है।

तन्त्र में बताये मन्त्र कलियुग में शीघ्र फल देते हैं। जप-यज्ञादि क्रियाओं के लिये वे ही प्रशस्त हैं क्योंकि श्रुति के मन्त्र विष-हीन सर्प के समान शक्ति-रहित होते हैं। सत्य-युगादि में ही वे कार्य करते थे, कलियुग में वे मृतक के समान हैं। दीवार पर चित्रित स्त्री अङ्गों से युक्त होते हुये भी जैसे कोई कार्य नहीं कर सकती, उसी प्रकार अन्य सभी मन्त्र हैं। उनसे फल की प्राप्ति नहीं होती।

कलियुग में अन्य मार्गों से जो सिद्धि चाहता है, वह उस प्यासे के समान मूर्ख है, जो गङ्गा के किनारे कुआँ खोदता है। इस लोक में तन्त्रोक्त मार्ग के सिवा अन्य कोई मार्ग मुक्तिदायक नहीं है। यही मार्ग मोक्ष और सुख देनेवाला है।

तन्त्र-वर्णन एवं श्रवण की प्रशंसा

तन्त्र को बतानेवाला गुरु साक्षात् ज्ञान-दाता शिव के समान है। वही परम गुरु, परापर गुरु और परमेष्ठी गुरु है। वह मन्त्र का ज्ञाता होता है।

तन्त्र, तन्त्र के बतानेवाले और तान्त्रिक क्रिया की जो लोग निन्दा करते हैं, उनका नाश भैरवों द्वारा किया जाता है। अतः तन्त्रज्ञ की निन्दा कभी न करे और न उनके विरुद्ध बात करे।

जो तन्त्र को सुनता है, वह ब्रह्म-निर्वाण को प्राप्त करता है। सब सारों का सार जो 'तन्त्रराज' है, उसे सुन और समझ कर व्यक्ति शीघ्र ही मोक्ष को प्राप्त करता है, इसमें सन्देह नहीं है।

ज्ञान-दायक, मोक्ष-प्रद, भुक्ति-मुक्ति-सौख्य-दाता और देवताओं के लिये भी दुर्लभ 'मुण्डमाला-तन्त्र' को जो सुनता और जानता है, वही पृथ्वी पर परमार्थ का ज्ञाता है।

निर्मल ज्ञानी होकर, बुद्धि को निर्मल कर, अति भक्ति के साथ, सभी प्राणियों को भलाई में तत्पर होकर जो शब्द-ब्रह्म-मय तन्त्र के एक पटल (अध्याय) को भी सुन लेता है, वह मुक्ति को प्राप्त करता है, यह सर्वथा सत्य है। अठारह पुराण सुनने, मेरु-पर्वत के बराबर स्वर्ण-दान करने या फसल-युक्त सात द्वीपों की पृथ्वी का दान देने से कहीं अधिक फल 'तन्त्र' के सुनने से मिलता है।

शक्ति की उत्पत्ति

शब्द का ज्ञान हुये बिना सभी जड़-वत् अर्थात् अज्ञानी रहते हैं। अतः सबसे पहले शब्दों के आविर्भाव के सम्बन्ध में कहा जाता है। सच्चिदानन्द-वैभव वाले सकल परमेश्वर से शक्ति प्रकट हुई, शक्ति से नाद, नाद से बिन्दु का आविर्भाव हुआ। अविद्या से ईश्वर का स्वरूप भी छिप जाता है, अतः ईश्वर का सत्-चित्-आनन्द रूपी वैभव से सम्पन्न होना आवश्यक है। सकल अर्थात् प्रकृति-सहित ईश्वर से ही शक्ति का उद्भव सम्भव है। इस सम्बन्ध में कहा है कि सनातन शिव निर्गुण और सगुण दो प्रकार का है। निर्गुण प्रकृति से रहित होता है और सगुण को 'सकल' कहा है। 'कला' अर्थात् प्रकृति के साथ रहने से यह नाम पड़ा है।

परमेश्वर शक्ति-सहित है, तो फिर शक्ति का आविर्भाव कैसे हुआ ? महा-प्रलय के समय अनादि-रूपा शक्ति चैतन्य-भाव से सूक्ष्म रूप में स्थित रहती है और गुणों की विषमता से सात्विक, राजस और तामस प्रपञ्च की सृष्टि में प्रकट होती है। कहा भी है कि देवों के कार्यों की सिद्धि के लिये जब वह आविर्भूत होती है, तब नित्या रहनेवाली होती हुई भी संसार में उसे उत्पन्न हुई कहा जाता है।

परमेश्वर से निकली हुई नित्या शक्ति सर्व-व्यापिनी और विश्व की सृष्टि करनेवाली है। शिव की इच्छा से परा शक्ति शिव-तत्त्व से एकीभूत रहती है। उसी से उसका स्फुरण होता है, जैसे तिल से तेल निकलता है।

सृष्टि का विवरण

विन्दु से नाद, नाद से शक्ति का आविर्भाव होता है। चिद्-रूपा परमा कला नाद-रूपिणी है। नाद से अर्द्ध-विन्दु उत्पन्न होता है। साढ़े तीन विन्दुओं से सर्पिणी कुल-कुण्डलिनी की उत्पत्ति होती है। ब्रह्म-रूपा सनातनी शक्ति विगुणा और सगुणा है। चैतन्य-रूपिणी देवी से सभी भूत प्रकट होते हैं। आनन्द-रूपिणी देवी ब्रह्मानन्द को व्यक्त करती है। इस प्रकार विन्दु से आदि उत्पत्ति की बात आम्नाय-भेद से सम्मत है। आम्नाय-भेद का स्पष्टीकरण आगे किया जायगा। सगुण शिव से शक्ति की उत्पत्ति यहाँ बताई गई है। उस शक्ति की नाद और विन्दु अवस्थायें सृष्टि के लिये उपयोगी हैं। नाद से प्रबुद्ध होकर वह निरामय पद की ओर अग्रसर होती है। शिव के प्रति जब वह उन्मुखी होती है, तब वह पुं-रूपा होती है।

तीन विन्दुओं का कथन

विन्दु के तीन प्रकार हैं—१ शिव-मय, २ शक्ति-मय, ३ उभय-मय अर्थात् शिव-शक्ति-मय या मिथुन-मय। दूसरे शब्दों में विन्दु, नाद और वीज ये तीन भेद हैं। विन्दु शिवात्मक है, वीज शक्ति है और नाद दोनों का मिश्रण है। यही तीन शक्तियाँ हैं।

तीन शक्तियों का कथन

विन्दु से रौद्री, नाद से ज्येष्ठा और उन दोनों से वामा उत्पन्न हुई। ये रुद्र, ब्रह्म और विष्णु की शक्तियाँ हैं। ज्ञान, इच्छा और क्रिया; अग्नि, चन्द्र और सूर्य इनके स्वरूप हैं। दूसरे शब्दों में तीन शक्तियाँ क्रमशः रुद्र, ब्रह्म और विष्णु अर्थात् शिव, ब्रह्म और नारायण की ज्ञान-शक्ति, इच्छा-शक्ति और क्रिया-शक्ति स्वरूपवाली हैं। अतएव अग्नि, चन्द्र और सूर्य-स्वरूप शब्द की सृष्टि के अन्तर्गत ये शक्ति की विशेष अवस्थाएँ हैं। इससे सृष्टि की रचना में शक्ति की प्रधानता स्पष्ट है। निश्चय ही शब्दार्थ-भाव वाले भुवन का सृजन चन्द्र-रूपा शक्ति करती है, सूर्य-रूप से उसे वह अपनी शक्ति से शोभित करती है और अग्नि-रूप से उस सबको वह युग के अन्त में लय करती है।

इच्छा, क्रिया और ज्ञान को गौरी, ब्राह्मी और वैष्णवी कहते हैं। ये तीन शक्तियाँ वहाँ स्थित हैं, जहाँ परं ज्योति ॐ है। दूसरे शब्दों में ज्ञान गौरी-शक्ति, इच्छा ब्राह्मी-शक्ति और क्रिया वैष्णवी शक्ति है। इस प्रकार शक्ति के तीन प्रकार हैं। इन्हीं में क्रमशः सूर्य, चन्द्र और अग्नि हैं। प्रणव के तीन वर्ण या अंश—अकार, उकार और मकार क्रमशः ब्रह्मा-विष्णु-रुद्रात्मक हैं। अकार से ब्रह्मा की उत्पत्ति है, उकार से विष्णु की और मकार से रुद्र की। ब्रह्मा, विष्णु और ईश्वर उस मण्डल में स्थित हैं।

महाकाली ने विष्णु को इच्छा-शक्ति, ब्रह्मा को क्रिया-शक्ति और शिव को ज्ञान-शक्ति प्रदान की।

ब्रह्मा, विष्णु और शिवादि की उत्पत्ति

सत्य-लोक में निराकार महा-ज्योति-स्वरूपा जगन्मयी ने माया के आवरण को हटाकर शिव और शक्ति—ये दो रूप सृष्टि हेतु प्रकट किये। इनसे ब्रह्मा नामक पहले पुत्र की उत्पत्ति हुई। जगन्माता ने अपने शरीर से सावित्री महाविद्या को प्रकट कर उन्हें प्रदान किया और कहा कि 'इसके साथ तुम वेद का विस्तार करो और अनायास ही सृष्टि-कर्ता बनो।' दूसरे पुत्र सत्व-गुणवाले विष्णु हुये। उन्हें भगवती कालिका ने महाविद्या श्रीविद्या प्रदान की, जिसकी सहायता से वे सारे जगत् का पालन करते हैं। तीसरे पुत्र महा-योगी सदा-शिव हुये। उन्हें महा-काली ने भुवन-सुन्दरी प्रदान की।

वास्तव में ब्रह्माणी सृष्टि करती हैं, ब्रह्मा नहीं करते। अतः ब्रह्मा प्रेत-स्वरूप हैं। इसी प्रकार वैष्णवी रक्षा करती हैं, विष्णु नहीं करते। अतः विष्णु प्रेत-स्वरूप हैं। रुद्राणी संहार करती हैं, रुद्र नहीं करते। अतः रुद्र प्रेत-स्वरूप हैं। इसी से ब्रह्मा-विष्णु-महेशादि जड़ कहे गये हैं। प्रकृति के विना वे सभी कार्यों के करने में असमर्थ हैं।

शब्द-ब्रह्म की उत्पत्ति

पर-विन्दु का भेदन होने से अव्यक्त आत्मा श्रेष्ठ रूपवाली हुई। उसे ही शब्द-ब्रह्म कहा गया। शक्ति की पहली अवस्था में 'विन्दु' था, जिसे पर-विन्दु कहते हैं। उसका भेदन होने से अव्यक्त आत्मा अर्थात् वर्णादि-रहित अखण्ड 'नाद' मात्र उत्पन्न हुआ। अकारादि वर्ण जहाँ नहीं हैं, केवल ध्वनि भर है, वही अव्यक्त नाद है। सृष्टि के लिये तत्पर परम शिव का पहला उल्लास मात्र अखण्ड, अव्यक्त नाद-विन्दु-मय होता है, जो व्यापक ब्रह्मात्मक शब्द है। प्रकृति में क्रिया-शक्ति प्रधान होती है, जो शब्द और शब्दार्थ की कारण-भूता है। विन्दु-रूपिणी प्रकृति का शब्द ही परब्रह्म है।

अन्तरात्मा नादात्मक होती है, वह स्वयं नाद करती है। वायु द्वारा प्रेरित होकर पिण्ड से वर्ण की अभिव्यक्ति होती है।

सब प्राणियों में जो चैतन्य है, वही शब्द-ब्रह्म है। वह कुण्डली-रूप में प्राणियों की देह के मध्य में विद्यमान है। वर्ण-रूप में वह गद्य-पद्य के भेद से प्रकट होता है। भेदित होता हुआ वह विन्दु-रूप चैतन्य कुण्डली-स्वरूप से प्रणवाकार होकर प्राणियों की देह के मध्य में रह कण्ठ आदि साधनों के द्वारा वर्णों के रूप में प्रकाशित होता है। मूलाधार से पहले पहल जो प्रणव उदित होता है, वही 'पर' कहा गया है। अतः कुण्डली से शब्द की सृष्टि होती है, ऐसा जानना चाहिये।

ब्रह्म के दो रूप

शब्द-ब्रह्म और परं-ब्रह्म—ये दो प्रकार ब्रह्म के कहे हैं। आगम से प्राप्त और विवेक से उपलब्ध—ये दो प्रकार के ज्ञान होते हैं। शब्द-ब्रह्म आगम से और परं-ब्रह्म विवेक से उत्पन्न होता है।

भगवान् कहते हैं कि मैं सभी भूत हूँ, भूतात्मा हूँ और भूत-भावन हूँ। शब्द और परं-ब्रह्म दोनों मेरे शाश्वत शरीर हैं।

शब्द-ब्रह्म प्रणव-रूप है। गीता में कहा है कि 'ॐ' इस एकाक्षर-ब्रह्म का उच्चारण करते हुये मुझे स्मरण करते हुये जो देह छोड़ता है, वह परम गति को प्राप्त करता है।

'ॐ' ध्वनि-मात्र का सूचक है। अतः यह कहना कि गुरु-मुख से उनकी कृपा से ब्रह्म की प्राप्ति होती है, ठीक ही है क्योंकि सर्वत्र ध्वनि ही विद्यमान है। प्रणवार्थ वाच्य है और ब्रह्म-प्रणव वाचक।

दूसरा परिच्छेद

शब्दार्थ-स्वरूप ब्रह्म एवं गर्भाक्षर-जात जगत्

शब्दादि का स्फोट-वाद

तोन मत हैं कि शब्द १ नित्य हैं, २ अनित्य हैं और ३ प्रसिद्ध हैं। पहले मत में यह उत्तम उक्ति है कि शब्द ब्रह्म है। अनित्य-वादियों में एक तो आन्तर-स्फोट-वादी हैं और दूसरे जाति, व्यक्ति-स्फोटात्मक बाह्य-स्फोट-वादी हैं। ये लोग यह तर्क करते हैं कि शब्द द्वारा अर्थ का प्रतिपादन कैसे सम्भव है, जब कि शब्द प्रतिपादन करने में सक्षम नहीं है? निश्चित वर्ण पदार्थ की सूचना देते हैं, तो क्रमानुसार या एक साथ? क्रमानुसार नहीं। 'गौ' आदि में 'ग' आदि प्रत्येक बर्ण को यदि अर्थ का प्रतिपादक मानें, तो बाद के वर्ण व्यर्थ हो जाते हैं। एक-एक वर्ण से अर्थ के किन-किन अङ्गों का प्रतिपादन होता है? 'ग' आदि वर्णों से गाय के अङ्गों का कोई सङ्केत नहीं मिलता। इसी प्रकार एक साथ वर्णों का उच्चारण नहीं होता, भिन्न-भिन्न काल में उनका उच्चारण होता है और उच्चारण के साथ ही वर्ण का विध्वंस हो जाता है, जिससे वर्णों के तारतम्य से कोई लाभ नहीं होता।

अत: वर्णों से 'स्फोट' की परिकल्पना की जाती है। जिससे अर्थ का स्फुटन हो, वही 'स्फोट' है। वर्ण-स्फोट से शब्द-स्फोट होकर अर्थ का प्रति-पादन होता है। इसी क्रम से शब्दों से वाक्य के अर्थ की पुष्टि होती है अर्थात् वाक्य के 'स्फोट' से वाक्यार्थ का बोध होता है।

'गौ:' शब्द के उच्चारण के बाद वर्णों को छोड़ अन्य कुछ भी हमें नहीं मिलता। अत: खरगोश के सींग के समान 'स्फोट' नहीं है, ऐसा आक्षेप स्फोट-वादियों पर किया जाता है। 'स्फोट'-वादियों का कहना है कि 'स्फोट' प्रत्यक्ष नहीं होता। 'गौ:' के ग्, औ और विसर्ग—इन तीन वर्णों के क्रमश: अनुभव करने पर पूरे पद (शब्द) की अभिन्न रूप में अनुभूति बुद्धि में उत्पन्न होती है। तीनों वर्णों की अभिन्नता होने से उनका अलग-अलग अर्थ प्रयोग में नहीं आता। जिस प्रकार 'पट' शब्द से मिल कर बुद्धि तन्तुओं से बने होने पर भी तन्तुओं को छोड़कर 'पट' अर्थात् वस्त्र को ही ग्रहण करती है, उसी प्रकार यहाँ भी उक्त तीन वर्णों से भिन्न दूसरी ही वस्तु को लेती है—यही 'स्फोट' है।

शब्द ब्रह्म है, इस सम्बन्ध में कुछ आचार्य 'शब्दार्थ' को—आन्तर-स्फोट को ब्रह्म मानते हैं, तो कुछ उच्चारित किये जानेवाले वर्णों, पदों, वाक्यों के अर्थ को प्रकाशित करनेवाले 'शब्द' को। इस मत-भेद का दोष किसी पर नहीं लगाया जा सकता क्योंकि एक-स्वरूपा सरस्वती अनेक मुखों से अनेक वचन रूप में निकलती है। यह उसकी शक्ति का चमत्कार है।

योगिनी तन्त्र में कहा है कि वर्णों का पुञ्ज बड़ा ही उज्ज्वल है। करोड़ों सूर्यों, करोड़ों चन्द्रों और करोड़ों अग्नियों जैसा उसका प्रकाश है। करोड़ों ब्रह्माण्ड उसमें विद्यमान हैं। गीता में कहा है कि एकाक्षर ॐ ब्रह्म है। गुरु-गीता कहती है कि गुरु के मुख में ब्रह्म स्थित है, उनकी कृपा से उसे प्राप्त करे। जिसके गुरुदेव जो कहें, वही कथन उसके लिये ब्रह्म है। गायत्री ब्रह्म-रूपिणी है।

काव्य-प्रकाश के अनुसार शब्द के सुनते ही जो अर्थ मालूम दे, वही मुख्यार्थ है। प्रयत्न से जो अर्थ मिलता है, वह गौण अर्थ माना जाता है।

शब्द के दो प्रकार हैं—१ ध्वनि, २ वर्ण। षडज्, ऋषभ, गन्धार, मध्य, पञ्चम, धैवत, निषाद—इन सातों स्वरों में ध्वनि बिना वर्णों के स्वतन्त्र रूप से प्रकट होती है। ध्वनि के भेद का ज्ञान स्वर से होता है। ध्वनि के बिना वर्ण का प्रकाश नहीं होता। अर्थ का बोध कराने के लिये ध्वनि ही वर्ण-रूप में प्रकट होती है। परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी—इन रूपों या अवस्थाओं में वही प्रकाशित होती है।

बिना अर्थ के 'शब्द' जड़ होता है। और शब्द के बिना 'अर्थ' क्योंकि अर्थ अपना प्रतिपादन स्वयं नहीं कर सकता और जिस शब्द से किसी अर्थ का प्रतिपादन न हो, वह व्यर्थ ही है। अतः शब्दार्थ-रूप वाला ही 'शब्द-ब्रह्म' मान्य है।

छत्तीस तत्वों, अष्ट पाशों और जीव-शिव का निरूपण

५ शुद्ध+११ मिश्र (शुद्धाशुद्ध) +२० अशुद्ध—इन तीन भेदों में ३६ तत्वों का निरूपण किया गया है। यथा—

शुद्ध—१ शिव, २ शक्ति, ३ सदाशिव, ४ ईश्वर, ५ शुद्ध-विद्या;

मिश्र—१ माया, २ कला, ३ अविद्या, ४ वाग्, ५ अहङ्कार, ६ काल, ७ नियति, ८ पुरुष, ९ प्रकृति, १० बुद्धि, ११ मन;

अशुद्ध—१ श्रोत्र, २ त्वक्, ३ चक्षु, ४ रसना, ५ घ्राण, ६ वाक्, ७ पाणि, ८ पाद, ९ पायु, १० उपस्थ, ११ शब्द, १२ स्पर्श, १३ रूप, १४ रस, १५ गन्ध, १६ आकाश, १७ वायु, १८ तेज, १९ जल, २० पृथिवी।

१ घृणा, २ लज्जा, ३ भय, ४ शोक, ५ जुगुप्सा, ६ कुल, ७ शील और ८ जाति—इन आठ पाशों से बँधा हुआ 'जीव' और इनसे छूटा हुआ 'सदाशिव' कहलाता है। इस प्रकार जीव और शिव का ऐक्य है, उक्त पाश ही उन्हें अलग करते हैं।

प्रणव का स्वरूप एवं पचास कलायें

ॐकार में शिव, ब्रह्मा और विष्णु प्रतिष्ठित हैं। अकार=ब्रह्मा, उकार=विष्णु, मकार=रुद्र। अथवा अकार=विष्णु, उकार=ब्रह्मा, मकार=रुद्र।

अकार से उत्पन्न सृष्टि के लिये ब्रह्म-जाता दश कलायें—१ सृष्टि, २ ऋद्धि, ३ स्मृति, ४ मेधा, ५ कान्ति, ६ लक्ष्मी, ७ धृति, ८ स्थिरा, ९ स्थिति, १० सिद्धि।

ये कलायें पिघले हुये स्वर्ण की चमकवाली हैं और चार हाथों में क्रमशः अक्षमाला, एक-एक कमल तथा कमण्डलु लिये हैं।

उकार से उत्पन्न पालन के लिये विष्णु-जाता दश-कलायें—१ जरा, २ पालिनी, ३ शान्ति, ४ ईश्वरी, ५ रति, ६ कामिका, ७ वरदा, ८ ह्लादिनी, ९ प्रीति, १० दीर्घा।

ये कलायें तमाल-पत्र जैसी आभावाली हैं और चार हाथों में क्रमशः अभय, वर, चक्र तथा गदा लिये हैं।

मकार से उत्पन्न संहार के लिये रुद्र-जाता दश कलायें—१ तीक्ष्णा, २ रौद्री, ३ भया, ४ निद्रा, ५ तन्द्री, ६ क्षुत्, ७ क्रोधिनी, ८ क्रिया, ९ उत्कारी, १० मृत्यु।

ये कलायें शरद् ऋतु के चन्द्रमा जैसी ज्योतिवाली हैं और चार हाथों में क्रमशः अभय, शूल, कपाल तथा वर लिये हैं।

विन्दु से उत्पन्न तिरोधान के लिए ईश्वर-जाता चार कलायें—१ पीता, २ श्वेता, ३ अरुणा, ४ असिता।

ये कलायें जवा-कुसुम के वर्णवाली हैं और चार हाथों में क्रमशः अभय, हरिण, टङ्क तथा वर लिये हैं।

नाद से उत्पन्न अनुग्रह (भुक्ति-मुक्ति) के लिये सदाशिव-जाता १६ कलायें—१ निवृत्ति, २ प्रतिष्ठा, ३ विद्या, ४ शान्ति, ५ इन्धिका, ६ दीपिका, ७ रेचिका, ८ मोचिका, ९ परा, १० सूक्ष्मा, ११ सूक्ष्मातीता, १२ ज्ञानामृता, १३ आप्यायनी, १४ व्यापिनी, १५ व्योम-रूपा, १६ अनन्ता।

ये कलायें गौर-वर्णा हैं और चार हाथों में क्रमशः अक्ष-माला, पुस्तक, गुण तथा कपाल लिये हैं।

इस प्रकार प्रणव की उपर्युक्त पचास कलायें हैं, जो सब प्रकार की समृद्धि-दायिका हैं।

चन्द्र-सूर्याग्नि की अड़तीस कलायें

चन्द्र, सूर्य और अग्नि से क्रमशः स्वर, स्पर्श और व्यापक वर्णों का प्रकाश हुआ है। चन्द्र को १६, सूर्य की १२ और अग्नि की १०—कुल ३८ कलायें हैं। यथा—

स्वरों से उत्पन्न चन्द्र-कलायें—१ अमृता, २ मानदा, ३ पूषा, ४ तुष्टि, ५ पुष्टि, ६ रति, ७ धृति, ८ शशिनी, ९ चन्द्रिका, १० कान्ति, ११ ज्योत्स्ना, १२ श्री, १३ प्रीति, १४ अङ्गना, १५ पूर्णा, १६ पूर्णामृता।

कभ से ठड तक के व्यञ्जनों से उत्पन्न सूर्य-कलायें—१ तपिनी, २ तापिनी, ३ धूम्रा, ४ मरीचि, ५ ज्वालिनी, ६ रुचि, ७ सुषुम्ना, ८ भोगदा, ९ विश्वा, १० बोधिनी, ११ धारिणी, १२ क्षमा।

यादि वर्णों से उत्पन्न अग्नि-कलायें—१ धूम्रार्चि, २ उष्मा, ३ ज्वलिनी, ४ ज्वालिनी, ५ विस्फुलिङ्गिनी, ६ सुश्री, ७ सुरूपा, ८ कपिला, ९ हव्यवहा, १० कव्य-वहा।

वर्णोद्भूत विष्णु-रुद्र-स्वरूप और उनकी शक्तियाँ

१६ स्वरों और ३४ व्यञ्जनों से उद्भूत ५०-५० विष्णु-रूपों और उनकी तदनुरूप शक्तियों का विवरण आगे दिया है। सुमेरु 'क्ष' से भी इनके रूपों और शक्तियों का आविर्भाव हुआ है। इस प्रकार ५१ रूप और उनकी शक्तियों के नाम ज्ञातव्य हैं—

वर्ण-माला	विष्णु-रूप	विष्णु-शक्ति	रुद्र-रूप	रुद्र-शक्ति
१ अ	केशव	कीर्ति	श्रीकण्ठ	पूर्णोदरी
२ आ	नारायण	कान्ति	अनन्त	विरजा
३ इ	माधव	तुष्टि	सूक्ष्मी (सूक्ष्म)	शाल्मली
४ ई	गोविन्द	पुष्टि	त्रिमूर्ति	लोलाक्षी
५ उ	विष्णु	धृति	अमरेश्वर	वर्तुलाक्षी
६ ऊ	मधुसूदन	शान्ति (क्षान्ति)	अर्घीश	दीर्घ-घोणा
७ ऋ	त्रिविक्रम	क्रिया	भावभूति(भारभूति)	सुदीर्घ-मुखा (मुखी)
८ ॠ	वामन	दया	अतिथि (तिथीश)	गो-मुखी

९ लॄ	श्रीधर	मेधा	स्थाणुक (स्थाणु)	दीर्घ-जिह्वा
१० लॄ	हृषीकेश	हर्षी (हर्षा)	हर	कुण्डोदरी
११ ए	पद्मनाभ	श्रद्धा	झिण्टीश (झण्डीश)	ऊर्ध्व-केशी
१२ ऐ	दामोदर	लज्जा	भौतिक	विकृत-मुखी
१३ ओ	वासुदेव	लक्ष्मी	सद्योजात	ज्वालामुखी
१४ औ	संकर्षण	सरस्वती	अनुग्रहेश्वर	उल्का-मुखी
१५ अं	प्रद्युम्न	प्रीति	अक्रूर	सुश्री-मुखी (श्री-मुखी)
१६ अः	अनिरुद्ध	रति	महासेन	विद्या-मुखी
१७ क	चक्री	जया	क्रोधीश	महा-काली
१८ ख	गदी	दुर्गा	चण्डेश	सरस्वती
१९ ग	शार्ङ्गी	प्रभा	पञ्चान्तक	गौरी
२० घ	खड्गी	सत्या	शिवोत्तम	त्रैलोक्य-विद्या
२१ ङ	शङ्खी	चण्डा	एक-रुद्र	मन्त्र-सिद्धि (...शक्ति)
२२ च	हली	वाणी	कूर्म	आत्म-शक्ति
२३ छ	मुषली	विलासिनी	एक-नेत्र	भूत-माता
२४ ज	शूलि (शूली)	विजया (विरजा)	चतुरानन	लम्बोदरी
२५ झ	पाशी	विरजा (विजया)	अजेश	द्राविणी
२६ ञ	अंकुशी	विश्वा	सर्व (शर्व)	नागरी
२७ ट	मुकुन्द	विनदा (वित्तदा)	सोमेश (सोमेश्वर)	खेचरी (वैखरी)
२८ ठ	नन्दज	सुनदा (सुतदा)	लाङ्गलि	मञ्जरी
२९ ड	नन्दी	स्मृति	दारक (दारुक)	रूपिणी
३० ढ	नर	ऋद्धि	अर्द्ध-नारीश्वर	चित्रिणी (वीरिणी)
३१ ण	नरक-जित्	समृद्धि	उमाकान्त	काकोदरी (कोटरी)
३२ त	हरि	शुद्धि	आषाढ़ि (आषाढ़ी)	पूतना
३३ थ	कृष्ण	भक्ति (भुक्ति)	दण्डिन् (दण्डी)	भद्रकाली
३४ द	सत्य	मुक्ति	अद्रि (अद्रि)	योगिनी
३५ ध	सात्वत	मिति (मति)	मीन	शङ्खिनी
३६ न	शौरि	क्षमा	मेषार (मेष)	गर्जिनी

३७ प	शूरी (शूर)	रमा	व्याललोस्थित (लोहित)	काल-रात्रि
३८ फ	जनार्दन	उमा	शिखी	कुब्जिनी
३९ ब	भू-धारी (भू-धर)	क्लेदिनी	छगलण्ड	कपर्दिनी
४० भ	विश्व-मूर्ति	क्लिन्ना	द्विरण्डेश (द्विरण्ड)	वज्रषा(महा-वज्रा)
४१ म	वैकुण्ठ	वसुदा	महा-काल	जया
४२ य	पुरुषोत्तम	वसुधा	वालिन (कपाली)	सुमुखेश्वरी
४३ र	बली	परा	भुजङ्गेश	रेवती
४४ ल	बलानुज	परायणा	पिनाकीश (पिनाकी)	माधवी
४५ व	बाल	सूक्ष्मा	खड्गीश	वारुणी
४६ श	वृषघ्न	सन्ध्या	वकेश (वक)	वायवी
४७ ष	वृष	प्रज्ञा	श्वेत	रणे विदारिणी (रक्षो-विदा०)
४८ स	हंसः (सिंह)	प्रभा	स्रग्वीश (भृगु)	सहजा
४९ ह	वराह	निशा	नकुलि (नकुली)	लक्ष्मी
५० ळ	विमल	अमोघा	शिव	व्यापिनी
५१ क्ष	नृसिंह	विद्युता	संवर्तक	माया

केशवादि विष्णु के स्वरूप बादलों के समान श्याम-वर्ण हैं। हाथों में शङ्ख और चक्र लिये हैं तथा पीला वस्त्र पहने हैं। प्रत्येक की गोद में उनकी शक्ति विराजमान हैं, जो विद्युत् के समान वर्णवाली हैं और मुसकाती हुईं, हाथों में कमल एवं अभय-मुद्रा धारण किये हैं।

श्रीकण्ठादि रुद्र के स्वरूप रक्त-वर्ण हैं। हाथों में शूल और कपाल लिये हैं। प्रत्येक की गोद में उनकी शक्ति विराजमान हैं, जो सिन्दूर के समान अरुणाभावाली हैं और हाथों में लाल कमल एवं कपाल लिये हैं। आयुधों को क्रमशः बाएँ और दाएँ हाथों में समझे।

वर्णौषधियाँ और उनका उद्देश्य

१ रक्त-चन्दन, २ अगरु, ३ कपूर, ४ वीरण-मूल, ५ कूट, ६ बाला, ७ कुंकुम, ८ काकोली, ९ जटामांसी, १० मुरामांसी, ११ चोर-पुष्पी, १२ गाठियानी, १३ हल्दी, १४ तेजपात, १५ पीपल, १६ बेल, १७ जयन्ती, १८ पृनि-पर्णी, १९ कामरांगा, २० गाम्भारी, २१ ताम्बूली, २२ छोलंग, २३ कशेरु, २४ बला, २५ हिजल, २६ तिल-पुष्प, २७ अपामार्ग, २८ बरगद, २९ गम्भारि, ३० कण्टकारी, ३१ कुश, ३२ काश, ३३ पिप्पली, ३४ इन्द्रजौ, ३५ कुटकी, ३६ कुकुवल्या, ३७ वृहती, ३८ पारला, ३९ तुलसी, ४० अपामार्ग, ४१ इन्द्रलता, ४२ भाँगरा, ४३ अपराजिता, ४४ तालमूली, ४५ लाजवन्ती, ४६ दूब, ४७ धान, ४८ शतमूला, ४९ रुद्रजटा, ५० भद्र-पर्पटी—ये पचास वर्णौषधियाँ क्रमशः हैं। मन्त्र के वर्णानुसार ओषधियों को गोलियाँ बनाकर उनसे अभिषेक, हवन, विलेपन, पूजनादि करने से सिद्धि मिलतीहै।

परम ब्रह्म का निरूपण

'अ' से प्रारम्भ होकर 'क्ष' तक पूर्ण होनेवाली **'मातृका'** बीज-रूपिणी है। **विसर्ग** प्रकृति है और 'बिन्दु' पुरुष। इन दोनों का भेदन करनेवाला ब्रह्म-विग्रह 'मातृका' का है। वर्ण से ही ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र की उत्पत्ति है। इस प्रकार सबके उपास्य देवताओं, सबकी कलाओं, औषधियों का उद्भव ब्रह्म-स्वरूप 'प्रणव' की पञ्च रश्मियों—अकार, उकार, मकार, बिन्दु, नाद—से होता है। 'प्रणव' ब्रह्म के अवयवों का वाचक नहीं है, अपितु 'प्रणव' के ही अवयवों से सबकी उत्पत्ति होती है। ब्रह्म केवल उत्पत्ति नहीं करता, सृष्टि, स्थिति और लय तीनों का वही हेतु है।

जिससे सभी भूत उत्पन्न होते हैं, जिसके प्रभाव से जीवित रहते हैं और जिसे प्राप्त कर वे लय हो जाते हैं—वही ब्रह्म है। 'प्रणव' केवल उत्पादक बताया गया है, फिर वह ब्रह्म कैसे है? इस सम्बन्ध में यह ज्ञातव्य है कि प्रणव की रश्मियों से उत्पन्न ब्रह्मादि द्वारा ही सृष्टि आदि होती है, अतः सृष्टि, स्थिति, संहार की क्रियाओं में मूल रूप से 'प्रणव' ही हेतु है, यह सर्वथा स्पष्ट है। 'प्रणव' का ब्रह्मत्व सिद्ध होने से अन्य 'वर्णों' का भी 'ब्रह्मत्व' प्रतिपादित होता है क्योंकि प्रणव की ही ध्वनियों से वे युक्त हैं।

'मूलार्ण' अर्थात् प्रणव। उसकी स्वरात्मक विकृतियाँ, फिर स्वर-रूप विकारों की विकृतियाँ—'क' से लेकर 'क्ष' तक के वर्ण। वर्णों से बने विविध वैदिक-तान्त्रिक मन्त्र। उनके विविध प्रयोग। इन सबमें 'ह' वर्ण की प्रधानता है। मूलार्ण 'हंसः' है।

'हकार' प्राणात्मक बीज है। उसकी छः ऊर्मियाँ हैं—अ, आ, इ, ई, उ, ऊ। चार गुण हैं—ऋ, ॠ, ऌ, ॡ और पुनः षट्क है—ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः। इस प्रकार हकार के षोडशाङ्ग हैं। इन्हीं से १६ स्वर और उनसे अन्य वर्ण उत्पन्न हुए हैं। अतः 'हकार' को मूल मानते हैं। इसी 'ह' से 'हरि' और 'हर' का उद्भव होता है।

'ह' के बिन्दु के बाद 'स' है, जिससे 'सोऽहम्' कहा जाता है। 'ह' पुरुष है और 'स' प्रकृति। दक्षिण और वाम क्रम से यही अजपा शक्ति है। दक्षिण भाग बिन्दु है, वाम भाग विसर्ग। बिन्दु पुरुष है, विसर्ग प्रकृति। पुं-प्रकृति-रूपी 'हंस' है और वैसा ही यह जगत् है। इस ज्ञान से 'सोऽहं'-भाव प्राप्त होता है। सकार और हकार का लोप कर पूर्व-रूप सन्धि करने से प्रणव होता है। 'सोऽहं' भाव से परम ब्रह्म-स्वरूप होता है। शब्द-ब्रह्म से विभूषित परानन्द-मय ब्रह्म देह के मध्य में स्थित है।

एक ही मूर्ति तीन देवों—ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर—के रूप में है और क्रमशः सृष्टि, स्थिति और संहार करती है। ये प्रणव से उत्पन्न होते हैं। अकार ब्रह्मा का वर्ण है, जो शब्द-रूप, अति प्रभावाला है और प्रणव के अन्तर्गत नित्य पूरक-योग का आश्रय लेता है। उकार विष्णु का वर्ण है, जो शब्द-भेदी सत्व है और प्रणव के अन्तर्गत कुम्भक-योग का आश्रय लेता है। मकार शम्भु का वर्ण है जो जीव-भूत है और प्रणव के अन्तर्गत लय-योग का आश्रय लेता है। प्रणव के वर्णों की यही भावना है।

प्रणव से 'हंसः', 'हंसः' से 'सोऽहं' की अनुभूति होती है। 'सोऽहं' का ज्ञान ही महान् ज्ञान है, जो योगियों को भी दुर्लभ है। जो उसकी भावना निरन्तर करता है, वह श्रेष्ठ होता है। 'ह' पुरुष 'स'-स्वरूपी चन्द्र से 'सः' प्रकृति है। यह 'हंस' सूर्य-मण्डल का भेदक है। विपरीत क्रम से ही जब 'सोऽहं' का ज्ञान होता है, तभी साधक सूर्य को पहुँचनेवाला सिद्ध होकर वासुदेव-पूजित होता है। हकार और सकार का लोप कर सन्धि करने से महा-मन्त्र प्रणव प्राप्त होता है। इस प्रणव से अक्षरों आदि सभी का आविर्भाव होता दिखाई देता है। इसी से वर्णाभिधान में प्रणव का एक नाम 'जीवोत्पादक' कहा गया है।

प्रणव ब्रह्म का वाचक है, स्वयं ब्रह्म नहीं है। सृष्टि का प्रपञ्च प्रणव के पाँच अवयवों— अकार, उकार, मकार, नाद, विन्दु से उद्भूत ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, शक्ति और ईश्वर से ही विस्तृत होता है। इस प्रकार परम-ब्रह्म वाच्य है और प्रणव उसका वाचक।

शब्द दो प्रकार के होते हैं—१ ध्वन्यात्मक और २ वर्णात्मक। इनमें ध्वन्यात्मक शब्द अनुपलब्ध होने के कारण कुछ लोग उन्हें 'अनित्य' मानते हैं और कहते हैं कि वर्णात्मक शब्द के ध्वनि नहीं होती किन्तु यह कथन ठीक नहीं है क्योंकि ध्वनि दो प्रकार की होती है—१ तरङ्ग के समान और २ कदम्ब-कोरक के समान। पहली अपने समीपस्थ प्रत्येक वर्ण के स्वरूप को तरङ्ग-वत् स्पष्ट करती हुई अभिधेय का प्रतिपादन करती है और दूसरी कदम्ब-कोरक के समान अव्यक्त रूप से दूरस्थ आत्म-तत्त्व का प्रतिपादन करती है, अभिधेय का नहीं करती। अतः वर्णात्मक शब्द नित्य ही है क्योंकि वेदों का कर्ता ईश्वर है, पुराणों के कर्त्ता महर्षि हैं किन्तु 'मातृका' का कर्त्ता कोई नहीं सुना जाता। इस प्रकार 'मातृका' स्वयम्भू है।

ब्रह्मा अपना ब्रह्मत्व और विष्णु अपना विष्णुत्व स्वयं ही प्राप्त करते हैं। 'स्व' के अर्थ-ज्ञान से सम्पन्न भाग्यशाली ही धन्य हैं। 'स्व' का ज्ञान मात्र होने से जीव मुक्त हो जाते हैं। इससे मन्त्रों की नित्यता सिद्ध होती है।

वेद में जो वाक्य हैं, उनके कर्त्ता का अभाव होने से अपौरुषेय वेद नित्य हैं। ईश्वर को जो वेद-कर्ता कहा है, वह इसलिये कि वेद का प्रकाशन ईश्वर द्वारा हुआ है। वेद का उत्पादन ईश्वर ने नहीं किया है। अतः वेद 'आदि-बीज' है, उसी से मन्त्र का प्रकाश होने से मन्त्रों की भी नित्यता सिद्ध होती है।

बृहन्नील तन्त्र में कहा है कि वेद साक्षात् ब्रह्म है। वेद स्वयं प्रवर्तित होता है, उसका कोई कर्त्ता नहीं है। पुराकाल में स्वयम्भू भगवान् ने वेद का गान किया, शिव से लेकर ऋषि आदिकों ने वेद को स्मरण किया, कृष्ण आदि ने उसका प्रकाशन किया। इस प्रकार इनमें से कोई भी वेद का कर्त्ता नहीं है।

सावित्री को वेद-माता और ब्रह्मा को वेद का जनक कहा है किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि वे वेद को उत्पन्न करनेवाले हैं। तात्पर्य यह है कि सावित्री के सहयोग से ब्रह्मा ने वेद का विस्तार किया यही रहस्य भागवत की उस कथा से प्रकट होता है, जिसके अनुसार तम ने दैत्य-रूप से वेद को चुरा लिया था और पाताल में ले जाकर उसे छिपा दिया था, तब नारायण ने हयग्रीव-अवतार धारण कर उससे वेद का उद्धार किया और पुनः ब्रह्मा को प्रदान किया।

इस प्रकार वेद स्वयम्भू ब्रह्म है। महत् भूत के निःश्वास मात्र से स्वयं आविर्भूत होता है।

वर्णों से नाना शास्त्रों की उत्पत्ति

परम कुण्डली अकारादि-क्षकारान्ता स्वरूपवाली है। वही वर्णात्मा सारे चराचर विश्व को उत्पन्न करती है। नाना शास्त्र, पुराण, इतिहास, वेद और स्मृति-शास्त्रादि सभी 'अक्षर' से उत्पन्न होते हैं तथा वे सब परं ब्रह्म-मय हैं। इस कथनानुसार अठारह विद्याएँ भी ग्रहणीय हैं।

वर्णों से ग्रहों की उत्पत्ति

वर्णों से ग्रहादि की भी उत्पत्ति बताई गई है। वर्ण-माला के सात वर्ग हैं। इनमें से प्रत्येक वर्ग का देवता कौन ग्रह है, इसका विवरण निम्न प्रकार है—

वर्णों से राशियों की सृष्टि

क्रमांक	वर्ग	ग्रह	क्रमाङ्क	वर्ग	ग्रह
१	स्वर-वर्ग	सूर्य	४	ट-वर्ग	बुध
२	क-वर्ग	मङ्गल (लोहित, भूमि-पुत्र)	५	त-वर्ग	वृहस्पति (सुर-गुरु)
३	च-वर्ग	शुक्र (काव्य)	६	प-वर्ग	शनैश्चर
			७	य-वर्ग	सोम (शीतांशु, चन्द्र)

वर्णों की विकृति से बारह राशियाँ उत्पन्न होती हैं। इनका विवरण निम्न प्रकार है—

वर्ण	राशियाँ	तन्त्रराज के अनुसार वर्ण
अ आ इ ई	मेष	अ आ इ ई
उ ऊ ऋ	वृष	उ ऊ ऋ ॠ
ॠ लृ लॄ	मिथुन (युग्म)	लृ लॄ ए ऐ
ए ऐ	कर्क (कर्कट)	ओ औ क ख
ओ औ	सिंह	ग घ ङ च
अं अः; श ष स ह; ल	कन्या	छ ज झ ञ
क ख ग घ ङ	तुला	ट ठ ड ढ
च छ ज झ ञ	वृश्चिक	ण त थ द
ट ठ ड ढ ण	धनु	ध न प फ
त थ द ध न	मकर	ब भ म य
प फ ब भ म	कुम्भ	र ल व श
य र ल व क्ष	मीन	ष स ह क्ष

राशियों के स्वामी और तीन राशि-चक्र

राशि का स्वामो ग्रह होता है। मेषादि बारह राशियों के स्वामियों के नाम निम्न प्रकार हैं—

मेष-वृश्चिक = भौम, वृष-तुला = शुक्र, कन्या-मिथुन = बुध, कर्क = चन्द्र, सिंह = सूर्य, मीन-धनु = वृहस्पति, मकर-कुम्भ = शनि।

तीन भुवनों में क्रमशः भुवश्चक्र, स्वश्चक्र और देव-चक्र—ये तीन राशि-चक्र कहे गये हैं।

वर्णों से नक्षत्रों की सृष्टि

अक्षर-भेद से सत्ताइस नक्षत्रों की उत्पत्ति का विवरण निम्न प्रकार है—

अ आ···अश्विनी	इ···भरणी	ई उ ऊ···कृत्तिका	ऋ ॠ लृ लॄ···रोहिणी
ए···मृगशिरा	ऐ···आर्द्रा	ओ औ···पुनर्वसु	क···पुष्य
ख ग···अश्लेषा	घ ङ···मघा	च···पूर्वा	छ ज···उत्तरा
झ ञ···हस्त	ट ठ···चित्रा	ड···स्वाती	ढ ण···विशाखा
त थ द···अनुराधा	ध···ज्येष्ठा	न प फ···मूल	ब···पूर्वाषाढा
भ···उत्तराषाढा	म···श्रवणा	यर···श्रविष्ठा	ल···शतभिषा
वश···प्रोष्ठपदा	षसहक्ष उत्तर-भाद्रपद	अं अः ल···रेवती।	

अमावास्या की उत्पत्ति

'अ' और 'म' के साथ जब 'क्ष' रहता है, तब चन्द्र और सूर्य के संयोग से अमावास्या प्रतीत होती है। 'क' और 'ष' के सङ्गम से क्षकार उत्पन्न होता है। उसका देवता नृसिंह है। वही 'ष स ह' के साथ होकर परम प्रौष्ठ-पद को प्राप्त करता है।

नक्षत्र, वार, आदि में जप

नक्षत्र और वारों के अनुरूप ही अपने-अपने मन्त्र का जप करना चाहिये। इसी से इन दिनों के देवता आदि का कथन किया जाता है।

जन्म-नक्षत्र में वृक्ष काटने का निषेध

जिस दिन अपना जन्म-नक्षत्र हो, उस दिन निम्न वृक्षों को नहीं काटना चाहिये, अन्यथा आयु को हानि होती है—कारस्कर, आमलक, उडुम्बर, जम्बु, खदिर, कृष्ण, वश, पिप्पल, नाग, रोहिणी, पलाश, प्लक्षक, अम्बोष्ठ, धिया, अर्जुन, विकङ्कक, नकुल, सरजा, सर्ज, वंजुल, पनस, आक, शमी, कदम्ब, निम्ब, आम्र, मधुक।

नक्षत्रों के देवता एवं योनि-भेद

अश्विनी आदि २७ नक्षत्रों के स्वामी क्रमशः निम्न देवता हैं—

१ अश्विनीकुमार, २ यम, ३ अनल (अग्नि), ४ धाता (ब्रह्मा), ५ शशि (चन्द्रमा), ६ रुद्र, ७ अदिति, ८ वृहस्पति, ९ सूर्य, १० पितर, ११ भग, १२ अर्यमा, १३ रवि, १४ त्वष्टा, १५ मरुत (वायु) १६ इन्द्राग्नी, १७ मित्र, १८ इन्द्र, १९ निऋति (राक्षस), २० विश्वेदेव, २१ ब्रह्मा, २२ हरि (गोविन्द), २३ अष्ट-वसु, २४ वरुण, २५ अज-पाद (अज-चरण), २६ अहिर्बुध्न्य, २७ पूषा।

२७ नक्षत्रों के योनि-भेद का विवरण निम्न प्रकार है—

अश्विनी-शतभिष : अश्व-योनि; स्वाती-हस्त : महिष (भैंसा); धनिष्ठा-पूर्वाभाद्रपद : सिंह; भरणी-रेवती : हस्ति (गज); पुष्य-कृत्तिका : मेष; श्रवण-पूर्वाषाढ़ : वानर; उत्तराषाढ़-अभिजित् : नकुल; मृगशिरा-रोहिणी : सर्प; ज्येष्ठा-अनुराधा : हरिण; मूल-आर्द्रा : श्वान; पुनर्वसु-अश्लेषा : मार्जार; मघा-पूर्वाफाल्गुनी : मूषक; विशाखा-चित्रा : व्याघ्र; उत्तराफाल्गुनी-उत्तराभाद्रपद : गौ।

उक्त पशुओं में से जिनमें परस्पर स्वाभाविक वैर है, उनसे सम्बन्धित नक्षत्रों में जन्म लेनेवाले व्यक्तियों का वैवाहिक या व्यावसायिक सम्बन्ध शुभ नहीं होता। उदाहरणार्थ गौ और व्याघ्र, गज और सिंह, अश्व और महिष, वानर और मेष, नकुल और सर्प, हरिण और श्वान, मार्जार और मूषक एक दूसरे के शत्रु होते हैं। अतः लोक-प्रसिद्धि और व्यवहार से जानकर इस तथ्य से लाभ उठाना चाहिये।

पक्ष, तिथियाँ और तिथि-स्वामी

पन्द्रह दिनों का पक्ष होता है। पहला 'शुक्ल पक्ष' प्रतिपदा तिथि से प्रारम्भ होकर पूर्णिमा को पूरा होता है और दूसरा 'कृष्ण पक्ष' पुनः प्रतिपदा तिथि से प्रारम्भ होकर अमावास्या को समाप्त होता है। पन्द्रहवीं तिथि के नाम में अन्तर है, शेष तिथियों के नाम दोनों पक्षों में एक जैसे हैं। इन तिथियों के स्वामियों का विवरण क्रमशः निम्न प्रकार है—

प्रतिपदा : अग्नि; द्वितीया : ब्रह्मा; तृतीया : गौरी; चतुर्थी : गणेश; पञ्चमी: सर्प; षष्ठी : कार्तिकेय सप्तमी : सूर्य; अष्टमी : शिव; नवमी : दुर्गा; दशमी : यमराज; एकादशी : विश्वेदेव; द्वादशी : विष्णु; त्रयोदशी : कामदेव; चतुर्दशी : शिव पूर्णिमा : चन्द्रमा; अमावास्या : पितर।

तीसरा परिच्छेद

चतुर्विध देह की सृष्टि

सृष्टि का वर्णन

शब्द की सृष्टि प्रधान होने से पहले उसका वर्णन किया गया। अब शरीर की सृष्टि का वर्णन किया जाता है। विन्दु से काल-वन्धु, कलात्मा शम्भु की उत्पत्ति हुई, जो जगत् के साक्षी सर्व-व्यापी सदाशिव हैं। सदाशिव से ईश्वर, ईश्वर से रुद्र, रुद्र से विष्णु और विष्णु से ब्रह्मा उत्पन्न हुये। रुद्रादि की उत्पत्ति अर्थ-रूप से है, अतः शब्द-रूप से उनकी उत्पत्ति का वर्णन पुनरुक्ति नहीं है। आदि और अन्त से रहित होने से 'काल-वन्धु' कहा गया है और कला-माया तदात्मा है क्योंकि उसी से उसका उद्भव होता है। इन दोनों विशेषणों से प्रकट है कि 'प्रकृति' और 'काल' का अवस्थान महा-प्रलय के समय भी बना रहता है। अतः इन दोनों की आपेक्षिक नित्यता है और पुरुष का नित्यत्व स्वतः है।

निमेष आदि तथा माया, दिवस और निशाएँ, पक्ष और मास, ऋतुएँ और अयन तथा वत्सर (वर्ष), युग और युग-मान तथा मन्वन्तर—ये सब महा-प्रलय तक विन्द्वात्मक माने गये हैं। यही सृष्टि-रूप काल का लय है।

लव आदि काल-मान

सुई से कमल-पत्र का बेधन करने में जितना काल (समय) लगता है, उसे 'लव' कहते हैं। इस प्रकार 'काल' का मान क्रमशः निम्न प्रकार है—

३० लव = १ त्रुटि ; ३० त्रुटि = १ कला ; ३० कला = १ काष्ठा
३० काष्ठा = १ निमेष ; ८ निमेष = १ मात्रा ; १ मात्रा = १ श्वास
३६० श्वास = १ घटिका (दण्ड, नाड़िका) ; २ नाड़िका = १ मुहूर्त ; ३० मुहूर्त = १ अहोरात्र
३० अहोरात्र (दिवस) = १ मास ; १२ मास = १ सम्वत्सर (मानव वर्ष) ; १ वर्ष = १ देव-दिवस
३६० देव-दिवस = १ देव-वर्ष ; १२०० देव-वर्ष = १ युग ; १००० युग = ब्रह्मा का १ दिवस
ब्रह्मा के ३० दिवस = १ ब्रह्म-मास ; १२ ब्रह्म-मास = १ ब्रह्म-वर्ष ; १०० ब्रह्म-वर्ष = ब्रह्मायु
ब्रह्म-आयु = नारायण का १ निःश्वास।

तत्त्वों की सृष्टि

सृष्टि के लिये तत्पर मूल-भूत, पर-वस्तु, अव्यक्त, विन्दु-रूप शब्द-ब्रह्म से सत्व-रज-तमो-गुणात्मक 'महत्'-तत्त्व और उससे 'मन-बुद्धि-अहङ्कार-चित्त'—यह एक चतुष्टय उत्पन्न होता है। श्रुति भी यही क्रम बताती है कि—प्रकृति से महत् और महत् से अहङ्कार।

अव्यक्त विग्रहवाला शब्द-ब्रह्म सबका मूल है। व्यक्त सत्व गुण को बताने के लिये 'बुद्धि-तत्त्व' उत्पन्न हुआ। सांख्य-मत में 'महत्-तत्त्व' को बुद्धि-तत्त्व कहते हैं। सत्वादि गुणों के भेद से अहङ्कार तीन प्रकार का हुआ—१ सात्विक (वैकारिक), २ राजस (तैजस), ३ तामस (भूतादि)। सात्विक से इन्द्रियों के अधिष्ठाता चन्द्र आदि, राजस से पञ्च-ज्ञानेन्द्रिय, पञ्च-कर्मेन्द्रिय और मन तथा तामस से तन्मात्राएँ उत्पन्न हुई। दूसरे शब्दों में वैकारिक अहं से दिग् आदि ग्यारह इन्द्रियाधिष्ठातृ देवों का उदभव हुआ

और जो मनस्तत्व है, वह सङ्कल्प-विकल्प से युक्त है। तैजस अहं से दस इन्द्रियों की उत्पत्ति हुई और भूतादि अहं से पञ्च-तन्मात्राओं (१ शब्द, २ स्पर्श, ३ रूप, ४ रस और ५ गन्ध) की।

शब्द-तन्मात्रा से आकाश; शब्द और स्पर्श—इन दो तन्मात्राओं से वायु; शब्द, स्पर्श और रूप—इन तीन से अग्नि; शब्द, स्पर्श, रूप और रस—इन चार से जल; शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—इन पाँचों तन्मात्राओं से भूमि का उद्भव होता है।

पञ्च-भूतों की उत्पत्ति और उनका लय

आकाश से वायु, वायु से रवि (अग्नि), रवि से तोय (जल), जल से मही (पृथ्वी) उत्पन्न होती है। मही जल में, जल रवि में, रवि वायु में और वायु नभ (आकाश) में लय होता है। इस प्रकार पञ्च-तत्वों से सृष्टि होती है और तत्त्व का लय तत्त्व में ही होता है। श्रुति में कहा है कि ब्रह्म से आकाश, आकाश से वायु, वायु से तेज, तेज से आप, आप् से पृथिवी, पृथिवी से ओषधियाँ, ओषधियों से अन्न—इस प्रकार भूत-मात्र से भूत-सृष्टि होती है।

पञ्च-भूतों के गुण

तार्किक लोग आकाशादि के गुण शब्द बताते हैं। सांख्य में भी आकाश का एक गुण शब्द; वायु (मरुत्) के दो गुण शब्द और स्पर्श; अग्नि (तेज) के तीन गुण शब्द, स्पर्श और रूप; जल (आप्) के चार गुण शब्द, स्पर्श, रूप और रस तथा पृथिवी (मही) के पाँच गुण शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध कहे हैं। वास्तव में पञ्चीकरण-रूप से पाँचों भूतों में से प्रत्येक के पाँच गुण सत्वादि तीन गुणों के समान होते हैं। अतः नासिकादि (पृथिवी आदि) इन्द्रियों में कटु, अम्ल आदि की अनुभूति होती है।

पञ्च-भूतों के मण्डल, वर्ण और स्वरूप

१ आकाश (दिव, व्योम)	**वृत्त (वर्तुल)**	**स्वच्छ (श्वेत, सित) या नील**	**पोला (छिदवाला)**
२ वायु (मातरश्विन)	**षड्-बिन्दु (षट्-कोण) युक्त वृत्त**	**कृष्ण (सित)**	**गति-शील**
३ अग्नि (वह्नि, विभावसु)	**स्वस्तिक-युक्त त्रिकोण**	**रक्त (पाटल)**	**पाचक**
४ जल (अम्भस)	**अर्द्ध-चन्द्र युक्त कमल (अब्ज, अष्टास्र)**	**श्वेत (शुक्ल)**	**स्वादवाला**
५ पृथिवी (भूमि, धरा)	**चतुरस्र (वज्र-युक्त)**	**पीत**	**घनी**

मण्डल से प्रश्न-कर्त्ता के प्रश्न की आकृति का बोध होता है। इसके अतिरिक्त प्राणायाम में भूतोदय होने पर उक्त प्रकार आकृति का प्रत्यक्ष दर्शन होता है। षट्-कर्म-साधन में भी इन आकृतियों का प्रयोग होता है। वर्ण और स्वरूप का भी यही प्रयोजन है।

पञ्च-भूतात्मक चार प्रकार की देह और त्रिवृत् या पञ्चीकरण

पृथिवी से ओषधि, ओषधि से अन्न, अन्न से रेतस् (वीर्य-रज), रेतस् से चन्द्र-सूर्यात्मक चराचर जगत् (ब्रह्माण्ड) की उत्पत्ति होती है। 'चर' जङ्गम है, 'अचर' स्थावर। यह चराचर जगत् पञ्च-भूतात्मक है। गिरि (पर्वत), वृक्षादि भेद से 'अचर' के बहुत प्रकार हैं। 'चर' के तीन भेद हैं—१ स्वेदज, २ अण्डज, ३ जरायुज। पञ्च-भूतात्मक से त्रिवृत्-करण और पञ्चीकरण का भी बोध होता है। तैजस देव के भी शरीर में आधा भाग तेज का, चौथा भाग पृथिवी का और चौथा भाग जल का होता है—यही त्रिवृत्-करण है। पञ्चीकरण में तेज का चौथा भाग होता है और अन्य का आठवाँ भाग।

भोग्य के भोग के लिये शरीर का जन्म होने पर भगवान् आकाशादि में प्रत्येक का पञ्चीकरण करते हैं। भगवान् अर्थात् ऐश्वर्यादि छः गुणों से सम्पन्न। ये गुण हैं—१ समग्र ऐश्वर्य, २ वीर्य, ३ यश,

४ श्री, ५ ज्ञान और ६ रूप। इन्हीं छः गुणों को समष्टि को 'भग' कहते हैं। 'समग्र ऐश्वर्य' से अणिमादि आठ ऐश्वर्यों का बोध होता है। अतः तमोगुणात्मक ईश्वर से सत्वादि त्रिगुणात्मक भगवान् की अधिक गुणवत्ता है। केवल सत्व-गुणात्मक को भी भगवान् नहीं कह सकते क्योंकि त्रिगुणात्मिका भगवती को वह नहीं प्राप्त कर सकता। परमेश्वर जीवों के भोग्य-भोगार्थ जरायुज आदि चार प्रकार के शरीरों की उत्पत्ति के लिये आकाशादि पञ्च-भूतों में से प्रत्येक का पञ्चीकरण करते हैं।

पञ्चीकरण में प्रत्येक भूत के दो भाग करके उन दो भागों में से एक भाग के चार भाग करने पर हर भूत के कुल पाँच-पाँच भाग होते हैं। अपना आधा भाग और अन्य भूतों के द्वितीयांश को लेने से पञ्च-भूतों को पञ्च-स्वरूपता मिलती है।

अथवा तेज के छः अंश और पृथिवी, जल, वायु, आकाश के दस-दस अंश करे। इसी प्रकार हम पार्थिवों के शरीर में पृथिवी का छठा अंश और जल आदि के दशमांश रहते हैं। इसके लिये पृथिवी आदि भूतों में से प्रत्येक के दो भाग करे। फिर एक-एक भाग के पाँच विभाग करे। इस प्रकार प्रत्येक भूत के दस-दस भाग होंगे। एक-एक भाग लेकर क्रमशः प्रत्येक भूत के भाग में जोड़े। आकाश के छः भाग करे। वायु आदि के चार भागों में इसके एक भाग को जोड़े। इस प्रकार खेचर जीवों में आकाश-वायु-भागों की अधिकता होने पर उनकी गति आकाश में और घरेलू गोधिकादि जीवों में आकाश-भाग के आधिक्य से दीवाल आदि पर तथा वायु-भाग के आधिक्य से जीवों की सर्वत्र गति एवं अस्थिरता होती है। यही 'पञ्चीकरण' है।

उद्भिद् आदि की उत्पत्ति

उद्भिद, स्वेदज, अण्डज और जरायुज—इन चार प्रकार की देहों की उत्पत्ति होती है। यथा—

१ भूमि को भेदन कर 'उद्भिद्' निकलते हैं, जो स्थावर होते हैं। यथा—तृण, गुल्म, वृक्ष के तने, पत्ते, पुष्प, फल आदि। जल द्वारा भूमि सींची जाने पर अन्दर की ऊष्मा विपाचित होकर वायु द्वारा बीज मूल (जड़) रूप को प्राप्त करता है। उस मूल से अंकुर, अंकुर से पत्ते, पत्तों से शाखा और शाखा से 'उद्भिद्' का प्रसार होता है।

मत्स्य-सूक्त में बताया है कि विभिन्न पाप-कर्मों के फल-स्वरूप विविध प्रकार की स्थावर-योनि मिलती है। इन पापों के प्रायश्चित्त के लिये शिव-लिङ्ग को यथा-विधि स्थापित कर उसका अर्चन करे, चतुर्दशी को निराहार रहकर वृष के सूर्य में शुक्ल-पक्ष में पाप क्षय के लिये ब्राह्मण को गो-दान करे।

२ कृमि, कीट और पतङ्गादि जीव 'स्वेदज' कहे जाते हैं। भूमि के अन्दर ऊष्मा के विपाक से बीजत्व की सिद्धि होती है। स्वेदन के फल-स्वरूप भू-अग्नि-जल से 'स्वेदज' जीवों की उत्पत्ति होती है, जो प्रत्यक्ष ही है यथा—गोबर के ढेरादि से कीटादि की उत्पत्ति।

३-४ 'अण्डज' और जरायुज' देहों की उत्पत्ति शुक्र (वीर्य) और शोणित (रक्त) के संयोग से होती है। 'अण्डज' वर्तुलाकर होने से शुक्र-शोणित के मिश्रण के फल-स्वरूप समय पाकर पूरे होते हैं और बाहर निकलते हैं यथा—सर्प, गोधा, मेढक, पक्षी, मछली, कछुए आदि।

मनुष्य-जन्म की प्रशंसा

जरायुजों में मनुष्य के समान कोई जन्म नहीं है। देवता, पितर सभी मानुष जन्म चाहते हैं। सभी देहों में मनुष्य-देह सदा दुर्लभ है। उसमें भी मन्त्र-तन्त्र में रत रहनेवाली देह अति दुर्लभ है। सभी देहों में आगम-विद् श्रेष्ठ है, सभी के द्वारा पूज्य है। चौरासी लाख शरीरों में केवल मनुष्य-शरीर में ही

तत्त्व-ज्ञान प्राप्त होता है। अतः पुण्यों का सञ्चय होने पर ही वह मिलता है। मनुष्य-जन्म मोक्ष के लिए सोपान का कार्य करता है। इसी से सभी तन्त्रों में श्रेष्ठ 'साधक'-रूप को गोपनीय रखा है।

सभी शास्त्रों में मनुष्य का ही जन्म सफल माना गया है क्योंकि मनुष्यता के सिवा अन्य किसी जीवत्व की उपलब्धि के द्वारा तत्व की अनुभूति नहीं होती। स्थावरादि और कीड़ों, पशु-पक्षियों आदि शरीरों में वह अव्यक्तात्मा ८४ लाख योनियों में जन्म लेती है। तब पूर्व जन्मों में किए उत्तम कर्मों के फल-स्वरूप दुर्लभ मानुष तन को वह प्राप्त कर पाती है। कर्म का विपाक (क्षय) होने पर ही ब्राह्मण-योनि की प्राप्ति होती है। स्थावर ३० लाख + जलज ९ लाख + कृमिज १० लाख + पक्षी ११ लाख + पशु २० लाख + मानव ४ लाख = इन ८४ लाख योनियों में भटकने के बाद द्विज की देह मिलती है।

मनुष्य-देहवाला जीव धर्म और अधर्म का स्वामी होता है। उनके फल-स्वरूप वह जन्म लेता है और फिर मृत्यु को प्राप्त होता है। इस प्रकार कर्म के बन्धन से जीव नाना योनियों में उत्पन्न होते हैं और मरते हैं।

जीव जैसा कर्म करता है, वैसा ही भोग परलोक में पाता है। तृण-जलौका के समान वह एक देह से दूसरी देह में जाता है। 'चतुर' देह को पाकर वह पूर्व देह को छोड़ देता है। 'चतुर' देह माया-देह होती है, जो वायु-रूप होती है। वायु-रूप होने से वह आकाश में निराधार रहती है। पिण्ड-दान के द्वारा वह वायु स्थिर होती है। पहले मस्तक उत्पन्न होता है, फिर क्रमशः अन्य अङ्ग। तब परलोक में जाकर धर्म-कर्म का भोग करता है। कर्म-भोग के पूर्ण होने पर वह पुनः ब्रह्म-शासन में पड़ता है अर्थात् फिर जन्म ग्रहण करता है। कर्मों के फल-स्वरूप यदि वह दुर्लभ द्विज-देह को पाता है और भाग्य-वश सद्-गुरु से महा-विद्या को प्राप्त कर तत्त्व-ज्ञान को पा लेता है, तो उसे परम मोक्ष का लाभ होता है। महा-विद्या के प्रसाद से फिर उसका जन्म नहीं होता।

जैसे जल से बुद्-बुद उत्पन्न होता है और उसी में विलीन हो जाता है, उसी प्रकार प्रकृति से सभी उत्पन्न होते हैं और फिर उसी में लय हो जाते हैं। ब्रह्मा, विष्णु, शिव प्रकृति से उत्पन्न होकर प्रलय-काल में प्रकृति में ही लुप्त हो जाते हैं।

मानुष तन को दुर्लभ कहा गया है क्योंकि ऊपर वर्णित ८४ लाख योनियों में जीव दीर्घ-काल तक भटकता रहता है। इन योनियों में पूर्वकृत कर्मों का उसे भोग ही करना पड़ता है। उसे ऐसे पुण्य कर्मों के करने का अवसर ही नहीं प्राप्त होता, जिनके फलस्वरूप उसे मनुष्य-देह मिल पाये। मनुष्य-देह में सदसद्-बुद्धि जीव को प्राप्त होती है और उसी में संस्कार द्वारा 'द्विजत्व' का मिलना सम्भव होता है। 'द्विजत्व' की प्राप्ति के बाद उसे अवसर मिलता है कि सद्गुरु से दीक्षा प्राप्त कर मन्त्र-तन्त्र और आगमोक्त साधना का ज्ञान अर्जित करे तथा साधना कर 'ब्राह्मणत्व' को उपलब्धि करे। मनुष्य-जन्म पाकर भी यदि जीव सत्कर्म न कर दुष्कर्मों में पड़ जाता है, तो उसे उनके फलस्वरूप पुनः निम्नतर योनियों में लौटना पड़ता है। इस सबसे मानव देह की दुर्लभता स्पष्ट होती है।

चौथा परिच्छेद

अन्न-मय-कोष-वाली मनुष्य-देह

गर्भ से देह की सृष्टि

मनुष्य का शरीर किस प्रकार का है ? मुक्ति किस कर्म के द्वारा प्राप्त होती है ? इन प्रश्नों के उत्तर में कर्मों के फलस्वरूप उत्पन्न हानेवाले शरीर का वर्णन करते हैं। रजस्वला नारी पाँचवें दिन शुद्ध होकर काम-वश होती है और पुरुष की इच्छा करती है। उन दोनों के सहवास से रेत का क्षरण होता है और तब देहस्थ रज तथा वीज में क्षिति, जल, तेज, वायु और आकाश इन सभी तत्वों का सामञ्ज-स्य होकर गर्भ की स्थिति होती है। रज अधिक हो तो स्त्री, रेत अधिक हो तो पुरुष और दोनों समान हों तो नपुंसक का जन्म होता है।

जिस प्रकार कुम्हार चक्र को घुमाता है और घट आदि को उत्पन्न करता है, उसी प्रकार गर्भ में वायु द्वारा प्राणियों के देह (तनु, शरीर) का गठन होता है। पुष्प (रज) से विन्दु का संयोग होने के दस मास बाद सन्तान प्रकट होती है। पुरुष के शुक्र (वीर्य) से यदि शक्ति (स्त्री) का रज अधिक हो, तो कन्या का जन्म होता है और इसके विपरीत होने से अर्थात् शुक्र के अधिक होने पर पुत्र उत्पन्न होता है। शुक्र और रज समान मात्रा में हों, तो नपुंसक सन्तान जन्म लेती है।

चिदानन्द-मय ज्योति-स्वरूप निरञ्जन ब्रह्म सर्व-शक्तिमान् एवं सर्वज्ञ है, उसी के अंश 'जीव' कहलाते हैं। जिस प्रकार अग्नि की चिनगारियाँ निकलती हैं, उसी प्रकार अविद्या के प्रभाव से विभिन्न उपाधिवाले 'जीव' जन्म लेते हैं, जो अपने-अपने विविध प्रकार के कर्मों द्वारा एक दूसरे से भिन्न प्रतीत होते हैं। उनके जीवन अपने-अपने पुण्यों और पापों के अनुसार सुख या दुःख-दायक होते हैं। कर्मों के अनुरूप ही वे विभिन्न जाति की देह प्राप्त करते हैं और प्रत्येक जन्म में माया से बँधे हुये अपने कर्मों का फल भोगते हैं।

शुक्र और शोणित से उत्पत्ति

खाये हुये भोजन को प्राण-वायु शरीर के भीतर विभाजित करती है। जठराग्नि में जल पहुँचता है, जल के ऊपर अन्नादि रहते हैं। तब अपान वायु के सहयोग से प्राण-वायु उनका पाचन करती है। वायु से अग्नि क्रमशः तेज होती है। इस प्रकार आमाशय के भीतर व्यञ्जनों से युक्त अन्न का पाचन होता है। सबसे नीचे प्राण-वायु, प्राण-वायु के ऊपर अग्नि, अग्नि के ऊपर जल और जल के ऊपर अन्न—यह क्रम रहता है। वायु द्वारा अग्नि के प्रज्वलित होने से जल उष्ण होता है और वह अन्न को समेट कर उसका पाचन करता है, इस प्रकार पाचित अन्न के अलग-अलग दो भाग हो जाते हैं—१ रस, २ कीट्ट अर्थात् मल।

१ स्वादु (मधुर), २ अम्ल, ३ लवण, ४ तिक्त, ५ उषण (कटु), ६ कषाय—इन छः रसों से आहार (भोजन) युक्त होता है। वह कण्ठ (गले) के मार्ग से जाता है। उसके जाने में श्लेष्मा सहायता करता है। श्लेष्मा से भोजन मधुर होता है। आमाशय में पहुँचने पर पित्ताशय से वह मिलता है, जिससे उसमें कटुता आती है। पित्त-वारि से भोजन का पाचन होता है।

पाचित भोजन में से 'जल' से तो स्वेद (पसीना) और मूत्र बनता है, 'रस' से वीर्य और अन्न-कीट्ट से 'पुरीष' (मल) बनता है। इन्हें प्राण-वायु अलग-अलग करता है। 'ग्रहणी' नामक नाड़ी खुली अञ्जलि के समान होती है। उसके नीचे समान-वायु द्वारा 'प्रधान अग्नि' (जठराग्नि) प्रज्वलित होती है। उसी के नीचे त्रिकोणाकार ज्योति है। यही स्थान 'मूलाधार' नाम से प्रसिद्ध है। 'जठराग्नि' बड़वानल का रूप है।

'रस' को वायु रक्तादि में पहुँचाती है और कीट्ट (मल) को ग्रहणी नाड़ी में। मल से भर जाने पर यह नाड़ी पायु (गुदा) मार्ग से पुरीष को बाहर निकाल देती है। इसी प्रकार पाचित जल पसीने के रूप में शरीर के अङ्गों से और मूत्राशय में भरा हुआ मूत्र मूत्रेन्द्रिय द्वारा शरीर से बाहर हो जाता है। अपथ्य अर्थात् हानिकारक भोजन करने से ग्रहणी, पायु आदि मार्ग दूषित होकर प्रमेह, मूत्र-कृच्छ्रादि रोग शरीर में उत्पन्न होते हैं।

१ त्वक् (चर्म), २ असृङ् (रुधिर), ३ मांस, ४ मेद, ५ अस्थि, ६ मज्जा, ७ शुक्र—ये सात धातुएँ पित्त-तेज द्वारा पाचित होकर उत्तरोत्तर एक दूसरे से उत्पन्न होती हैं। समान वायु द्वारा शरीर की सभी नाड़ियों के मध्य में पहुँचाया गया 'रस' शरीर की ऊष्मा से जब पाचित होता है, तो वह 'चर्म' और 'रुधिर' दो भागों में बँट जाता है। पुनः अपने-अपने कोषों की अग्नि से पाचित होकर शेष धातुएँ क्रमशः बनती हैं।

१ 'प्राण'-वायु से निःश्वास-उच्छ्वास-कास कर्म होते हैं। २ 'अपान'-वायु द्वारा मल-मूत्रादि बाहर निकलते हैं। ३ 'व्यान'-वायु से प्राणापान-कर्मों की चेष्टा होती है। ४ 'उदान'-वायु से देह के उठने आदि के कर्म सम्पन्न होते हैं और ५ 'समान'-वायु द्वारा शरीर के पोषणादि कर्म होते हैं। ६ 'नाग-वायु' से उद्गारादि, ७ 'कूर्म'-वायु से निमीलनादि, ८ 'कृकर'-वायु से भूख-प्यास आदि, ९ 'देवदत्त'-वायु से जृम्भा (जम्हाई) और १० 'धनञ्जय'-वायु से पोषादि कर्म सम्पन्न होते हैं।

देह-सृष्टि में धातुओं का वर्णन

माता की अम्बु-वहा नाड़ी नाभि-स्थित परा नामक नाड़ी से विद्ध होकर गर्भ को रस पहुँचाती है। एक रात्रि में गर्भ का 'कलन' होकर पाँचवें दिन वह 'बुद्बुद्'-रूप लेता है। दश रात्रियों में 'शोणित' (रुधिर) बनकर चौदहवें दिन मांस-पिण्ड बनता है।

'कार्मण' और 'आणव' ये दोनों मल मिलते हैं, जिनमें सूक्ष्म-रूप से २४ तत्त्व रहते हैं। प्रकृति गर्भ-मारुत (वायु) द्वारा उनका संक्षोभण कर उन्हें संवर्द्धित करती है। मिश्रित होकर वह गर्भ माता के अँगूठे के नाखून के बराबर आकार ग्रहण करता है।

२० दिनों में गर्भ घने मांस-पिण्ड का रूप लेता है और २५ दिन या एक मास पूरा होने पर वह अंकुरित होने लगता है।

दूसरे शब्दों में पहले बीज होता है, उसी ब्रह्माण्ड से अंकुर निकलता है। उसके मध्य में कङ्काल दण्ड-रूप सुमेरु रहता है। वही देवादि चराचर का आलय है। सभी प्राणियों के मेरु-दण्ड के भीतर यह आलय है। दीप-शिखा के आकार वाला जीव सदा हृदय में रहता है और जिस प्रकार डोरी से बँधा हुआ बाज पक्षी उड़ जाने पर भी पुनः खिंच कर वापस आ जाता है, उसी प्रकार गुणों से बँधा जीव प्राणापान वायु से आकृष्ट होता रहता है।

नाभि में द्वादशार-चक्र उत्पन्न होता है। उससे देह की प्रतिष्ठा होती है। इसी चक्र में जीव पुण्य और पाप से प्रेरित होकर भ्रमित होता रहता है। इस प्रकार हृदय जीव का स्थिति-स्थान है और नाभि में उसका भ्रमण मात्र होता है।

दो मास बीतने पर 'शिरो-मेद' उत्पन्न होती है। तीन मास में 'मज्जा' और 'अस्थि' तथा चौथे मास में 'केश' होते हैं।

अध्यात्म-विवेक के अनुसार पहले मास में गर्भ का 'कलल' नामक द्रव-रूप रहता है। दूसरे मास में पेशी-युक्त घन 'पिण्ड' (अर्बुद) बनता है और तीसरे मास में अंकुरित होकर पाँचवें मास में करादि, शिर उत्पन्न होते हैं।

प्रारम्भ में अङ्ग-प्रत्यङ्ग सूक्ष्म रूप में एक साथ ही अंकुरित होते हैं, चौथे मास में उनका रूप व्यक्त होता है। तभी माता के मन द्वारा गर्भ का हृदय अपने अभीष्ट को प्रकट करता है। इस अवस्था में स्त्री 'दो हृदयवाली' होती है और उसे 'दोहृदिनी' कहते हैं। उसकी जो भी खाने, पीने आदि की इच्छा होती है, उसकी पूर्ति न होने से गर्भ में विकृति उत्पन्न हो जाती है।

माता के अलङ्कार-युक्त—सजे-वजे रहने से गर्भस्थ शिशु सुन्दर रूपवाला होता है; तपस्वी के आश्रम में माता के रहने से धर्मवान्, देव-दर्शन करते रहने से भक्त, सर्प-दर्शन से हिंसक, गोधाशन से निद्रालु, मांस-भक्षण से बलवान्, भैंस के दुग्धादि-सेवन से रक्ताक्ष सन्तान होती है।

पाँचवें मास में मांस, शोणित से पिण्ड के पुष्ट होने पर छठे मास में अस्थि, स्नायु, नाड़ी, नख, केश आदि प्रकट होते हैं। सातवें मास में त्वचा की पूर्णता होकर आठवें मास में आँख-कान उत्पन्न होकर गर्भ के हृदय में ओज की उत्पत्ति होती है।

ज्ञान-भाष्य के अनुसार गर्भ के पाँचवें मास में कान, आँख, नाक के छिद्र और कण्ठ तथा उदर वनकर छठे मास में मुख और दोनों पैर उत्पन्न होते हैं तथा सातवें मास में सभी अङ्ग। आठवें मास में 'सन्धि' पूर्ण होती है। इस प्रकार अण्डाधार कङ्काल से प्रारम्भ कर गुद-मूल से लेकर ज्ञान-विज्ञान की ३२ ग्रन्थियों की पुष्टि होती है।

उक्त प्रकार माता द्वारा ग्रहण किए जानेवाले अन्न, जलादि से पोषित होता हुआ गर्भ दिन, पक्ष, मास के बीतने के साथ-साथ बढ़ता जाता है और २४ तत्त्वों से युक्त शरीर को प्राप्त करता है। वात-पित्त-कफ—इन तीन दोषों से सातों धातुयें उसकी इन्द्रियों में अभिव्यक्त होती हैं।

इन्द्रियाँ और उनके अर्थ तथा गुण

१ श्रोतृ (कान), २ त्वक् (चमड़ी, खाल), ३ दृग (आँख), ४ जिह्वा (जीभ), ५ नासिका (नाक)—ये ५ ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। इनके अर्थ (विषय) हैं क्रमशः—१ शब्द, २ स्पर्श, ३ रूप, ४ रस, ५ गन्ध।

१ वाक् (मुख), २ पाणि (हस्त, हाथ), ३ पाद (पैर), ४ पायु (गुदा), ५ अन्धु (लिङ्ग-योनि)—ये ५ कर्मेंद्रियाँ हैं। इनके अर्थ हैं क्रमशः—१ वचन (कथन), २ आदान (ग्रहण), ३ गति (गमन), ४ विसर्ग (त्याग), ५ आनन्द।

इन्द्रियों के गुण ये कहे हैं—चक्षु : रूप, कर्ण : शब्द, नासिका : गन्ध, त्वचा : स्पर्श, भुजा : आदान, जिह्वा : रस, गुह्य : विसर्ग, उपस्थ : आनन्द, पाद : गमन, मुख : कथन।

१ मन, २ बुद्धि, ३ अहंकार और ४ चित्त—यह अन्तःकरण है। 'मन' सङ्कल्प-विकल्पात्मक होता है। बीज-रूपा परा-शक्ति ही 'बुद्धि' है, जो सभी भावों का निश्चय करती है और वही 'अहङ्कार'-रूप

से ज्ञानाभिमान अर्थात् 'मैं ज्ञाता हूँ' इस अभिमान से युक्त होती है तथा 'चित्त'-रूप से निर्विकल्पा होती है। इस प्रकार नर्तकी के समान एक होती हुई भी वह अनेक रूपवाली प्रतीत होती है।

श्रुति भी कहती है कि 'मन' सङ्कल्प करता है, 'बुद्धि' निश्चय करती है, 'अहं' अभिमान करता है और 'चित्त' चेतन करता है।

इस प्रकार प्राणियों की दस इन्द्रियाँ, पाँच भूत और अहङ्कार—मन के सम्पर्क से प्रकृति के ये १६ विकार होते हैं। पाँच भूत, अहङ्कार, अव्यक्त और महत्—ये आठ हैं। 'प्रकृति' तक लेने से चौबीस तत्त्व होते हैं और 'पुरुष' तक लेने पर २५ तत्व होते हैं। 'परा-प्रकृति' तेईस तत्त्वों से कही गई है। इस प्रकार तत्त्वों का अन्तर्भाव करने से तत्त्वों की भिन्न-भिन्न संख्या मानी जाती है।

विन्दु अग्नि-षोमात्मक है। शुक्र अग्नि-रूप है और रक्त सोम-रूप। इन दोनों से युक्त होने से विन्दु को उभयात्मक कहा है। रवि की १२, चन्द्र की १६ और अग्नि की १० कलायें हैं। इस प्रकार कुल ३८ कलायें गर्भाधान के लिए होती हैं।

पञ्च-भूतों से अस्थि आदि की उत्पत्ति

पृथ्वी के पाँच गुण हैं—१ अस्थि, २ मांस, ३ नख और रोम, ४ नाड़ी (स्नायु), ५ त्वचा। जल के पाँच गुण हैं—१ मल, २ मूत्र, ३ शुक्र, ४ श्लेष्मा (लाला), ५ शोणित और मज्जा। अग्नि के पाँच गुण हैं—१ हास, २ निद्रा, ३ क्षुधा और तृष्णा, ४ भ्रान्ति और भय, ५ आलस्य और क्षान्ति। वायु के पाँच गुण हैं—१ धारण, २ चालन, ३ क्षेप, ४ सङ्कोच और आकुञ्चन, ५ प्रसव और प्रसारण। आकाश के पाँच गुण हैं—१ काम (राग), २ क्रोध (द्वेष), ३ लोभ, ४ त्रपा (लज्जा), ५ मोह (भय)।

सब प्राणों को वश में रखनेवाले दश-गुणात्मक वायु के दस रूप ये हैं—१ प्राण, २ अपान, ३ समान, ४ उदान, ५ व्यान, ६ नाग, ७ कूर्म, ८ कृकर, ९ देवदत्त, १० धनञ्जय।

जन्तु (जीव) के लक्षण

पञ्च-भूतों के सहित सत्वादि गुणों से युक्त होकर वायु, पित्त, कफ द्वारा उत्पन्न सात धातुओं सहित और क्षेत्रज्ञ मात्र से युक्त 'जन्तु' का जन्म होता है। दो फल-कोष (अण्ड-कोष) पुरुष जन्तु के व्यक्त होते हैं, स्त्री-जन्तु के व्यक्त नहीं होते। वे नपुंसक जीव के किञ्चित् ही व्यक्त होते हैं।

नाड़ियों की उत्पत्ति

शरीर की पुष्टि के लिये नाभि में महा-शक्ति कुण्डलिनी नाड़ी-स्वरूप से अवस्थित है। उससे दश नाड़ियाँ ऊपर की ओर और दश नाड़ियाँ नीचे की ओर जाती हैं। दो-दो नाड़ियाँ तिरछी होकर जाती हैं। इस प्रकार २४ नाड़ियाँ हुईं। इनसे सूक्ष्म मुखवाली ७२ हजार नाड़ियाँ निकली हैं। ये सभी स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा चक्र तक व्याप्त हैं। एक दूसरे से ग्रन्थियों द्वारा ये आबद्ध हैं। महा-शक्ति कुण्डलिनी ही इन सबकी मूल है। इन नाड़ियों (शिराओं) में से कुछ का शिर अधोमुख है तो कुछ का ऊर्ध्व-मुख। अन्य कुछ तिरछी जाती हैं। ये सब तीन लाख से अधिक हैं। ५० हजार इनमें मुख्य बताई गई हैं। इन सबसे प्राणवायु का प्रवाह होता रहता है। उक्त सूक्ष्म-मुखी नाड़ियों में से ७०० नाड़ियाँ रसादि का सञ्चालन कर शरीर का पोषण करती हैं। इनमें से १० नाड़ियाँ प्रसिद्ध हैं, जो दश प्रकार की वायु को प्रवाहित करती हैं।

दक्षिणांश में सूर्य और वाम भाग में चन्द्र की अवस्थिति है। प्रसिद्ध नाड़ियाँ १० हैं, जिनमें ३ मुख्य हैं—१ इडा शरीर के बाईं ओर नासिका में, २ सुषुम्णा मध्य में ब्रह्म-रन्ध्र में और ३ पिङ्गला दाईं नासिका में। इडा वामाण्ड से धनुराकार में वाम पार्श्व से जाती हुई वाम नासा तक पहुँचती है और पिङ्गला दक्षिणाण्ड से दक्ष पार्श्व होती हुई दक्ष नासा तक। पृष्ठ-वंश अर्थात् पीठ के अन्तर्गत मेरुदण्ड के भीतर से सुषुम्णा व्याप्त है।

शेष सात नाड़ियाँ ये हैं—१ गान्धारी : बाएँ चक्षु में, २ हस्ति-जिह्वा : दाएँ चक्षु में, ३ पूषा : दाएँ कान में, ४ यशस्विनी : बायें कान में, ५ अलम्बुषा : मुख में, ६ कुहुः : लिङ्ग-मूल में, ७ शङ्खिनी : शिर के ऊपर। इस प्रकार दस नाड़ियाँ देह के १० द्वारों का आश्रय लेकर स्थित हैं। इनसे क्षिति, जल, पावक, वायु और आकाश ये पाँचो महाभूत स्थिरता को प्राप्त करते हैं।

इड़ा-पिङ्गला-सुषुम्णा नाड़ियाँ क्रमशः त्रिगुणा और ब्रह्म-विष्णु-शिवात्मिका हैं। कर्म-भेद से रजो गुणा नाड़ी का नाम 'वज्रा' है, सत्व-गुणा 'चित्रिणी' और तमोगुणा 'ब्रह्म-नाड़ी' कहलाती है। इड़ा का वर्ण शङ्ख-चन्द्र के समान है और पिङ्गला सित-रक्ताभावाली है। इडा में चन्द्रमा का और पिङ्गला में सूर्य का स्थान है। सुषुम्णा त्रिगुण-मयी चन्द्र-सूर्याग्नि-रूपा मुख्य नाड़ी है, जो ब्रह्म-रन्ध्र तक व्याप्त है।

इड़ा के पीछे बायें पैर से लेकर नेत्र तक गान्धारी नाड़ी है, जो मयूर के गले के समान है। उसके सामने उत्पल (कमल) के समान हस्ति-जिह्वा नाड़ी मूर्द्धा के वाम भाग से लेकर पैर के अँगूठे के अन्त तक स्थित है।

पिङ्गला के पीछे नील-जीमूत के समान वर्णवाली पूषा नाड़ी पाद-तल से लेकर नेत्र तक व्याप्त है। यशस्विनी नाड़ी शङ्ख-वर्णा है और पिङ्गला के पूर्व भाग में स्थित है। शङ्खिनी नाड़ी मध्य में व्याप्त है और कुहुः-नाड़ी सुवर्ण-वर्णा है, जो पैर के अँगूठे से लेकर मूर्द्धा के अन्त तक व्याप्त है।

उक्त १० नाड़ियों के सिवा १ वारुणी या रावणा, २ विश्वोदरी, ३ सरस्वती, ४ पयस्विनी—इन चार को लेकर चतुर्दश नाड़ियाँ मुख्य कही गई हैं।

अस्थ्यादि की उत्पत्ति एवं नाड़ियों के मुख

शरीर में ३६० अस्थियाँ होती हैं। धन्वन्तरि ने ३०० ही बताई हैं। २०० अस्थि-सन्धियाँ हैं। पेशी, स्नायु, शिरा की सन्धियाँ २०० हैं। स्नायु ९०० और पेशियाँ ५०० हैं। स्त्रियों के स्तनों के पास ये २० अतिरिक्त होती हैं। शिरा-धमनियाँ नौ लाख हैं।

तीन कोटि जो लोम (रोयें) मानव शरीर में हैं, वे सब नाड़ियों के मुख हैं, जिनसे स्वेद (पसीने) की बूंदें निकलती हैं।

पाँचवाँ परिच्छेद

मनुष्य का जन्म

शरीर में स्थित वायु का वर्णन

मूलाधार से ऊर्ध्व को चलनेवाला 'प्राण' सभी नाड़ियों में एवं इन नाड़ियों के द्वारा सारे शरीर में व्याप्त रहता है। यहाँ 'वायु' के दस प्रकार कहे हैं और दश ही 'वह्नि' (अग्नि) बताई गई हैं। दस वायु में पाँच मुख्य हैं। इन पाँच में दो—'प्राण' और 'अपान' प्रधान हैं और इन दोनों में भी 'प्राण' मुख्य है, जो समस्त वायु को धारण करता है। वायु के उक्त भेदों के रूप और स्थान निम्न प्रकार हैं—

वायु-भेद	रूप	क्रिया	स्थान
१ प्राण	इन्द्रनील या पद्मराग के समान	प्राण-वायु के समस्त रूपों को व्यवस्थित रखना	मुख-नासिका के मध्य में, हृदय-मध्य व नाभि - मध्य में, पैरों के अंगुष्ठ में, कुण्डलिनी के ऊपर, नीचे और चारों ओर
२ अपान	इन्द्रगोप या सन्ध्या-कालीन बादल के समान	शुक्र, मल और मूत्र को बाहर निकालना।	मेढ़् (लिङ्ग), पायु (गुदा), उरु, जानु, वंक्षण (उरु की सन्धि), उदर, वृषण (अण्ड - कोष), कटि, जङ्घा, नाभि, दोनों गुदाधारों (नितम्बों) के मध्य में
३ व्यान	महा-रजत (स्वर्ण) के समान या ज्योतिवत्	आहार को ग्रहण करना, व्याधियों को दूर करना	आँखों और कानों के मध्य में, कटि और गुल्फों (पैर की ग्रन्थियों) में, घ्राण, गले में, सारे शरीर में
४ उदान	विद्युत्, पावक (अग्नि) के समान या धूम्र वर्ण	शरीर को उठाना-बैठाना, अधर-मुख-नेत्रादि अङ्गों को स्पन्दित करना	सभी सन्धियों में, पैरों और हाथों की सन्धियों में, कण्ठ-देश में
५ समान	गो-दुग्ध के समान धवल	खाये, पिये, सूँघे विषयों और रक्त, पित्त, कफ, वायु को सारे शरीर में समान रूप से पहुँचाना	सारे शरीर में, नाभि-देश में
६ नाग	नील-जीमूत के समान	उद्गार	ललाट, उर, स्कन्ध, हृदय, नाभि, त्वचा और अस्थियों में
७ कूर्म	अञ्जन के समान	उन्मीलन	,, ,, ,,
८ कृकर	जवा-कुसुम के समान	क्षुधा, तृषा	,, ,, ,,
९ देवदत्त	स्फटिक के समान	विजृम्भण (जँभाई)	,, ,, ,,
१० धनंजय	महा-रजत (स्वर्ण) के समान	घोष, डकार आदि ध्वनियाँ, गर्भ-सञ्चार अर्थात् गर्भ में वीर्य को सञ्चित करना।	,, ,, ,,

सारे शरीर के मध्य में उक्त वायु-रूपों का सञ्चार इडा, पिङ्गला, सुषुम्णा नाड़ियों द्वारा अनुभूत होता है। इडा नाड़ी में चन्द्र और पिङ्गला नाड़ी में सूर्य की अवस्थिति है। सुषुम्णा शम्भु-रूपा है और शम्भु 'हंस'-स्वरूप हैं। श्वास का बाहर निकलना 'हकार' और श्वास का भीतर प्रवेश करना 'सकार' कहा गया है। 'हकार' शम्भु-रूप और 'सकार' शक्ति-रूप है। पिङ्गला में ह्रस्व, इड़ा में दीर्घ स्वर और सुषुम्णा में चार नपुंसक स्वरों अर्थात् सातवें स्वर (ऋ) से आरम्भ होनेवाले चार वर्णों (ऋ, ॠ, लृ, ॡ) की स्थिति है। बाईं नासा से दाईं नासा में वायु-प्रवेश का प्रारम्भ होते समय कुछ काल तक वायु दोनों नाड़ियों में बहती है। यह काल 'दक्षिणायण' का प्रारम्भ है और इस समय 'ऋ, लृ' इन दो ह्रस्वों का उदय होता है। दाईं नासा से बाईं नासा में वायु के जाते समय 'उत्तरायण' का प्रारम्भ-काल है और उस समय 'ॠ, ॡ' इन दो दीर्घ रूपों का उदय होता है।

अग्नि के दश रूप

शरीर में दोषों के प्रभाव से अग्नि के दस रूप होते हैं—१ जृम्भक, २ दीपक, ३ विभ्रम, ४ भ्रम, ५ शोभन, ६ आवसथ्य, ७ आहवनीय, ८ दक्षिणाग्नि, ९ अन्वाहार्य और १० गार्हपत्य।

शरीर की छः अवस्थायें और देह के दश कोष

प्राण, मन, बुद्धि और देह-धर्मों की छः ऊर्मियाँ अर्थात् आर्त (व्याकुल) दशा उत्पन्न करनेवाली विशेष अवस्थायें होती हैं—१ बुभुक्षा (भूख), २ पिपासा (प्यास), ३ शोक, ४ मोह, ५ जरा (वृद्धावस्था) और ६ मृत्यु।

पिता के शुक्र (वीर्य) से १ स्नायु, २ अस्थि, ३ मज्जा और माता के शोणित (रक्त-रज) से ४ त्वक्, ५ मांस, ६ रक्त—इन छः कोषों से युक्त 'षाट्-कौषिक' देह सब जीवों को मिलती है।

वेदान्त में चार कोषों के नाम दिये हैं—१ अन्न-मय कोष, २ मनोमय कोष, ३ विज्ञान-मय कोष, ४ आनन्द-मय कोष। अन्य मत से इनके नाम इस प्रकार हैं—१ प्राण-मय, २ विज्ञान-मय, ३ मनोमय, ४ आनन्द-मय।

माता-पिता द्वारा खाये 'अन्न' से बने वीर्य-रज द्वारा उत्पन्न देह 'अन्न' से बढ़ती है। इस प्रकार पहला अन्न-मय कोष हुआ। इस कोष में बाह्य चेतना देनेवाले 'मन' की उत्पत्ति होने पर दूसरा 'मनोमय' कोष बनता है। आन्तरिक चेतना—आत्मा से सम्पन्न होने पर 'विज्ञान' अर्थात् विशेष ज्ञान की अनुभूति होती है, तब तीसरा 'विज्ञान-मय' कोष प्रस्तुत होता है। पुण्य-कर्मों के फल को अनुभव करते समय बुद्धि जब अन्तर्मुखी होती है, तब आत्म-स्वरूप का आनन्द-रूप अनुभव में आता है और चौथे 'आनन्द-मय' कोष की प्रतीति होती है।

तन्त्रोक्त १ मज्जा-मय, २ अस्थि-मय, ३ स्नायु-मय, ४ चर्म-मय, ५ मांस-मय, ६ रक्त-मय—इन छः कोषों को वेदान्त के 'अन्न-मय' कोष के अन्तर्गत मान लिया गया है। अतः इन छः कोषों के अतिरिक्त ७ प्राण-मय, ८ विज्ञान-मय, ९ मनोमय, १० आनन्द-मय—कुल १० कोषोंवाली देह प्रतिपादित होती है।

गर्भस्थ जीव की विशेष अवस्थायें

धातुओं में रस आदि का पाचन क्रमशः शुक्र तक होता है। शुक्र का पाचन होने से वह स्वयं जरा की आठवीं दशा तक भेदन करता है। क्षेत्रज्ञ जीव उस समय केवल आश्रय की इच्छा करता है।

देह से आवृत्त, दश कोशों के भीतर अवस्थित क्षेत्रज्ञ आत्मा इन्द्रियों द्वारा अपने-अपने विषय को ग्रहण करने के लिये अपने तेज को उसी प्रकार फैलाती है, जिस प्रकार दीपक के जलते समय तैलादि स्नेह (द्रव) जलने के लिये दीप-शिखा की ओर स्वयं बढ़ता है अथवा जिस प्रकार बिजली की चमक चमकने के समय बादल में फैलती है अथवा जिस प्रकार बहुत से छिद्रवाले घड़े से ढँकी हुई अग्नि की लपटें घी को खाने के लिये लपकती हैं।

इन्द्रियाँ बहुत सी हैं अतएव उनके द्वारा बहुत से विषयों को ग्रहण किया जाता है। अतः अन्तर्दृष्टि से बाह्य विषयों के अवलोकन के फल-स्वरूप पाश कटते हैं और 'प्रौढ़ोल्लास' की अनुभूति होकर चित्त विघ्नों से दूर होकर परम-ब्रह्म-स्वरूप होता है। इसी के अनुरूप कुल-योगी की अन्तरात्मा भावपूर्ण मधुर उद्गारों से प्रसन्न होकर मुस्कान-युक्त 'शाम्भवी' अवस्था की कामना करती है। प्रौढ़ोल्लास-प्रार्थना की निम्न पंक्ति का यही आशय है—

स्मेरास्या मे भवतु सततं शाम्भवी काप्यवस्था।

अन्तर्दृष्टि और बहिश्चक्षु के प्रसङ्ग में वैष्णवों का कथन है कि मुकुन्द के चरण-कमलों में तत्पर भक्त भौतिक विषयों के द्वारा मोह में उसी प्रकार नहीं पड़ता, जिस प्रकार सङ्गीत, नृत्य की गति और ताल के वश में होने पर भी नर्तकी अपने सिर पर रखे हुये घड़े को गिरने नहीं देती।

इन्द्रियों में पाँच भूतों की अवस्थिति

'आकाश' (नभ) श्रोत्र (कान) में, 'वायु' (अनिल) चर्म (त्वचा) में, 'अग्नि' चक्षु (नेत्र) में, 'जल' (उदक) जिह्वा में और पृथ्वी (अवनी) घ्राण (नाक) में—यह सामान्य स्पष्टीकरण है। वास्तव में पहले वर्णित 'पञ्चीकरण' के अनुसार पाँचों इन्द्रियों में से प्रत्येक इन्द्रिय में पाँचों भूतों की अवस्थिति है।

'पित्त' को जब वायु (मरुत्) रस में लीन करता है, तब धातु क्रमशः रक्त में से 'लसीका' नामक द्रव को निकालती है, जो रोम-छिद्रों से स्वेद (पसीने) की बूंदों के रूप में बाहर आता है। जब 'कफ' वायु और पित्त से प्रेरित होता है, तब वह शीघ्र ही ऊपर को वाष्प-रूप में प्रवर्तित होता है। कफात्मिका विकृति से कानों के छिद्र भर जाते हैं अथवा कर्मों के फल-स्वरूप गण्ड-मालादि विकार जीवों के होते हैं।

गर्भ में जीव पूर्व-जन्मों के शुभ-अशुभ कर्मों को स्मरण करता हुआ दुःखी होकर रहता है। नवें मास में गर्भस्थ जीव के हृदय में सभी बातों की स्मृति उत्पन्न हो जाती है और वह नौ द्वारों से युक्त देह में अपना समय बिताता है। माता की पीठ का आश्रय लिए हुये अपने ललाट से वह अपनी अञ्जलि लगाये रखता है। पूर्व जन्मों में किए कर्मों का फल भोगने की इच्छा से जीव अविद्या से युक्त होकर गर्भ में प्रवेश करता है।

कर्म तीन प्रकार के होते हैं—१ सञ्चित, २ प्रारब्ध और ३ आगामी। 'सञ्चित' कर्मों का नाश प्रायश्चित्त और औषधि आदि से होता है। 'आगामी' कर्मों का निवारण तपस्या द्वारा होता है किन्तु 'प्रारब्ध' कर्मों का फल भोगने के सिवा अन्य उपाय नहीं है। इसी से 'प्रारब्ध' के फल-भोग के लिये जीव को गर्भ में प्रवेश करना पड़ता है। भोग द्वारा ही 'प्रारब्ध' का क्षय होता है।

पूर्व जन्मों के अपने सुकृत और दुष्कृत सभी कर्मों को जानता हुआ जीव गर्भ में पैर ऊपर और मुख नीचे करके घोर अन्धकार में रहता है। गर्भ की पीड़ा से दुखी होकर वह नित्य यही भावना करता

रहता है कि 'मैं संसार-सागर से पार करानेवाले पवित्र ज्ञान का अभ्यास करूँगा।' इस प्रकार चिन्तन करता हुआ गर्भस्थ जीव क्षण भर के लिये निश्चेष्ट होता है। उस स्थिति में मुख से शब्द निकालने में वह असमर्थ रहता है। उसके शरीर के अन्तर्गत पचास अक्षर वाले शब्द-ब्रह्म का आविर्भाव होता है। शरीर के षट्-चक्रों में नाद-विन्दु से युक्त मातृका की स्थिति इस प्रकार होती है—

आधारे लिङ्ग-नाभौ प्रकटित-हृदये तालु-मूले ललाटे।
द्वे पत्र षोडशारे द्विदश-दश-दले द्वादशार्द्धे चतुष्के॥
वासान्ते वाल-मध्ये डफकठ-सहिते कण्ठ-देशे स्वराणाम्।
हक्षौ तत्त्वार्थ-चिन्त्यं सकल-दल-गतं वर्ण-रूपं नमामि॥

अर्थात् १ मूलाधार (चतुर्दल) में—'**व श ष स**', २ लिङ्ग-मूल (षट्-दल) में—'**ब भ म य र ल**', ३ नाभि (दश-दल) में—'**ड ढ ण त थ द ध न प फ**', ४ हृदय (द्वादश-दल) में—'**क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ**', ५ कण्ठ (षोडश-दल) में—'**अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः**' और ६ ललाट (द्वि-दल) में—'**ह क्ष**' की अवस्थिति है।

देह में चौदह भुवन एवं कुल-पर्वत, द्वीप, सागर, ग्रह, राशि, नक्षत्रादि

१ तल—पैरों के नीचे, २ वितल—तल के ऊपर, ३ सुतल—जानुओं में, ४ अतल—सन्धि के छिद्र में, ५ तलातल—गुदा के मध्य में, ६ रसातल—लिङ्ग-मूल में, ७ पाताल—कटि (कमर) की सन्धि में, ८ भू-लोक—नाभि में, ९ भुवोलोक—हृदय में, १० स्वर्लोक—कण्ठ में, ११ महर्लोक—चक्षु (नेत्र) में १२ जन-लोक—महर्लोक के ऊपर, १३ तपोलोक—ललाट में, १४ सत्य-लोक—महा-योनि में।

१ मेरु त्रिकोण में स्थित है, २ मन्दर ऊर्ध्व-कोण में, ३ कलास दक्षिण-कोण में, ४ हिमालय वाम-कोण में, ५ गन्ध-मादन मध्य में, ६ विन्ध्य और ७ विष्णु कुल-पर्वत त्रिकोण के ऊपर स्थित हैं।

१ जम्बु-द्वीप अस्थियों में, २ कुश-द्वीप मांस में, ३ क्रौञ्च-द्वीप शिराओं में, ४ शाक-द्वीप रक्त में, ५ शाल्मलि-द्वीप सब सन्धियों में, ६ प्लक्ष-द्वीप लोमों में और ७ पुष्कर द्वीप नाभि में स्थित हैं।

१ लवण-सागर मूत्र में, २ क्षीर-सागर शुक्र में, ३ दधि-सागर मज्जा में, ४ घृत-सागर मज्जा के ऊपर, ५ जल-सागर वसा में, ६ इक्षु-सागर कटि में, ७ सुरा-सागर शोणित (रक्त) में अवस्थित हैं।

१ सूर्य नाद-चक्र में, २ चन्द्रमा विन्दु-चक्र में, ३ मङ्गल नेत्र में, ४ बुध (सोम-सुत) हृदय में, ५ गुरु उदर में, ६ शुक्र वीर्य में, ७ शनि (मन्द) नाभि में, ८ राहु मुख में, ९ केतु पैरों-हाथों में स्थित हैं।

मेषादि राशियों में से प्रत्येक के आदि में 'ॐ' और अन्त में 'नमः' लगाकर शरीर के अङ्गों में न्यास करना चाहिये। इन बारह राशियों के अङ्ग और वर्ण का विवरण निम्न प्रकार है—

राशि	अङ्ग	वर्ण	राशि	अङ्ग	वर्ण
१ मेष	शिर में	अरुण	७ तुला	वस्ति (गुदा) में	सितेतर (कृष्ण)
२ वृष	मुख में	श्वेत	८ वृश्चिक	गुह्य में	पिशङ्ग (नील+पीत)
३ मिथुन	बाहु में	हरित (श्यामल, साँवला)	९ धनुष	उरु में	पिङ्गल
४ कर्कट	हृदय में	पाटल	१० मकर	जानु में	कर्बुरक (कबरा)
५ सिंह	उदर में	पाण्डु	११ कुम्भ	जङ्घा में	मलिन
६ कन्या	कटि में	विचित्र	१२ मीन	अंघ्रि में	बभ्रु (कपिल)

इसी प्रकार अश्विनी आदि २८ नक्षत्रों का विवरण निम्न प्रकार है—

	नक्षत्र	अङ्ग		नक्षत्र	अङ्ग
१	अश्विनी	मूर्ध्नि	१५	स्वाती	निम्न दन्त पंक्ति
२	भरणी	दाईं भ्रू	१६	विशाखा	जिह्वा
३	कृत्तिका	बाईं भ्रू	१७	अनुराधा	ग्रीवा-मूल
४	रोहिणी	दाईं आँख	१८	ज्येष्ठा	दायाँ स्तन
५	मृगशिरा	बाईं आँख	१९	मूला	बायाँ स्तन
६	आर्द्रा	दायाँ कान	२०	पूर्वाषाढ़ा	वक्ष
७	पुनर्वसु	बायाँ कान	२१	उत्तरा	दायाँ पार्श्व
८	पुष्य	दायीं नासा	२२	श्रवण	बायाँ पार्श्व
९	अश्लेषा	बायीं नासा	२३	अभिजित	नाभि
१०	मघा	दायाँ गण्ड	२४	धनिष्ठा	नितम्ब
११	पूर्व-फाल्गुनी	बायाँ गण्ड	२५	शतभिषा	पृष्ठ
१२	उत्तरा-फाल्गुनी	ऊर्ध्वोष्ठ	२६	पूर्व-भाद्रपद	गुह्य
१३	हस्ता	अधरोष्ठ	२७	उत्तर-भाद्रपद	दायाँ पैर
१४	चित्रा	ऊर्ध्व दन्त-पंक्ति	२८	रेवती	बायाँ पैर

शरीर में राशि, नक्षत्रों के बताने का प्रयोजन यह है कि प्रश्न करते समय प्रश्न-कर्ता जिस अङ्ग पर हाथ रखे, उस अङ्ग में पड़नेवाली राशि से वर्ण आदि का ज्ञान प्राप्त करना चाहिये।

श्री विद्या की उपासना में राशि-न्यास और नक्षत्र-न्यास का इसी क्रम से निर्देश किया गया है।

शुक्र (वीर्य) से रक्त, रक्त से विन्दु उत्पन्न होता है। प्राण से वायु और अपान से कालाग्नि की उत्पत्ति होती है। शुक्र से नाभि और शुक्र से ही अग्नि का उद्भव होता है। अपान से उत्पन्न कालाग्नि नाभि में रहता हुआ बड़वाग्नि-रूप से आहार को पचाता है। शुक्र से उत्पन्न और वायु-पित्त-कफ-धातुओं में स्थित दस अग्नियाँ हैं। मांस से मल और मज्जा की उत्पत्ति होती है। शुक्र से जीवों की जिह्वा और नासिका उत्पन्न होती है। रक्त से बाएँ और दाएँ नेत्र उत्पन्न होते हैं। प्राण से शून्य की और घ्राण से (नासिका) के दोनों रन्ध्रों की उत्पत्ति होती है।

शरीर में तीर्थ

शरीर में चन्द्र, सूर्य और वह्नि (अग्नि) तथा दस नाड़ियाँ हैं। पाँच वायु (प्राण), मन और विन्दु हैं। षट्-चक्र, मेरु-दण्ड और उड्डीयान, जालन्धर, कामरूप, पूर्णगिरि तथा श्रीहट्ट पीठ हैं। जीव का आकार विविध प्रकार से ब्रह्माण्ड-रूप कहा गया है। स्थूल, सूक्ष्मादि सभी विग्रह उसमें हैं। देह के मध्य में मेरु आदि सातों कुल-पर्वत हैं। मूल से लेकर मस्तक तक सुमेरु-पर्वत मेरु-दण्ड के अधोभाग में दो अंगुल ऊपर से अवस्थित है। इसी प्रकार भू आदि सात लोक और सातों पाताल भी स्थित हैं।

प्रकृति, पुरुष, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, नद, समुद्र, चौदहो भुवन आदि जो गुण ब्रह्माण्ड में हैं, वे सभी देह में विद्यमान हैं।

मेरु-पृष्ठ में १६ कलाओं से युक्त चन्द्रमा है, जो अधोमुख होकर अहर्निश तुषार-जैसी शीतल उज्ज्वल आभा की धारा बरसाता रहता है। सुधांशु (चन्द्र) से अमृत के बिन्दु झरते रहते हैं। इन्हीं विन्दु-

रत्नों के मध्य देह की सिद्धि होती है। जीवों के वस्ति-देश में शङ्खिनी-मूल को व्याप्त कर जवा-कुसुम के समान रक्त-वर्ण सूर्य १२ कलाओं से युक्त रहता है। १० कलाओं से युक्त वह्नि सभी जीवों की देह में सदा अन्नादि को पचाता रहता है। चन्द्रमा तुषार की वर्षा करता, है तो सूर्य सदा शोषण करता है। इनके संयोग से प्राण स्थित रहता है और इनका वियोग होने से मृत्यु हो जाती है। ऊर्ध्व-भाग में रश्मि (किरण) और अधोभाग में चन्द्रामृत सदा रहता है। काम-रूप का अभ्यास ही योग है। प्राण और अपान का योग करने से योगी 'संयोगी' माना गया है। प्राण चन्द्र-मय है और अपान सूर्य-मय। इन दोनों के संयोग के मध्य रज रोग-कारक होता है। उड्डीयान-बन्ध को दृढ़ता से बाँध कर रेचक और पूरक प्राणायाम करे। प्राण और अपान के योग से समान और उदान का योग होता है। काम-रूप में प्राण, अपान और समान—इन तीनों का योग होता है। नाभि और शक्ति के मध्य में उड्डीयान, वस्ति में जालन्धर, गर्भ में कामरूप, भौहों के मध्य पूर्णगिरि और तालु के ऊपर श्रीहट्ट पीठ को जाने। इसी प्रकार नाभि-मध्य में ब्रह्मा, हृदय-मध्य में केशव (विष्णु) और शिर में शङ्कर—ये तीन स्थान मुक्ति-दायक हैं।

गर्भ से जीव का निकलना

नौवें या दसवें मास में प्रबल प्रसूति-वायु के द्वारा पीड़ित जीव वाण के समान छिद्र से बाहर निकलता है। बाहर गिरकर जान नहीं पाता क्योंकि पहले वह मूर्छित होता है, तब गिरता है। प्रसूति-वायु के वेग और योनि-छिद्र की पीड़ा के कारण गर्भ में जो भी उसका ज्ञान था, वह सब भूल जाता है।

कुण्डलिनी से वर्णों की उत्पत्ति

मूलाधार से पहले जो 'तार' (ध्वनि) उदय होती है, उसे 'परा' कहते हैं। फिर हृदय में पहुँचते उसे जीव देखता है (पश्यति), अतः उसे 'पश्यन्ती' कहते हैं। बुद्धि से युक्त होने पर वही 'मध्यमा' और रोने की इच्छा से मुख द्वारा व्यक्त होने पर 'वैखरी' कहलाती है। सुषुम्णा से बँधी होने से उसी में से पवन-प्रेरित वर्ण-समूह उत्पन्न होता है। इस प्रकार जन्म के बाद बालक का रुदन अव्यक्त वर्ण-स्वरूप ही है और वह वर्ण की उत्पत्ति का द्योतक है। इससे स्पष्ट है कि कुण्डलिनी से ही सामान्यतः सभी वर्णों की उत्पत्ति होती है। श्रोतृ-मार्ग के अलग न होने से कण्ठ, मूर्द्धादि का जब तक भेद नहीं होता, वर्णों का प्रकाश नहीं होता। 'जन्म ले लिया है'—यह भाव उत्पन्न होने पर जीव मन, अहङ्कार और बुद्धि से युक्त होता है। चैतन्यता के साथ उत्पन्न जीव का स्वभाव क्रमशः विकसित होता है। तब वह क्रमशः माता, पिता, बन्धुओं से सम्बद्ध होता है। माता के स्तन से दूध पीकर और माता को देखकर वह रोता नहीं।

जीव की पञ्च निश्चित बातें एवं एकादश अवस्थायें

गर्भ में रहते हुये ही जीव की पाँच बातों की सृष्टि हो जाती है—१ आयु, २ कर्म, ३ वित्त (धन-सम्पत्ति), ४ विद्या, ५, निधन (मृत्यु)। उसकी ११ अवस्थायें होती हैं—१ बालक, २ शिशु, ३ गण्ड, ४ किशोर, ५ युवक, ६ प्रौढ़, ७ अति-प्रौढ़, ८ वृद्ध, ९ अति-वृद्ध, १० पलित और ११ मरण।

कर्मों के अनुसार स्वर्गादि की प्राप्ति

मृत्यु के बाद जीव अपने कर्मों के अनुरूप नरक या स्वर्ग को जाता है। जन्म-काल के कर्मों के फलस्वरूप उसे देव, मनुष्य, पशु, पक्षी, कृमि, स्थावरादि योनि प्राप्त होती है। 'कर्म' के ही अनुसार जीव जन्मता है और 'कर्म के अनुसार मरता है। देह के नष्ट होने पर 'कर्म' ही उसे पुनः देह प्राप्त कराता है।

छठा परिच्छेद

वर्णों की उत्पत्ति का क्रम

कुण्डलिनी का स्वरूप

चैतन्य-रूपा, सर्वगा, विश्व-रूपिणी कुण्डलिनी शिव-सन्निधि को प्राप्त कर नित्यानन्द-मयी रहती है। शिव-सन्निधि में होने से वह 'शक्ति' कही जाती है। वह्नि (अग्नि) और उसकी जलाने की शक्ति में जैसे तादात्म्य रहता है, वही सम्बन्ध शक्ति-स्वरूपा कुण्डलिनी और शिव में है।

गीता में कहा है कि १ भूमि, २ जल, ३ अग्नि, ४ वायु, ५ आकाश, ६ मन, ७ बुद्धि और ८ अहङ्कार—इन आठ प्रकार वाली 'प्रकृति' है। यह जीव-भूता है और यही जगत को धारण करती है।

सभी प्राणियों के मूलाधार में विद्युत् के आकारवाली उक्त शक्ति का स्फुरण होता है। शङ्ख के भीतर जैसे आवर्त्त (गोलाकार) होते हैं, उसी प्रकार यह शिव को लपेट कर रहती है। सर्प की कुण्डली के समान यह कुण्डलो-भूत रहती है। सभी वेद (ज्ञान), सभी मन्त्र, सभी तत्त्व इसमें समाविष्ट हैं। यह सूक्ष्म से भी अधिक सूक्ष्म है। तीनों लोकों की जननी यह शब्द-ब्रह्म-स्वरूपा है। चन्द्र-सूर्याग्नि-रूपा यह पचास वर्ण-रूपिणी अर्थात् मातृका-मयी है। बयालीस अक्षर-वाली 'भूत-लिपि' भी यही है। यह मन्त्र-मय जगत् को उत्पन्न करती है।

सारांश यह है कि कुण्डलो-भूता नाड़ी सर्प के समान मूलाधार में है, जो एक बार गुणिता होने पर शब्द और अर्थ दोनों का प्रकाश करती है। इस अवस्था में यह निम्न बीज-मन्त्रों को उत्पन्न करती है—

१ वेदादि-वीज=ॐ, २ श्री-वीज=श्रीं, ३ शक्ति-वीज=ह्रीं, ४ मनोभव=क्लीं, ५ प्रासाद=ह्सौः, ६ तुम्बुरु=क्ष्म्रच्यूं, ७ पिण्ड=ग्लौं, ८ चिन्ता-रत्न=क्ष्म्रचां, ९ गणेश्वर=गं, १० मार्तण्ड-भैरव=ह्ल्चूं, ११ दौर्ग=दुं, १२ नारसिंह=क्ष्रौं, १३ वराह=न, १४ वासुदेव=क्षौं, १५ हयग्रीव=ह्सौं, १६ श्रीपुरुषोत्तम=अं आदि।

द्विगुणिता होने पर वह समस्त युग्मों को उत्पन्न करती है। यथा—१ हं+सः, २ परा+आत्मा, ३ शब्द+अर्थ, ४ दिन+रात, ५ प्रकृति+पुरुष इत्यादि।

त्रिगुणिता होकर वह सभी त्र्यक्षर मन्त्रों को जन्म देती है। तीन संख्यावाले सभी तत्त्वों को वही व्यक्त करती है। वह शक्ति काल, अग्नि और नाद इन तीनों से समन्वित होकर गूढ़ स्वरूपवाली प्रतीत होती है। उसे ही 'तार' और 'व्योमात्मा' कहते हैं। वही त्रिगुणा, त्रिदोषा, त्रिवर्णा और त्रयी कहलाती है। वही त्रिलोका, त्रिमूर्ति और त्रिरेखा कही जाती है।

चार बार गुणित होने पर कल्याणकारिणी वह शक्ति सूक्ष्मादि स्थानों को व्यक्त करती है। जाग्रत् आदि चार अवस्थाएँ उससे प्रकट होती हैं। गणेश-चतुष्टय, आत्मादि-चतुष्टय, पीठ-धर्म-गज आदि के चतुष्टयों का उससे बोध होता है।

पाँच बार गुणित होने पर सर्वार्थदायिनी वह शक्ति पञ्च-प्राणों आदि को व्यक्त करती है। वही पञ्च कूटोंवाली त्रिपुरा, पञ्चरत्न, महेश और गरुड़ के पञ्चाक्षर मन्त्र, सम्मोहनादि पञ्च बाण, पञ्च कामदेव, पञ्च सुर-द्रुम, पञ्च कला, पञ्च ऋचा आदि का सृजन करती है।

षड्-गुणित होने पर कोषों की ऊर्मियों को भेदन करनेवाली षोढा होती है। उससे छः कूटों-वाला त्रिपुरा-मन्त्र, गणपति, चन्द्रमा, नृसिंह के षडक्षर मन्त्र, वसन्तादि छः ऋतुएँ और छः संख्यावाले आमोदादि गुण, कोष, रस, डाकिनी आदि शक्तियाँ, मार्ग, यन्त्र, आधार आदि सभी व्यक्त होते हैं।

सप्त-गुणित होने पर वह 'तार' (प्रणव) और 'हृल्लेखा' के सात तत्त्वों को स्पष्ट करती है—१ अकार, २ उकार, ३ मकार, ४ विन्दु, ५ नाद, ६ शक्ति, ७ नाद—ये 'तार' का सात भेद हैं। १ हकार, २ रेफ, ३ माया, ४ विन्दु, ५ नाद, ६ शक्ति, ७ शान्ति—ये शक्ति (हृल्लेखा) के सात भेद हैं। इन अङ्गों से वह सातों लोकों, पर्वतों, द्वीपों, पातालों, समुद्रों, ग्रहों, राजों, मुनियों, समिधाओं, अग्नि की जिह्वाओं और धातुओं आदि को जो सप्त-संख्यक हैं, सङ्केतित करती है।

आठ बार गुणित होने पर आठ अक्षरों वाली होकर वह आठ संख्यावाले वसु, आशा (दिशा), मातृ-मूर्ति, नाड़ी, मर्म आदि को व्यक्त करती है। शिव, विष्णु, शक्ति, सूर्य, दुर्गा, नीलकण्ठ, वासुदेव के अष्टाक्षर मन्त्र और शुभ गन्धाष्टक, ब्राह्मी आदि अष्ट माताएँ, अष्ट भैरव, अष्ट-पीठ, अणिमादि अष्ट सिद्धियाँ, अग्नि की अष्ट मूर्तियाँ और यमादि अष्टक उससे उत्पन्न होते हैं।

नौ बार गुणित होने पर वह नौ संख्यावाले मन्त्रों को उत्पन्न करती है। नौ शक्ति-तत्त्व, नौ पीठ-शक्तियाँ, नौ रस, माणिक्यादि नौ रत्न, नौ प्राण, नौ दूतियाँ और नवात्मक सभी वर्ग तथा मण्डल उससे व्यक्त होते हैं।

दस बार गुणित होने पर संसार-दुःख को दूर करनेवाली वह शक्ति गणपति, त्वरिता, त्रिपुरा, सरस्वती, यक्षिणी, वासुदेव, अश्वारूढा, पद्मावती, वायु आदि के दशाक्षर मन्त्रों को उत्पन्न करती है। दश शक्ति-तत्त्व, दश नारियाँ, विष्णु के दश अवतार, दश लोकपाल आदि दशक उससे व्यक्त होते हैं।

ग्यारह बार गुणित होने पर वह जगन्मयी एकादश रुद्रों, आदि-शक्ति और सरस्वती के ग्यारह अक्षर-वाले मन्त्रों को उत्पन्न करती है।

बारह बार गुणित होने पर द्वादश-संख्यक राशियों और सूर्य तथा विष्णु की बारह मूर्तियों को उनके १२ अक्षर वाले मन्त्रों सहित धारण करती है। नित्या, महेश, वासुदेव आदि के द्वादशाक्षर मन्त्र उससे उत्पन्न होते हैं।

तेरह बार गुणित होने पर वह शक्ति वागीश्वरी, अश्वारूढ़ा, विश्वेदेव आदि के त्रयोदशाक्षर मन्त्रों को व्यक्त करती है।

चौदह बार गुणित होने पर वासुदेव और गोपाल आदि के चतुर्दशाक्षर मन्त्रों तथा १४ भुवनों आदि को प्रकट करती है।

पन्द्रह बार गुणित होने पर नित्या, शूलिनी आदि के मन्त्रों और पञ्चदश तिथियों को वह व्यक्त करती है।

सोलह बार गुणित होने पर वह षोडश चक्रों, षोडशाक्षर मन्त्रों, अकारादि षोडश स्वरों और सोलह कलाओं को उत्पन्न करती है।

सत्रह बार गुणित होने पर—लघु-पञ्चमी, तारा आदि के सप्तदशाक्षर मन्त्र;

अठारह बार गुणित होने पर—कृष्ण, वामनादि के अष्टादशाक्षर मन्त्र और अग्नि के संस्कारादि;

उन्नीस बार गुणित होने पर—कृष्ण और पृथ्वी (धरा) आदि के मन्त्र;

बीस बार गुणित होने पर—रत्न, धरा, उमा, महेश्वर आदि के मन्त्र;

इक्कीस बार गुणित होने पर—बटुक के नाम, मन्त्र और यन्त्रादि;

वाइस बार गुणित होने पर—कृष्ण, अन्नाधिपति और सुमुखी आदि के मन्त्र;

तेईस बार गुणित होने पर—लघु-श्यामा, पुरुषोत्तम आदि के मन्त्र;

चौबीस बार गुणित होने पर—सूर्य, शम्भु, विष्णु, शिव, दक्षिणामूर्ति, दुर्गा आदि के चौबीस तत्त्वों से युक्त गायत्री मन्त्र उस परमात्मा से व्यक्त होते हैं।

बत्तोस बार गुणित होने पर सर्व-मन्त्र-मयी विभु मृत्युञ्जय, नृसिंह, वरुण, हयग्रीव, दुर्गा, वराह, गणेश, कार्तिकेय, दक्षिणामूर्ति, कामदेव, वनदुर्गा, अघोर, कृष्ण, गोपाल, भूमि, तारा, महालक्ष्मी, भूतेश्वर, क्षेत्रपाल, मातङ्गिनी आदि के मन्त्र उत्पन्न करतो है।

छत्तीस शैव तत्त्वों को वही रचती है। अन्य मन्त्रों और यन्त्रों को वह शुभदायिनो उत्पन्न करती है। उत्पन्न करने से यहाँ आशय है प्रकाशित करतो है। तभी पूर्वोक्त 'वेद-मयी' इत्यादि विशेषणों की यथार्थता की पुष्टि होगी।

पचास अंश-गुणों से युक्त होने पर वह शक्ति सुषुम्णा-मार्ग के रन्ध्र से ऊपरउठनेवाली ध्वनि के साथ पचास वर्णों को प्रेरित करती है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि सारी सृष्टि मातृका-रूपा कुण्डलिनी के अवयव-स्वरूपा ही है।

अक्षरों की उत्पत्ति का क्रम

मूलाधार में अवस्थित ४२ गुणिता विश्व-नायिका शब्द-ब्रह्म-मयो कुण्डलिनी-शक्ति 'अ' से 'स' तक के ४२ वर्णोंवाली 'भूतलिपि' नामक वर्ण माला को उत्पन्न करती है, जिसका क्रम निम्न प्रकार है—

कुण्डलिनी → शक्ति → ध्वनि → नाद → निबोधिका → अर्द्धेन्दु → विन्दु → परा।

यही सभी अक्षरों की उत्पत्ति का क्रम है। 'चित्' में सत्व का प्रवेश होने पर वह शक्ति कहलाती है। आकाश (शून्य) में स्थित उस शक्ति के 'रजोगुण' से बिद्ध होने पर 'ध्वनि' नाम की उसकी अक्षरावस्था होती है। वही 'तमोगुण' से बिद्ध होने पर 'नाद' नाम की अव्यक्तावस्था कही जातो है। तमोगुण का प्राचुर्य (आधिक्य) होने से वहो 'निबोधिका' और तोनों तत्वों की अधिकता होने से 'अर्द्धेन्दु' नाम से ज्ञात होतो है। इच्छा-शक्ति से ज्ञान-शक्ति प्रदीप्त होकर क्रिया-शक्ति द्वारा विन्दु का सृजन होता है, जो स्थानान्तरित होकर 'परा' नाम से जाना जाता है।

मूलाधार में 'परा', स्वाधिष्ठान में 'पश्यन्ती', हृदय में 'मध्यमा' और मुख में 'वैखरी'—ये वाणी की चार गतियाँ हैं, जो शब्द को जन्म देती हैं।

'परा' सूक्ष्म रूप में अर्थात् ज्योति-मात्र-स्वरूप में कुण्डलिनी के मध्य में विद्यमान रहती है, जो सुनी नहीं जा सकतो। उससे ऊपर को उठकर स्वयं प्रकाशवाली 'पश्यन्ती' सुषुम्ना का आश्रय लेती है। वही हृदय कमल में पहुँचकर नाद-रूपिणो 'मध्यमा' के रूप में और भी ऊपर को उठती है। कण्ठ, तालु, जिह्वा-मूल, ओष्ठ आदि के सम्पर्क में आकर वही सुनने योग्य और शब्द-प्रपञ्च को उत्पन्न करनेवाली 'वैखरो' नाम से प्रसिद्ध होती है। इस प्रकार इच्छा-ज्ञान-क्रियावाली तेजोरूपा गुणात्मिका कुण्डलिनी क्रमशः वर्ण-माला का सृजन करतो है।

बयालिस बार गुणिता होकर वह अकार से सकार तक के ४२ वर्णों की माला (भूतलिपि) रचती है और पचास बार गुणिता होने से वह ५० वर्णों की माला का सृजन करती है। इन्हीं वर्णों से वह कलाओं और रुद्रों आदि को उत्पन्न करती है। कलाओं और रुद्रों का उल्लेख पूर्व हो चुका है। 'आदि' से आशय है कामदेव, उनकी शक्तियों; गणेश, उनकी शक्तियों और क्षेत्रपाल तथा उनकी शक्तियों से। इन सबका विवरण निम्न प्रकार है—

काम और गणश के ५० नाम तथा उनकी शक्तियाँ और ४९ क्षेत्रपाल

वर्ण	काम-रूप	काम-शक्ति	गणेश-रूप	गणेश-शक्ति	क्षेत्रपाल के ४९ रूप
अ	काम (कामेश)	रति	विघ्नेश (विघ्नेश्वर)	ह्री	अजर
आ	कामद	प्रीति	विघ्न-राज	श्री	आप-कुम्भ
इ	कान्त	कामिनी	विनायक	पुष्टि	इन्द्र-स्तुति (सूति)
ई	कान्ति-मान्	मोहिनी	शिवोत्तम	शान्ति	इडाचार (ईडाचार)
उ	कामग	कमल-प्रिया (कमला)	विघ्न-हृद् (कृत्)	क्षान्ति	उक्त-संज्ञ (उक्ल-संज्ञ)
ऊ	काम (कामा)-चार	विलासिनी (सुविलासिनी)	विघ्न-कर्ता (हर्ता)	सरस्वती	उन्माद (ऊन्माद)
ऋ	कामी	कल्प-लता	गण (गण-नायक)	स्वाहा	ऋषि-सूदन
ॠ	कामुक	श्यामला (श्यामा)	एक-दन्त	मेधा	समुक्त (ॠमुक्त)
ऌ	काम-वर्द्धन	शुचि-स्मिता	द्वि-दन्त, सुदन्त	कान्ति	लुप्त-केश (लृप्त-केश)
ॡ	राम (वाम)	विस्मिताक्षी (विस्मिता)	गज-वक्त्र	कामिनी	क्षेपक (लॄपक)
ए	रम (राम)	विशालाक्षी	निरञ्जन	मोहिनी	एक-दंष्ट्रक
ऐ	रमण	लेलिहाना	कपर्दी	नटी	ऐरावत
ओ	रति-नाथ	दिगम्बरी (दिगम्बरा)	दीर्घ-जिह्व (वक्त्र)	पार्वती	ओघ-बन्धु (ओव्व बंधु)
औ	रति-प्रिय	वामा	शंकु-कर्ण	ज्वलिनी (ज्वा०)	रोगाधीश (औषधिघ्न)
अं	रात्रि-नाथ	कुब्जधरा (कुब्जिका)	वृषभ (वृष०)-ध्वज	नन्दा	अंजन
अः	रमा-कान्त	नित्या (कान्ता)	गण (नाथ)-नायक	सुयशा (सुरेशी)	अस्त्र-वार (अस्त्र-बाहु)
क	रममाण	कल्याणी (नित्या)	गजेन्द्र	काम-रूपिणी	कवल (कंवल)
ख	निशाचर	मोहिनी (कुल्या)	सूप (शूप)-कर्ण	उग्रा (उमा)	खरुखानल (खरखानल)
ग	नन्दक	मदना (भोगिनी)	त्रिलोचन	तेजोवती	चामुख्य (गोमुख)
घ	नन्दन	सुरु-श्रेष्ठा (कामदा)	लम्बोदर	सत्या	घण्टादो
ङ	नन्दी	लापिनी (सुलोचना)	महानन्द (नाद)	विघ्नेशानी (विघ्नेशी)	ङमन (ङणन)
च	नन्दयिता	सुलापिनी	चतुर्मूर्ति	सु-रूपिणी	चण्ड-वारण (चारण)
छ	पञ्च-बाण	मर्दिनी	सदा-शिव	कामदा	छटाटोप

ANGIRAS ARYA's

ज	रति-सख	कलह-प्रिया	अमोघ (आमोद)	मद-जिह्वा	जटाल
झ	पुष्प-धन्वा	एकाक्षी (वराक्षी)	दुर्मुख	भूति	ऋद्धीव (झंकार)
ञ	महा-धनु	सुमुखी	सुमुख	भौतिका	जड़ध्वर (ञठध्वर)
ट	भ्रामण	नलिनी	प्रमोदक (प्रमोद)	सिता	टङ्क-पाणि
ठ	भ्रमण	जयिनी (जटिनी)	एक-पद	रमा	ठान-बन्धु (ठाण-बन्धु)
ड	भ्रममाण	पालिनी	द्वि-जिह्व	महिषी	डामर
ढ	भ्रम	शिवा	सूर (शूर)	भञ्जिनी	ढक्कावार (ढंकारवा)
ण	भ्रान्त	मुग्धा	वीर	विकर्णपा	ण-वाण
त	भ्रामक	स-विभ्रमा (रमा)	शिवा-मुख(षण्मुख)	भ्रकुटि	तड़िद्-देह (-दाह)
थ	भृङ्ग	चारु-नेत्रा (भ्रमा)	वरद	लज्जा	स्थिर
द	भ्रान्ताचार	सुलोला (लोला)	वामदेव	दीर्घ-घोणा	दन्तुर
ध	भ्रमावह	चञ्चला	वक्र-तुण्ड	धनुर्द्धरा	धनद
न	मोहन	दीर्घ-जिह्वा	द्विरण्डक (द्विरण्ड)	यामिनी	नत्तिक्रान्त (नति-क्रान्त)
प	मोहक	रति-प्रिया	सेनानी	रात्रि	प्रचण्डक
फ	मोह	लोलाक्षी	ग्रामणी	कामान्धा	फट्-कार
ब	मोह-वर्द्धन	शृङ्गिणी (भङ्गिनी)	मत्त	शशि-प्रभा	बीर-सङ्घ (बीर-सन्ध)
भ	मदन	पावना (पाटला)	विमत्त (विमल)	लोलाक्षी (लोललोचना)	शृङ्ग (भृङ्ग)
म	मन्मथ	मादना (मदना)	मत्त-वाहन	चञ्चला	मेघ-भासुर
य	मातङ्ग	माला	जटी	दीप्ति	युगान्त
र	भृङ्ग-नायक	हंसिनी	मुण्डी	शुभगा	औह्यव (रौरव)
ल	गायन(गायक)	विश्वतोमुखी	खड्गो	दुर्भगा	लम्बोष्ठ
व	गोतिज(गीती)	नन्दिनी(जगदानन्दिनी)	वरेण्य	शिवा	वसव
श	नर्त्तक	रमणी	वृष-केतन	गर्भा (भर्गा)	शुक-नन्द
ष	खेलक	कान्ति	भक्ष्य-प्रिय	भगिनी	षडाल
स	उन्मत्त	कल-कण्ठी (कलङ्कघ्नी)	गणेश	भोगिनी	शुना-नाह (सुनामा)
ह	मत्तक	वृकोदरी	मेघ-नायक(नाद)	सुभगा	वृक (हंभ्रक)
ळ	विलास(विलासी)	मेघ-श्यामा	व्यापी (गणप)	काल-रात्रि	—
क्ष	लोभ-वर्द्धन	रुषोन्मत्ता (लोभ-वर्द्धिनी)	गणेश्वर	कालिका	—

कामदेव के सभी स्वरूप अनार-पुष्प के समान आभावाले हैं और पुष्प-बाण तथा ईख के धनुष लिये हैं और सब प्रकार से विभूषित हैं। उनके वामार्द्ध-भाग में सौम्य-रूपा, कुंकुम-वर्णा, रक्ताम्बरा उनकी शक्तियाँ हैं, जो हाथ में नील कमल लिये हैं और तीनों लोकों को वशीभूत करने में समर्थ हैं।

गणेश के सभी स्वरूप गज-मुख, त्रिलोचन हैं और तरुण-अरुण के जैसे वर्णवाले हैं। हाथों में पाश, अंकुश, वर और अभय मुद्रा हैं। उन सबकी गोद में अलङ्कारों से प्रदीप्त, रक्त-माला और अरुणाम्बर पहने उनकी शक्तियाँ विराजमान हैं, जो हाथ में रक्त कमल लिये हैं।

क्षेत्रपाल के रूपों के कथन का प्रयोजन यह है कि जिस वर्ण से सम्बन्धित जो क्षेत्रपाल-स्वरूप है, उसका उस प्रसङ्ग में यजन करना चाहिये क्योंकि क्षेत्रपाल के पूजन के बिना जो भी कर्म किया जाता है, वह निष्फल होता है।

वैखरी की सृष्टि

मनुष्यों की सुषुम्णा-नाड़ी के रन्ध्र (छिद्र) से मरुत् (वायु) द्वारा प्रेरित होकर वर्ण (अक्षर) कण्ठ आदि अङ्गों से क्रमशः सदा मुख द्वारा व्यक्त होते हैं। पिंजड़े में शुक (तोता), सारङ्ग (मैना) आदि पक्षी भी सज्जनों के सम्पर्क से कल्याणकारी नाम का उच्चारण करते हैं। आत्मा बुद्धि के सामर्थ्य से मन को बोलने की इच्छा से युक्त करती है और मन शरीरस्थ अग्नि के द्वारा वायु को प्रेरित करता है। वायु हृदय में विचरण करता हुआ ध्वनि को उत्पन्न करता है।

शिक्षा-सूत्र के अनुसार 'वर्ण' के आठ स्थान हैं—१ उर, २ कण्ठ, ३ शिर, ४ जिह्वा-मूल, ५ दाँत, ६ नाक, ७ ओठ, ८ तालु। पचास मातृका वर्णों का उच्चारण गुरु से सीखना चाहिये। इस प्रकार वर्णों के उच्चारण में पक्षियों के समान मनुष्य को भी गुरु-रूप सज्जनों का सम्पर्क आवश्यक है।

वर्णों में से १६ स्वर-वर्ण '**सौम्य**' कहे जाते हैं क्योंकि वे सोम (चन्द्र) के रूप हैं। ये '**काम-प्रद**' हैं।

'क' से 'म' तक के २५ व्यंजन-वर्ण 'सौर' कहलाते हैं क्योंकि 'क' से 'भ' तक के २४ वर्ण प्रकृति आदि २४ तत्त्वात्मक हैं और उनका योग सूर्य-रूप 'म' से होता है। 'म' विन्दु-रूप होने से सूर्य का स्वरूप है। विन्दु को पुरुष और रवि (सूर्य) कहते हैं। इस प्रकार सूर्य-स्वरूप विन्द्वात्मा 'म' से स्पर्श किये जानेवाले 'क' आदि वर्णों का एक नाम 'स्पर्श'-वर्ण भी है। ये '**धन-प्रद**' हैं।

'य' से 'क्ष' तक के १० वर्ण 'आग्नेय' कहलाते हैं क्योंकि वे अग्नि के रूप हैं। इनमें से अन्तिम 'क्ष' का नाम 'नृसिंह' है, जो कालाग्नि-रूप है, इस कारण या दोष और दूष्यों में विद्यमान रहने से भी इन्हें 'आग्नेय' कहते हैं। ये 'धर्म-प्रद' हैं।

'अ' और 'इ' के योग से '**ए**' और 'ए' में 'आ' के योग से '**ऐ**' बनता है। इसी प्रकार 'अ' और 'उ' के योग से '**ओ**' और 'ओ' में 'आ' के योग से '**औ**' बनता है। ये चार '**सन्ध्यक्षर**' (सन्धि से बने अक्षर) मन्त्र सर्वार्थ-साधक हैं।

'अ', क-वर्ग, 'ह' और विसर्ग— '**कण्ठ्य**' वर्ण हैं; इनका उच्चारण कण्ठ से होता है। 'इ', च-वर्ग, 'य' और 'श'—'**तालव्य**' वर्ण हैं; तालु से इनका उच्चारण होता है। 'ऋ', ट-वर्ग, 'र' और 'ष' '**मूर्द्धन्य**' वर्ण हैं; इन्हें मूर्द्धा से उच्चारण करते हैं। 'लृ', त-वर्ग, 'ल' और 'स'—'**दन्त्य**' वर्ण हैं; दाँतों से इनका

उच्चारण होता है। 'उ', प-वर्ग--'**ओष्ठ्य**' वर्ण हैं, ओठों से इन्हें उच्चारण करते हैं। 'व'—'**दन्तौष्ठ्य**' वर्ण है अर्थात् दाँत और ओठ से उच्चारित होता है। 'ए' और 'ऐ'—'**कण्ठ्य-तालव्य**' वर्ण हैं; कण्ठ और तालु उच्चारित होते हैं। 'ओ' और 'औ'—'**कण्ठ्यौष्ठ**' वर्ण हैं; कण्ठ और ओठ से उच्चारित किये जाते हैं।

वायु द्वारा ऊँची गति से वर्ण की अभिव्यक्ति होने पर स्वर '**उदात्त**' होता है। नीची गति से होने पर 'अनुदात्त' और तिर्यक् (तिरछे) निकलने से '**स्वरित**' स्वर कहा जाता है। डेढ़, दो, तीन मात्राओं से उच्चारण होने पर वर्णों को क्रमशः '**ह्रस्व**', '**दीर्घ**' और '**प्लुत**' नाम से जानते हैं।

वर्णोच्चारण की विधि

पचास वर्णों का उच्चारण गुरु से सीखना चाहिये। आठ वर्ग हैं—१ अ, २ कु, ३ चु, ४ टु, ५ तु, ६ पु, ७ यु और ८ शु। उकार से पाँच-पाँच वर्णों के समूह का बोध होता है।

कण्ठ से स्वरों का, जिह्वा और मूर्धा से ऋ-ॠ का, जिह्वा और दाँतों से ऌ ॡ का, मुख-स्थानों से व्यञ्जनों (हल) का तथा कण्ठ के घात से 'क्ष' का उच्चारण होता है।

दो व्यञ्जनों के संयोग में पहला दीर्घ (गुरु) स्वर होता है। ङ, ञ, ण, न और म—ये पाँच वर्ण नासिका-मूल से उत्पन्न होते हैं।

यह सब विधि जानकर स्तोत्र, कवच, संहिता का पाठ करना चाहिये, अन्यथा पाठ का फल नहीं मिलता।

ह्रस्व और दीर्घ स्वर तथा वर्णों का शिव-शक्त्यात्मक स्वरूप

स्वरों में पहला वर्ण ह्रस्व है, बाद का दीर्घ। 'ए' और 'ओ' दीर्घ होते हुये भी पारिभाषिक रूप से ह्रस्व माने गये हैं। ह्रस्व वर्ण—**अ इ उ ऋ ऌ ए ओ अं**—शिवमय अर्थात् पुरुष-रूप हैं और दीर्घ वर्ण—**आ ई ऊ ॠ ॡ ऐ औ अः**—शक्ति-मय अर्थात् स्त्री-रूप हैं। 'विन्दु' पुमान् (पुरुष) शिव-रूपी रवि कहा गया है और सर्ग (विसर्ग) शक्ति (प्रकृति) रूपी निशाकर (चन्द्र)। विन्दु और विसर्ग पृथक्-भूत होने से अवसान-कारक हैं। ह्रस्व वर्णों में आठवाँ वर्ण 'विन्दु' है और दीर्घ वर्णों में 'विसर्ग' आठवें स्थान पर है। विसर्ग चन्द्र-रूप है, इस कथन से स्पष्ट होता है कि अन्य स्वर-वर्ण चन्द्र के कला-रूप हैं और तिथ्यात्मक हैं। इसी से स्वर-वर्णों को 'सौम्य' कहते हैं। स्वरों के मध्य में स्थित 'चतुष्क' (ऋ ॠ ऌ ॡ) नपुंसक हैं। स्वरों के बिना व्यंजन-वर्णों का उच्चारण नहीं हो सकता और स्वरों का शक्ति-मयत्व बताया जा चुका है। अतः सभी व्यंजन वर्णों को शिव-शक्ति-मय कहा है।

वर्णों का पञ्च-भूतात्मक रूप और 'मातृका' नाम

'अ' से लेकर 'क्ष' तक के वर्णों के समुदाय का नाम '**मातृका**' है। शिव-शक्ति के समवाय से उत्पन्न विन्दु के कारण से मातृका का उद्भव होता है। अतएव कारण से पाँच-पाँच के विभाग से वर्ण पञ्च-भूतात्मक जाने गये हैं। वायु, अग्नि, भू, जल और आकाश क्रमशः पञ्च ह्रस्वों, पञ्च दीर्घों, विन्द्वन्त सन्धि-वर्णों, पञ्च कादि वर्गों और य-क्ष-ल-स-ह्रान्त पञ्चाशल्लिपियों में व्याप्त हैं। आदि में वायु और अन्त में आकाश का उल्लेख करके पञ्चीकरण-प्रक्रिया की मुख्यता निर्दिष्ट की गई है।

सातवाँ परिच्छेद

वर्णों (अक्षरों) की मूर्ति-कल्पना और लिखने का ढँग

वर्णों की उत्पत्ति होने पर उनके सम्बन्ध में कोई भ्रान्ति न हो, अतः विधाता द्वारा उनके रूप की कल्पना कर उनके लिखने की विधि निर्दिष्ट की गई है। इनका विवरण क्रमशः कामधेनु तन्त्र एवं वर्णोद्धार तन्त्र में मिलता है। वर्णों की मूर्ति-कल्पना का वर्णन निम्न प्रकार है—

अ—शरच्चन्द्र-सदृश, पञ्च-कोण-मय, पञ्च-देव-मय, शक्ति-त्रय-युक्त, निर्गुण, त्रिगुणोपेत, कैवल्य-मूर्ति, विन्दु-तत्व-मय, प्रकृति-स्वरूप।

आ—शङ्ख-ज्योतिर्मय, ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र-मय, पञ्च-प्राण-मय तथा परम कुण्डली-रूप।

इ—कुसुमच्छवि, ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र-मय, सदा शक्ति-मय, गुरु-ब्रह्म-मय, सदाशिव-मय, गुण-त्रय-समन्वित, मूर्ति-मान कुण्डली।

ई—पीत-विद्युत् के सदृश आकृति-युक्त, परम-कुण्डली-रूप, ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र-मय, पञ्चदेव, पञ्च-प्राण तथा चतुर्ज्ञान-मय।

उ—पीत-चम्पक सदृश, अधः-कुण्डलिनी, पञ्च-देव तथा पञ्च-प्राण-मय, चतुर्वर्ग-प्रद।

ऊ—शङ्ख और कुन्द के सदृश आकार-युक्त, परम कुण्डली, पञ्च-प्राण तथा पञ्च-देव-मय, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष और सदा सुख-प्रद।

ऋ—मूर्ति-मान् कुण्डली, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र-मय, सदाशिव-युक्त, ईश्वर-संयुक्त, पञ्च-वर्ण तथा चतुर्ज्ञान-मय, रक्त-विद्युत्-सदृश।

ॠ—परम-कुण्डली, पीत-विद्युत्-सदृश, पञ्च-देव तथा चतुर्ज्ञान-मय, पञ्च-प्राण-युक्त, त्रि-शक्ति-सहित।

ऌ—पीत-विद्युत्-सदृश, कुण्डली पर-देवता, ब्रह्मादि देवों का निवास-स्थान, पञ्च-देव, चतुर्ज्ञान तथा पञ्च-प्राण-मय, गुण-त्रयात्मक, विन्दु-त्रयात्मक।

ॡ—पूर्णचन्द्र-सम-प्रभ, पञ्च-देवात्मक, गुण-त्रयात्मक, विन्दु-त्रयात्मक, चतुर्वर्ग-मय, परम-कुण्डली।

ए—रञ्जनी-कुसुम-सदृश, ब्रह्मा-विष्णु-शिवात्मक, पञ्च-देव-मय, पञ्च-प्राणात्मक, विन्दु-त्रयात्मक, चतुर्वर्ग-प्रद, परम-कुण्डली।

ऐ—कोटि-चन्द्र-सदृश, महा-कुण्डलिनी, पञ्चप्राण, ब्रह्मा, विष्णु व रुद्र-मय। सदाशिव-मय, विन्दु-त्रय-युक्त।

ओ—रक्त-विद्युत्-सदृश, पञ्च-देव-मय, त्रिगुणात्मा, ईश्वर, पञ्च-प्राण-मय, देव-माता, परम-कुण्डली।

औ—रक्त-विद्युत्-सदृश, कुण्डली, ब्रह्मादि-देवों का निवास, पञ्च-प्राण तथा सदाशिव-मय, ईश्वर-संयुक्त, चतुर्वर्ग-प्रद।

अं—पीत-विद्युत्-सदृश, पञ्च-प्राणात्मक, ब्रह्मादि-देव तथा सर्व-ज्ञान-मय, विन्दु-त्रय-समन्वित।

अः—रक्त-विद्युत्कान्ति, पञ्च-देव, पञ्च-प्राण तथा सर्व-ज्ञान-मय, आत्मादि-तत्वों से युक्त, विन्दु-त्रय, शक्ति-त्रयात्मक।

क—जपा, यावक तथा सिन्दूर-सदृश कान्ति-शालिनी, चतुर्भुजा, त्रिनेत्रा, बाहु-लताओं से शोभित, कदम्ब की कलियों के आकारवाले स्तनों से विभूषित, रत्न, कङ्कण, केयूर तथा अङ्गदों से सुशोभित, रत्न तथा पुष्पहारों से मण्डित, परमेश्वरी कामिनी-रूप।

ख—कुण्डली-त्रय-युक्त, शङ्ख तथा कुन्द के समान कान्ति-शाली, त्रिकोण तथा विन्दु-त्रय-संयुक्त, गुण-त्रय, पञ्च-देव एवं शक्ति-त्रय-विशिष्ट, सामान्यतया सर्व-शक्त्यात्मक।

ग—पञ्च-देवात्मक, निर्गुण, त्रिगुणोपेत, निरीह, निर्मल, पञ्च-प्राणमय, अरुणादित्य-सदृश, कुण्डली-रूप।

घ—चतुष्कोणात्मक, पञ्च-देव-मय, तरुणादित्य-सदृश, त्रिगुणोपेत, सर्व-गति, सर्व-प्रद, शान्त।

ङ—परम-कुण्डली-रूप, त्रिगुण एवं सर्व-देव-मय, पञ्च-प्राण-मय।

च—चतुर्वर्ग-प्रद, कुण्डली से युक्त, परम-कुण्डली-रूप, रक्त-विद्युत्-सदृश, त्रिगुण, पञ्च-देव, पञ्च-प्राण, त्रि-शक्ति तथा विन्दु-त्रय-युक्त।

छ—परम-कुण्डली-रूप, कुण्डली-संयुक्त, पञ्च-देव, पञ्च-प्राण, त्रि-शक्ति, त्रि-विन्दु एवं ईश्वर-युक्त, पीत-विद्युत्-सदृश।

ज—भव्य-कुण्डली-रूप, शरच्चन्द्र-सदृश, त्रि-गुण, पञ्च-देव, पञ्च-प्राण, त्रि-शक्ति तथा त्रि-विन्दु-सहित।

झ—कुण्डली तथा मोक्ष-रूप, रक्त-विद्युत्-सदृश, त्रि-गुण-युक्त, पञ्च-देव तथा पञ्च-प्राणात्मक, त्रि-विन्दु, त्रि-शक्ति एवं ईश्वर-संयुत।

ञ—रक्त-विद्युत्-लता-तुल्य, परम-कुण्डली-रूप, पञ्च-देव तथा पञ्च-प्राण-मय, त्रि-शक्ति एवं त्रि-विन्दु सहित।

ट—परम-कुण्डली-रूप, पञ्च-देव एवं पञ्च-प्राण-मय, त्रि-शक्ति तथा त्रि-विन्दु-युक्त।

ठ—कुण्डली और मोक्ष-रूप, पीत-विद्युल्लता के आकार-सदृश, त्रि-गुण, पञ्च-देव एवं पञ्च-प्राणात्मक, त्रि-विन्दु एवं त्रि-शक्ति-सहित।

ड—त्रि-गुण-युक्त, पञ्च-देव और पञ्च-प्राणमय, त्रि-शक्ति तथा त्रि-विन्दु-सहित, चतुर्ज्ञान-मय एवं आत्मादि-तत्वों से युक्त, पीत-विद्युल्लताकार।

ढ—परा-कुण्डली, पञ्च-देव—पञ्च-प्राणमय, त्रिगुण तथा आत्मादि-तत्व-युक्त, रक्त-विद्युल्लताकार।

ण—परम-कुण्डली, पीत-विद्युल्लताकार, पञ्च-देव तथा पञ्च-प्राण-मय, आत्मादि-तत्वों से संवलित एवं महा-सौख्य-प्रदायक।

त—स्वयं परम-कुण्डली, पञ्च-देव तथा पञ्च-प्राण-मय, त्रिशक्ति एवं आत्मादि-तत्व-युक्त, त्रि-विन्दु-सहित, पीत-विद्युत्-सम कान्ति-शाली।

थ—कुण्डली तथा मोक्ष-रूप, त्रि-शक्ति तथा त्रि-विन्दु-सहित, पञ्च-देव तथा पञ्च-प्राण-मय, तरुण आदित्य के समान कान्ति-शाली।

द—चतुर्वर्ग-प्रदाता, पञ्च-देव-मय, त्रि-शक्ति-सहित, ईश्वर-संयुत, त्रि-विन्दु तथा आत्मादि-तत्व-युक्त, परम कुण्डली-रूप, रक्त-विद्युल्लताकार।

ध—कुण्डली तथा मोक्ष-रूप, आत्मादि-तत्व-संयुक्त, पञ्च-देव तथा पञ्च-प्राण-मय, त्रि-शक्ति तथा त्रि-विन्दु-सहित, पीत-विद्युत्-सदृश, चतुर्वर्ग-प्रदायक।

न—रक्त-विद्युत् के सदृश आकृति, पञ्च-देव-मय, परम-कुण्डली-रूप, पञ्च-प्राणात्मक, त्रि-विन्दु तथा त्रि-शक्ति-युक्त, आत्मादि-तत्व-युक्त, चतुर्वर्ग-प्रद।

प—अव्यय-मोक्ष-रूप, चतुर्वर्ग-प्रद, शरच्चन्द्र-तुल्य-कान्ति-शाली, पञ्च-देव-मय, स्वयं परम-कुण्डली, पञ्च-प्राण-मय, त्रि-शक्ति तथा त्रि-विन्दु-सहित, आत्मादि-तत्व-युक्त।

फ—रक्त-विद्युत्-सदृश, चतुर्वर्ग-प्रद, पञ्च-देव-मय, पञ्च-प्राणात्मक, त्रि-गुण तथा त्रि-विन्दु-सहित, आत्मादि-तत्त्व-संयुक्त।

ब—चतुर्वर्ग-प्रदाता, शरच्चन्द्रोपम, पञ्च-देव तथा पञ्च-प्राण-मय, त्रि-विन्दु तथा त्रि-शक्ति-सहित, निविड़ अमृत के समान निर्मल, कुण्डलिनी-रूप।

भ—परम-कुण्डली-रूप, महा-मोक्ष-प्रद, पञ्च-देव-मय, त्रि-शक्ति तथा त्रि-विन्दु-सहित।

म—परम-कुण्डली-रूप, महा-मोक्ष-प्रद, पञ्च-देव-मय, तरुण आदित्य के समान कान्तिशाली, चतुर्वर्ग-प्रदाता, त्रि-शक्ति तथा त्रि-विन्दु-सहित, आत्मादि-तत्वों से युक्त।

य—चतुष्कोण-मय, पुआल में धुयें के समान कान्ति-शाली, परम-कुण्डली-रूप, पञ्च-देव तथा पञ्च-प्राण-मय, त्रि-शक्ति तथा त्रि-विन्दु-सहित, मूर्तिमान्, अव्यय, मोक्ष-तुल्य।

र—कुण्डली-द्वय-युक्त, रक्त-विद्युत् के सदृश कान्ति-शाली, पञ्च-देव तथा पञ्च-प्राणात्मक, त्रि-विन्दु तथा त्रि-शक्ति-सहित, आत्मादि-तत्व-युक्त।

ल—कुण्डली-द्वय-युक्त, पीत-विद्युत्-सदृश, सम्पूर्ण-रत्न-प्रदाता, पञ्च-देव तथा पञ्च-प्राण-मय, त्रि-शक्ति तथा त्रि-विन्दु-सहित, आत्मादि-तत्व-युक्त।

व—कुण्डली तथा अव्यय मोक्ष-रूप, पुआल के समान कान्ति-शाली, पञ्च-देव तथा पञ्च-प्राण-मय, त्रि-शक्ति तथा त्रि-विन्दु सहित, आत्मादि-तत्वों से युक्त।

श—कुण्डली-तत्व-युक्त, पीत-विद्युत् के सदृश कान्ति-युक्त, सर्व-रत्न-प्रदायक, पञ्च-देव तथा पञ्च-प्राण-मय, त्रि-शक्ति तथा त्रि-विन्दु-सहित, आत्मादि-तत्वों से युक्त।

ष—अष्ट-कोण-मय, रक्त-चन्द्र-सदृश, परम-कुण्डली-रूप, चतुर्वर्ग-प्रद, सुधा-निर्मित-विग्रह, पञ्च-देव तथा पञ्च-प्राण-मय, सत्वादि-त्रि-गुण एवं त्रि-शक्ति-युक्त, त्रि-विन्दु तथा सर्व-देव-मय, आत्मादि-तत्वों से युक्त।

स—परात्पर-शक्ति-बीज, कोटि-विद्युत्-सदृश, कुण्डली-युक्त, पञ्च-देव तथा पञ्च-प्राण-मय, त्रि-गुण, त्रि-विन्दु तथा त्रि-शक्ति-युक्त, आत्मादि-तत्वों से पूर्ण।

ह—चतुर्वर्ग-प्रदाता, कुण्डली-त्रय-युक्त, रक्त-विद्युत्-सदृश-कान्ति-शाली, त्रिगुण तथा वायु आदि पञ्च-देव-युक्त, पञ्च-प्राण, त्रि-शक्ति तथा त्रि-विन्दु सहित।

क्ष—कुण्डली-त्रय-युक्त, चतुर्वर्ग-मय, पञ्च-देव तथा पञ्च-प्राणात्मक, त्रि-शक्ति तथा त्रि-बिन्दु-सहित, आत्मादि-तत्वों से युक्त, रक्त-चन्द्र-सदृश।

भूमि पर वर्ण, मन्त्र, पुस्तकादि लिखने का निषेध

भूमि पर वर्ण, मन्त्र, पुस्तकादि न लिखना चाहिए। न ही पुस्तक को भूमि पर बिना आधार के रखना चाहिए। भू-कम्प होने पर या ग्रहण-काल में भूमि पर अक्षर के होने से सम्बन्धित व्यक्ति को जन्म-जन्मान्तर तक मूर्खता से ग्रस्त रहना पड़ता है।

लेखनी बनाने में शुभ-अशुभ का विचार

बाँस की नोक से वर्ण लिखने से लिखनेवाले की निश्चित रूप से हानि होती है। ताँबे की नोक से अक्षय वैभव की प्राप्ति होती है। स्वर्ण-शलाका से महा-लक्ष्मी प्रसन्न होती हैं। वृहन्नल (बोल) की लेखनी से बुद्धि बढ़ती है। चित्र काष्ठ (चीत की लकड़ी) की लेखनी से पुत्र, पौत्र, धन की प्राप्ति होती है। पीतल की लेखनी विपुल धन प्रदान करती है। कांसे की लेखनी मृत्यु-दायक है। दस या आठ अंगुल की लेखनी से लिखना चाहिये। उससे कम ल ी लेखनी से लिखनेवाले की आयु कम होती है।

पुस्तक का मान और उसका वेधन

एक हाथ या बारह, दस या आठ अंगुल लम्बी चौड़ी पुस्तक बनानी चाहिये। इससे कम नहीं। पुस्तक के मध्य में छेद न करे। आदि और अन्त में दो अंगुल छोड़कर गोल छेद करे। गोल छेद शुभ होता है, दग्ध या चौकोर आदि अन्य प्रकार के छेद हानिकारक होते हैं।

पुस्तक के लिये शुभ पत्र

भोज-पत्र, तेज-पत्र या ताड़-पत्र अथवा सम्भव हो तो स्वर्ण या ताम्र-पत्र पर पुस्तक-लेखन शुभ होता है। अन्य वृक्षों की छाल, केतकी-पत्र, वट-पत्र या चाँदी के पत्र पर भी लिखना शुभ है। अन्य सभी पत्र दुर्गति और हानि-कारक होते हैं।

वेद लिखने का निषेध

पुस्तक में वेद-मन्त्र लिखकर पढ़ने से ब्रह्म-हत्या का पाप लगता है। ऐसी पुस्तक घर में रखने से वज्र-पात होता है।

लेखक की पूजा का फल

सत्ययुग में लिपि के अक्षर में शूल-पाणि, त्रिलोचन, शम्भु का; द्वापर में प्रजापति का; त्रेता में सूर्य का और कलियुग में हरि (विष्णु) का अवस्थान रहता है। अतः लेखन के आरम्भ में और उसके पूरा होने पर लेखक की पूजा गन्ध, पुष्प और मनोहर वस्त्रों से करनी चाहिये। प्रति पृष्ठ जितने अक्षर होते हैं, उतने सहस्र युगों तक पूजा-कर्ता ब्रह्म-लोक में निवास करता है।

पुस्तक लिखने में वेतन लेना निषिद्ध

पुस्तक लिखकर जो वेतन लेता है, वह पुस्तक में लिखित अक्षरों की संख्या की अवधि तक नरक में वास करता है।

आठवाँ परिच्छेद

वर्णों के अभिधान (नाम)

तन्त्र के ग्रन्थों में साङ्केतिक रूप से वर्णों का उल्लेख करने के लिये उनके विविध नाम दिए हैं। उन नामों से वर्णों को जानकर तन्त्रज्ञ वास्तविक अर्थ का ज्ञान प्राप्त करते हैं। यहाँ उनका विवरण दिया जा रहा है—

ॐ=वर्तुल, तार, वाम, हंस, कारण, मन्त्राद्य, प्रणव, सत्य, विन्दु, शक्ति, त्रि-दैवत, सर्व-जीवोत्पादक, पञ्च-देव, ध्रुव, त्रिक, सावित्री, त्रि-शिख, ब्रह्म, त्रि-गुण, गुण-जीवक, आदि-वीज, वेद-सार; वेद-वीज, पञ्च-रश्मि, त्रि-कूट, त्रि-भव, भव-नाशन, गायत्री-वीज, पञ्चांश, मन्त्र-विद्या-प्रसू, प्रभ, अक्षर, मातृका-सूः, अनादि, अद्वैत, मोक्षद, ॐकार।

अ=ललाट, श्रीकण्ठ, सुरेश, एक-मात्रिक, पूर्णोदर, सृष्टि, मेध, सारस्वत, प्रियम्वद, महा-ब्राह्म, वासुदेव, धनेश, केशव, अमृत, कीर्ति, निवृत्ति, वागीश, नरकारि, हर, मारुत्, ब्रह्मा, वामादि, अज, ह्रस्व, करसूः, प्रणवाद्यक, प्रणवाद्यवयव, ब्रह्माणी, काम-रूप, कामेशी, वियत्, विश्वेश, श्रीविष्णु, कण्ठ, अंशिनी, अर्क-मण्डल, ब्राह्मण, काम-कर्षिणी, वर्णाद्य, प्रतिपत् तिथि।

आ=हृदय, अंगुष्ठ, विजय, अनन्त, दीर्घच्छाय, विनायक, क्षीरोदधि, पयोद, पाश, दीर्घास्य, वृत्तक, प्रचण्ड, एकज, रुद्र, नारायण, इतेश्वर, प्रतिष्ठा, मानदा, कान्त, विश्वान्तक, गजान्तक, पितामह, द्वि-ठान्त, भूः, क्रिया, कान्ति, सम्भव, काशी, विघ्न-राज, कुज, वियत्, स्वरान्तक, भग-मालिनी, द्वितीया।

इ=भ्रू-मध्य, दक्ष-नेत्र, नासिका, सूक्ष्मा, शाल्मली, विद्या, चन्द्र, पूषा, सुगुह्यक, सुमित्र, सुन्दरी, वीर, कोटर, काटर, पद्म, माधव, तुष्टि, शान्त, कान्त, कामिनी, काम, विघ्न-विनायक, नेपाल, भरणी, रुद्र, नित्या, क्लिन्ना, पावक, तृतीया।

ई=जिह्वा, कुच-द्वन्द्व, तर्जनी, त्रिमूर्ति, महा-माया, लोलाक्षी, वाम-लोचन, गोविन्द, शेखर, पुष्टि, सुभद्रा, रत्न-संज्ञक, विष्णु, लक्ष्मी, प्रहास, विशुद्ध, परापर, कला, उत्तरीय, भेरुण्डा, रति, पौण्ड्र-वर्द्धन, शिवोत्तम, शिवा, तुष्टि, बिन्दु-मालिनी, वैष्णवी, वैन्दवी, काम-कलस-नादका, पावक, कोटर, कीर्ति, मोहिनी, काल-कारिका, शान्ति, त्रिपुरसुन्दरी, चतुर्थी।

उ=दक्ष-कर्ण, श्रोत्र, शङ्कर, वर्तुलाक्ष, भूत, कल्याण-वाचक, अमरेश, षड्-वक्त्र, मोहन, शिव, उग्र-प्रभ, धृति, विष्णु, विश्व-कर्मा, महेश्वर, शत्रुघ्न, चेटिका, पुष्टि, वह्नि-वासिनी, कामघ्न, कामना, ईशी, मोहिनी, विघ्न-हृद्, मही, डटसूः, कुटिला, पार-द्वीप, वृष, हर, पञ्चमी।

ऊ=कण्ठक, वाम-कर्णक, रति, शान्ति, क्षोधन, मधु-सूदन, काम-राज, कुजेश, महेश, अर्घीश, भैरव, सूक्ष्म, दीर्घ-घोणा, सरस्वती, विलासिनी, विघ्न-कर्त्ता, लक्ष्मण, रूप-कर्षिणी, महा-विद्येश्वरी, षण्ड, भूः, कान्यकुब्ज, षष्ठी।

ऋ=कण, नासिका-धृत, पुर्दीर्घ-मुखी, रुद्र, देव-माता, त्रि-विक्रम, भाव-भूति, क्रिया, क्रूरा, रेचिका, एक-पाद, शिरो-माला, मण्डला, शान्तिनी, जल, काम-लभा, मेघ, निवत्ति, गण-नायक, रोहिणी, शिव-दूती, पूर्ण-गिरि, सप्तमी।

ॠ=क्रोध, अतिथीश, वाणी, वामन, गो, श्री, धृति, ऊर्ध्व-मुखी, निशा-नाथ, पद्म-माला, विनष्ट-धी, शशिनी, मोचिका, श्रेष्ठा, दैत्य-माता, प्रतिष्ठिता, एक-दन्ता, माता, हरिता, मिथुन, दया, कोमल, श्यामला, मेघी, प्रतिष्ठा, पति, ब्रह्मण्य, कीलाल, पावक, गन्ध-कर्षिणी, अष्टमी।

ऌ=दक्ष-गण्ड, स्थाणु, श्रीधर, शुद्ध, मेघ-धूम्र, वक, वियत्, देव-योनि, वहेश, कौन्त, रुद्रक, विश्वेश्वर, दीर्घ-जिह्वा, महेन्द्र, लाङ्गलि, परा, चन्द्रिका, पार्थिव, धूम्रा, द्वि-दन्त, काम-वर्द्धन, शुचि-स्मिता, कान्ति, आयातकेश्वर, चित्ताकर्षिणी, काश, तृतीय-कुल-सुन्दरी, नवमी।

ॡ=वाम-गण्ड, कमला, हर्षा, हृषीकेश, मधु-व्रत, सूक्ष्मा, कान्ति, रुद्र, कामोदरी, सुरा, शान्ति-कृत्, स्वस्तिका, शक्र, मायावी, लोलुप, वियत्, सुस्थिर, माता, नील-पीत, गजानन, कामिनी, विश्वपा, काल, नित्याशुद्ध, शुद्धि, कृती, शूर्य, धैर्य, आकर्षणी, एकाकी, दनुज-प्रसू, दशमी।

ए=ओष्ठ, वास्तव, शक्ति, झिण्टीश, भग, महत्, सूक्ष्मा, भूत, अर्द्ध-केशी, ज्योत्स्ना, श्रद्धा, प्रमर्दन, भय, ज्ञान, कृपा, धीरा, जङ्घा, सर्व-समुद्भव, वह्नि, विष्णु, भगवती, कुण्डली, मोहनी, वस, योषिद्, आधार-शक्ति, त्रिकोणा, ईश, सन्धि, मद्रा, पद्म-नाभ, कुलाचल, एकादशी।

ऐ=अधर, वाम-जानु, लक्ष्मी, भौतिक, कान्ता, वायवी, मोहिनी, विभु, दक्षा, दामोदर, प्रज्ञ, विकृत-मुखी, क्षयात्मक, जगद्-योनि, पर, पर-निबोध-कृत्, ज्ञानामृता, कपर्दिश्री, पीठेश, अग्नि, स-मातृक, त्रिपुरा, लोहिता, राज्ञी, वाग्भव, भौतिकासन, महेश्वर, विमल, सरस्वती, काम-कोटी, अंशुमान, विजया, जटा, द्वादशी।

ओ=ऊर्ध्व-दन्त, सत्य, पीयूष, पश्चिमास्य, श्रुति, स्थिरा, सद्योजाता, वासुदेव, गायत्री, दीर्घ-जङ्घक, आप्यायनी, लक्ष्मी, वाणी, मुखी, द्विज, उद्देश्य, दर्शक, तीव्र, कैलास, वसुधाक्षर, प्रणवांश, ब्रह्म-सूत्र, अजेश, सर्व-मङ्गला, दीर्घ-नासा, रति-नाथ, दिगम्बरा, त्रैलोक्य-विजया, प्रज्ञा, प्रीति, बीजादि-कर्षिणी, त्रयोदशी।

औ=अधोदन्त, कण्ठ, ओष्ठ, शक्तिक, नाद, तेजस, वाम-जङ्घक, मनु-बद्ध-प्रहेश, शंकु-कर्ण, सदा-शिव, सङ्कर्षण, सरस्वती, आज्ञा, ऊर्ध्व-मुखी, शान्त, व्यापिनी, प्रकृत, पर, अनन्ता, ज्वालिनी, व्योमा, रति, प्रिय, नेत्र, आत्माकर्षिणी, ज्वाला-मालिनिका, भृगु, चतुर्दशी।

अं = चक्षुष, दन्त, घटिका, सम-गुह्यक, प्रद्युम्न, श्रीमुखी, प्रीति, बीज-योनि, वृष-ध्वज, पर, शशी, प्रमाणीश, सोम-विन्दु, कला-निधि, अक्रूर, चेतना, नाद-पूर्णा, दुःख-हर, शिव, शिर, शम्भु, नरेश, सुख-दुःख-प्रवर्तक, रेवती, शुद्ध, कन्या-चर, वियद्, रवि, अमृताकर्षिणी, शून्य, विचित्रा, व्योम-रूपिणी, केदार, रात्रि-नाश, कुब्जिका, बुद्-बुद्, पूर्णिमा।

अः = कण्ठक, महा-सेन, काला, पूर्णामृता, हरि, इच्छा, भद्रा, गणेश, रति-विद्या-मुखी, सुख, द्वि-विन्दु, रसना, सोम, अनिबद्ध, दुःख-सूचक, द्वि-जिह्व, कुण्डल, वक्त्र, सर्ग, शक्ति, निशाकर, सुन्दरी, सुयशा, अनन्ता, गण-नाथ, महेश्वर।

क = दक्ष-स्कन्ध, क्रोधीश, महा-काल, काम-देव-प्रकाशक, कपाली, तेजस, शान्ति, वासुदेव, जयानल, चक्री, प्रजापति, सृष्टि, विशांपति, अनन्त, पार्थिव, विन्दु, तापिनी, परमात्मक, वर्गाद्य, मुखी, ब्रह्मा, खाद्य, अम्भः, शिव, जल, माहेश्वरी, तुला, पुष्पा, मङ्गल, चरण, कर, नित्या, कामेश्वरी, मुख्य, काम-रूप, गजेन्द्रक, श्री-पुर, रमण, वङ्ग-कुसुमा, परमात्मक।

ख = प्रचण्ड, काम-रूपी, ऋद्धि, वह्नि, सरस्वती, आकाश, इन्द्रिय, दुर्गा, चण्डीश, तापिनी, गुरु, शिख-ण्डी, दन्त-जातीश, कफोणि, गरुत, यदि, शून्य, कपाली, कल्याणी, सूर्प-कर्ण, जरा, अमर, शुभ्र, आग्नेय, चण्ड-लिङ्ग, जनाव्याङ्गार, खड्गक।

ग = हृदय, गौरी, गौरव, गङ्गा, गणेश, गोकुलेश्वर, शार्ङ्गी, पञ्चान्तक, गाथा, गन्धर्व, सर्वग, स्मृति, सर्व-सिद्धि, प्रभा, धूम्रा, द्विज, शिव-दर्शन, विश्वात्मा, गो, पृथग्-रूपा, बाल-बद्ध, त्रिलोचन, गीत, सरस्वती, विद्या, भोगिनी, नन्दन, धरा, भोगवती, ज्ञान, जालन्धर, लव (नर)।

घ = खड्गी, घर्घुर, घण्टी, घण्टीश, त्रिपुरान्तक, वायु, शिवोत्तम, सत्या, किङ्किणी, घोर-नायक, मरीचि, वरुणा, मेधा, काल-रूपी, दाम्भिक, लम्बोदरा, ज्वाल-मूल, नन्देशी, हनन, ध्वनि, त्रैलोक्य-विद्या, संहर्ता, कामाख्य, अनघा-मय।

ङ = दक्ष-नख, शङ्खी, भैरव, चण्ड, विन्दूत्तंस, शिशु-प्रिय, एक-रुद्र, खर्पर, विषय, स्पृहा, कान्ति, श्वेताह्वय, धीर, द्विजात्मा, ज्वालिनी, वियत्, मन्त्र-शक्ति, वदन, विघ्नेश, आत्म-नायक, एक-नेत्र, महानन्द, दुर्द्धर, चन्द्रमा, यति, शिव-योषा, नील-कण्ठ, कामेशी, मय, अंशुक।

च = वाम-बाहु, पुष्कर, हली, वाणी, आत्म-शक्ति, सुदर्शन, चर्म-मुण्ड-धर, महिषाचार-सन्धिनी, एक-रूप, रुचि, कूर्म, चामुण्डा, दीर्घ-बालुक, मूल-माया, चतुर्मूर्ति-स्वरूपिणी, दयित, द्विनेत्र, लक्ष्मी, त्रितय-लोचन, चन्दन, चन्द्रमा, देव, चेतन, वृश्चिक, बुध, देवी, केट-मुख, इच्छात्मा, कौमारी, पूर्व-फल्गुनी, अनङ्ग-मेखला, वायु, मेदिनी, मुलावती।

छ = वाम-कूर्पर, छन्दन, सुषुम्ना, पशु, पशु-पति, मृति, निर्मल, तरल, वह्नि, भूत-मात्रा, विलासिनी, एक-नेत्र, वृषली, द्वि-शिरा, गो-कर्णा, लाङ्गली, वाम, काम-मत्ता, सदाशिव, माता, निशाचर, पायु, विक्षन, स्थिति-शब्दक।

ज = हृद्, शव, वानर, शूली, भोगदा, विजया, स्थिरा, लल-देव, जय, जेता, धातकी, सुमुखी, विभु, लम्बोदरी, स्मृति, शाखा, सुप्रभा, कर्तका, धरा, दीर्घ-रूप, बहु-रुचि, हंस, नन्दी, तेजा, सुराधिप, जवन, वेगित, वाम, मानवाक्ष, सदात्मक, मारुत, ईश्वर, वेगी, आमोद, मद-विह्वल।

झ = जिह्वा, कुल-मण्डल, झङ्कारी, गुह, झञ्झा-वायु, सत्य, षडुन्नत, अजेश, द्राविणी, नाद, पाशी, जल, स्थिति, विराजेन्द्र, धनुर्हस्त, कर्कश, नादज, कुज, दीर्घ-बाहु-बल, रूप, आकन्दित, सुचञ्चल, दुर्मुख, नष्ट, आत्म-वान्, विकटा, कल-हंस-प्रिया, वामा, अंगुली-मध्य-पर्वक, दक्ष-हास, अष्ट-हास, पायात्मा, व्यञ्जन, स्वर।

ञ = नख, बोधिनी, विश्वा, कुण्डली, मखद, वियत्, कौमारी, नाग-विज्ञानी, सव्यांगुल, वक, सर्वेश-चूर्णिता, बुद्धि, स्वर्गात्मा, घर्घरा-ध्वनि, धर्मैकपाद, सुमुख, विरजा, चन्दनेश्वरी, गायन, पुष्प-धन्वा, रागात्मा, वराक्षिणी।

ट = टङ्कार, कपाली, सोमज, खेचरी, ध्वनि, मुकुन्द, विनदा, पृथ्वी, वैष्णवी, वारुणी, नव, दक्षाङ्क, अर्द्ध-चन्द्र, जरा, भूति, पुनर्भव, वृहस्पति, धनु, चित्रा, प्रमोदा, विमला, कटि, राजा, गिरि, महा-धनु, प्राणात्मा, सुमुख, महत्।

ठ = दक्ष-जानु, उरु-भाव, ललाट, शून्य, मञ्जरी, वीज, पाणिनी, लाङ्गली, क्षया, वनज, नन्दज, जिह्वा, सुनञ्ज, घूर्णक, सुधा, वर्तुल, कुण्डल, वह्नि, अमृत, चन्द्र-मण्डल, देव-भक्ष, वृहद्-ध्वनि, एक-पाद, विभूति, सर्व-मित्रक, वृषघ्न, नलिनी, विष्णु, महेश, ग्रामणी, शशि।

ड = लोचन, स्मृति, दारुक, नन्दि-रूपिणी, योगिनी-प्रिय, कौमारी, शङ्कर, त्रास, त्रि-वक्त्र, नदक, ध्वनि, दुरूह, जटली, भीमा, द्वि-जिह्व, पृथ्वी, सती, कोर-गिरि, क्षमा, कान्ति, नाभि, स्वाती।

ढ = दक्ष-पादांगुलि-मूल, ढक्का, निर्णय, पूर्व, यज्ञेशाद, नदेश्वर, अर्द्ध-नारीश्वर, तोय, ईश्वरी, त्रि-शिखी, नव, सिद्धि, दण्डा, विनायक, प्रहास, त्रिवरा, ऋद्धि, निर्गुण, निधन, ध्वनि, विघ्नेश, पालिनी, त्वक्क-धारिणी, क्रोड़-पुच्छक, एला-पूर, त्वगात्मा, विशाखा, श्री-मनो, रति।

ण = क्षेत्र, दक्ष-पादांगुलेर्मुख, निर्गुण, रति-ज्ञान, जम्भन, पक्षि-वाहन, जया, शम्भो, नरक-जित्, निष्कला, योगिनी-प्रिय, द्वि-मुख, कोटवी, समृद्धि, बोधनी, त्रिनेत्र, मानुषी, व्योम, बांधव, शङ्खिनी, वीर, नारायण, निर्णय।

त = वाम-स्फिक्, वाम-कट्य, कामिनी, मध्य-कर्णक, आषाढ़ी, तण्ड-तुन्न, कामिका, पृष्ठ-पुच्छक, रत्नक, श्याम-मुखी, वाराही, मकर, अरुणा, सुगत, अर्द्धमुखा, बुद्ध-जानु, क्रोड़-पुच्छक, गन्ध, बिश्वा, मरुत्, छत्र, अनुराधा, सौरक, जयन्ति, पुलक, भ्रान्ति, अनङ्ग-मदनातुरा।

थ = वाम-जानु, स्थिरा, महा-ग्रन्थि, ग्रन्थि-ग्राह, भयानक, शिली, शिरसिज, दण्डी, भद्रकाली, शिलोच्चय, कृष्ण, बुद्धि, विकर्मा, दक्ष-नासाधिप, अमर, वरदा, भोगदा, केश, रस, अनल, लोल, जर्जयिनी, गुह्य, शरच्चन्द्र, दिवाकर।

द = वाम-गुल्फक, अद्रीश, धातकि, दाता, दल, कलत्रक, दीन, ज्ञान, दान, भक्ति, आहवनी, धरा, सुषुम्ना, योगिनी, सद्यःकुण्डली, कात्यायनी, शिवा, दुर्गा, लङ्गनाना, त्रि-कण्टुकी, स्वस्तिक, कुटिलारूप, कृष्ण, उमा, जितेन्द्रिय, धर्म-हृद्, वामदेव, भ्रमा, बहु-सुचञ्चला, हरिद्रा, पुरमत्र, रक्ष-पाणि, त्रि-रेखक ।

ध = नेत्र-युग्म, धनार्थ, रुचि, स्थाणु, सात्वत, योगिनी-प्रिय, मीनेश, शङ्खिनी, तोय, नागेश, विश्व-पावनी, धिषणा, धरणा, चिन्ता, प्रिय, मति, पीतवासा, त्रि-वर्णा, धाता, धर्म-प्लवङ्गम, सन्दर्श, मोहन, लज्जा, वज्र-तुण्डा-धर, धरा, वाम-पादांगुलेर्मूल, ज्येष्ठा, सुरपुर, भव, स्पर्शात्मा, दीर्घ-जङ्घा, धनेश, धन-सञ्चय ।

न = नेत्र, वाम-पादांगुलेर्मुख, गर्जिनी, क्षमा, सौरि, वारुणी, विश्व-पावनी, मेष, सविता, दन्तुर, नारद, अञ्जन, ऊर्ध्व-चामी, द्विरण्ड, वैनतेय, स्तुतिवर्त्म, अरणि, बालि, आगम, वामन, ज्वालिनी, दीर्घ, निरीह, सुगति, वियत्, शब्दात्मा, दीर्घ-घोणा, हस्तिनापुर, मेचक, गिरि-नायक, नील, शिव, अनादि, महा-मति ।

प = दक्ष-पार्श्व, पूर-प्रियता, तीक्ष्णा, लोहिता, पञ्चम, रमा, गुह्य-कर्ता, निधि, शेष, काल-रात्रि, सुवाहिता, तपन, पालन, पाता, पद्म-रेणु, निरञ्जन, सावित्री, पातिनी, पान, वीर-तत्व, धनुर्धर, सेनानी, मरीचि, पवन, अशनि, उड्डीश, जयिनी, कुम्भ, अलस, रेखा, मोहक, मूला, द्वितीय, इन्द्राणी, लोकाक्षी, मन, आत्मन् ।

फ = वाम-पार्श्व, सखी, दुर्गिणी, धूम्रा, जनार्दन, जया, पाद, शिवा, रौद्री, फेत्कार, शाखिनी-प्रिय, उमा, विहङ्गम, काल, कुब्जिनी, प्रिय, पावक, प्रलयाग्नि, नील-पाद, अक्षर, पशुपति, शशी, फुत्कार, यामिनी, व्यक्ता, पावन, मोह-वर्द्धन, प्रयाग, ग्रामणी, फल ।

ब = स्थल-गण्ड, अवनी, भूधर, मार्ग, घर्घरी, लोचन-प्रिय, प्रचेता, कलस, पक्षी, कपर्दिनी, पृष्ठ-वंश,अभया, माता, शिखिवाह, युगन्धर, मुख-विन्दु, बली, घण्टा, योद्धा, त्रिलोचन-प्रिय, क्लेदिनी, तापिता, भूमि, सुगणिन्द्र, बलि-प्रिय, सुरभि-मुख, विष्णु, संहार, वसुधाधिप, षष्ठी, पुर, चपेटा, मोदक, गगन, प्रति, पूर्वाषाढ़ा, मध्य-लिङ्ग, शनि, कुम्भ, तृतीयक ।

भ = नाभि, क्लिन्ना, भ्रमर, भीम, विश्व-मूर्ति, निशा, भय, द्विरण्ड, भूषण, मूल, यज्ञ-सूत्र, नक्षत्र, भ्रमणा, दीप्ति, वय, भूमि, पय, नभ, भद्र, महा-बाहु, वितण्डक, प्राणात्मा, तापिनी, वज्रा, विश्व-रूपी, चन्द्रिका, भीमसेन, सुधासेन, सुखी, माया-पुर, हर ।

म = सर्वाङ्ग, काली, क्लेशित, काल, महा-काल, महान्तक, वैकुण्ठ, वसुधा, चन्द्र, रवि, पुरुष-राजक, काल-भद्र, जया, विश्वदा, दीप्त-संज्ञक, जठर, भ्रमा, मान, लक्ष्मीमाता, उग्र-बन्धन, विष, शिव, महावीर, शशि-प्रभा, जनेश्वर, प्रमत्त, प्रियसू, रुद्र, वह्नि-मण्डल, मातङ्ग-मालिनी, श्रवणाभ-रथ, वियत् ।

य = हृदय, वाणी, वसुधा, वायु-विकृति, पुरुषोत्तम, युगान्त, श्वसन, शीघ्री, धूमार्चि, प्राणि-सेवक, शङ्खा, श्रम, जटी, लोला, वायु-वेगी, यशङ्करी, सङ्कर्षण, क्षपा, बाल, हृदय, कपिला, प्रभा, आग्नेय, व्यापक, त्याग, होम, यान, प्रभा, सुख, चण्ड, सर्वेश्वरी, धूम, चामुण्डा, सुमुखेश्वरी, त्वगात्मा, मलय, माता,

हंसिनी, भृङ्गि-नायक, शोषक, मीन, धनिष्ठा, अनङ्ग-वेदिनी, मेष्ठ, सोम, पङ्क्तिनामा, पापहा, प्राण-संज्ञक।

र = कुक्ष्यंश, सुगल, हृदय, रक्त, क्रोधिनी, रेफ, पावक, ओजस, प्रकाशा, दर्शन, दीप, रत-कृष्णा, पर, बली, भुजङ्गेश, मति, सूर्य, धातु-रक्त, प्रकाश, व्यापक, रेवती, दास, वह्नि-मण्डल, उग्र-रेखा, स्थूल-दण्ड, वेद-कण्ठ, पला, पुरा, प्रकृति, ब्रह्म-शब्द, गायक, धन, श्रीकण्ठ, उष्मा, मुण्डी, त्रिपुर-सुन्दरी, सविन्दु-योनि, ज्वाला, श्रीशैल, विश्वतोमुखी।

ल = शिखा, चन्द्र, पुतना, पृथ्वी, माधव, शत्रु-वाचक, बलानुज, पिनाकीश, व्यापक, मांस-संज्ञक, खड्गी, नाद, अमृत, देवी, लवण, वारुणी-पति, वाणी, क्रिया, माता, भामिनी, प्रिया, ज्वालिनी, वेगिनी, नाद, प्रद्युम्न, शोषण, हरि, विश्वात्म, मन्द्र, बली, चेत, मेरुगिरि, कला, रस।

व = स्फिक्, मेद, बाल, वारुणी, सूक्ष्मा, वरुण, खड्गीश, ज्वालिनी, वङ्क, कलस-ध्वनि, उत्कारी, नावीत, वज्रा, सागर, शुचि, त्रि-धातु, शङ्कर, श्रेष्ठ, विशेष, यम-सादन।

श = बाहु, वक्त्र, हृत्, वामोरु, सव्य, काम-रूप, महा-मति, सांख्य, कुमार, अस्थि, श्रीकण्ठ, वृष-केतन, वृषघ्न, शयन, शान्ता, सुभगा, विस्फुलिङ्गिनी, मृत्युदेव, महा-लक्ष्मी, महेन्द्र, कुल-कौलिनी, हंस, वियद्, अनङ्गांकुश, खल, पुण्डरीकात्मा, कान्ति, कल्याण।

ष = वाम-बाहु, जठर, श्वेत, वासुदेव, पीता, प्रज्ञा, विनायक, परमेष्ठी, श्रेष्ठ, गर्भ-विमोचन, लम्बोदर, यम, अजेश, काम-धुक्, काम-धूमक, सुश्री, उष्मा, वृष, लज्जा, मरुद्-मक्ष्य, प्रिय, शिव, सूर्यात्मा, कोष, मत्ता, वक्षो-विदारिणी, कल-कण्ठ, मध्य-भिन्ना, युद्धात्मा, मल-पूः, शिव।

स = दक्ष-पाद, हंस, सुयशा, विष्णु, भृग्वीश, चन्द्र, जगद्-वीज, शक्ति, सोऽहं, वेश-रती, भृगु, प्रकृति, ईश्वर, शुद्ध, प्रभा, श्वेता, कुलोज्ज्वल, अमृत, ब्राह्मी, परमात्मा, पर, अक्षर, सुरूपा, गणेश, गौ, कल-कण्ठ, वृकोदरी, प्राणाद्या, पुरा देवी, लक्ष्मी, सोम, हिरण्यपु, दुर्गोत्तारिणी, सम्मोहा, जीव, मूर्ति, मनोहर।

ह = ललाटज, शिव, गगन, हंस, नाग-लोक, अम्बिका-पति, नकुलीश, जगत्-प्राण, प्राणेश, कपिल, अमल, परमात्मा, आत्मज, जीव, यवाक, शान्तिद, अङ्गन, मृग, अभय, अरुणा, स्थाणु, कुट-कूप-विरावण, शूली, चैतन्य, पाद-पूरण, महा-लक्ष्मी, परम, शम्भु, शाखोठ, सोम-मण्डल।

ळ = जठर, पृथ्वी, विमला, मेघ, अनन्त, अव्यवहासिता, व्यापिनी, शिवदा, केतु, जगत्, सार-तर, हठ, ग्लौ, मृडानी, वेदार्थ-सार, नारायण, नकुलि, पीता, शिवेश, अनङ्ग-मालिनी।

क्ष = सर्वाङ्ग, ललाटक, कोप, तुम्बुक, काली, रूक्ष, सम्वर्तक, पर, नृसिंह, विद्युता, माया, महा-तेजा, युगान्तक, परात्मा, क्रोध, संहार, बलान्त, मेरु, सागर, काम, संयोगान्त्य, त्रि-पूरक, क्षेत्रपाल, महा-क्षोभ, मातृकान्त, अनल-क्षय, मुख, कव्यवहा, अनन्ता, काल-जिह्वा, गणेश्वर, छाया-पुत्र, सङ्घात, मलय-श्री।

नवाँ परिच्छेद

आम्नाय-भेद रूपी केशर

मन्त्रों का प्रकरण

मन्त्र वर्ण-मय होते हैं। अतः वर्णों के प्रकरण के बाद मन्त्रों का प्रकरण (विषय) कहा जाता है। मन्त्रों के प्रसाद से मनुष्य चतुर्वर्ग (धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष) को प्राप्त करता है। कैलास पर्वत की चारों दिशाओं में मन्त्रों के साधक हैं। इस प्रकार तन्त्र चार प्रकार के हैं। भगवान् सदाशिव के निम्न ध्यान के अनुसार १ मुक्ता-वर्णवाले मुख से देवों के लिये; २ पीत-मुख से यक्ष, गन्धर्व, नागों के लिये, ३ पयोद-वर्णी मुख से कूष्माण्डादि विघ्न-लोक के लिये और ४ वैदूर्य, जवा की आभावाले मुख से मनुष्यों के लिये मन्त्र कहे गये हैं। मनुष्यों के लिये सभी तन्त्र-मन्त्र उपयोगी हैं। सुरेश्वर ने शिष्यों को महा-विद्यायें प्रदान कीं। सदाशिव का ध्यान—

मुक्ता - पीत - पयोद - विद्रुम - जवा - वर्णैर्मुखैः पञ्चभि-
स्त्र्यक्षैरञ्जितमीशमिन्दु - मुकुटं पूर्णेन्दु - कोटि - प्रभम् ।
शूलं टङ्क - कृपाण - वज्र - दहनान् नागेन्द्र - घण्टांकुशान्,
पाशं भीति - हरं दधानमसिताकल्पोज्ज्वलं भजे ॥

पृथ्वी पर तन्त्र का अवतरण

पार्वती के मुख से दुर्लभ तन्त्र निकले। भगवान् शिव ने गणेश से उन्हें लिखने को कहा। गणेश जी ने आठ भुजाओंवाला स्वरूप धारण किया और चार हाथों से तन्त्रों को लिखकर शिव जी को बताया। फिर उनकी आज्ञा से सिद्धाश्रमों में जाकर मुनियों को उन्हें प्रदान किया। इस प्रकार पृथ्वी पर तन्त्रों का अवतरण हुआ।

पञ्चाम्नायादि भेद और 'भट्टारक' का अर्थ

परमशिव भट्टारक ने लीला (इच्छा-विशेष) द्वारा ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, व्यास, नारदादि स्वरूपों से श्रुति, अठारह विद्याओं, सभी दर्शनों की रचना की और अपने पाँच मुखों से पञ्च आम्नायों की सृष्टि की। परमशिव अर्थात् प्रसन्नात्मा, महेश्वर प्रकाश का प्रथम स्पन्दन ही शिव-तत्त्व कहा गया है। 'भट्टारक' अर्थात् सभी नियमों का बनानेवाला। 'भ'=भव (संसार) के पापों का शमन, 'ट'=इन्दु (चन्द्र) शेखर, 'र'=रक्षण, 'क'=कमनीय (सुन्दर)।

अष्टादश विद्याएँ, चतुर्वेद, उपवेद, वेदाङ्गादि

४ वेद+४ उपवेद+६ अङ्ग=१४ और १ पुराण; २ न्याय; ३ मीमांसा; ४ धर्मशास्त्र—इस प्रकार १८ विद्यायें श्रुति प्रसिद्ध अर्थात् सर्वथा प्रामाणिक हैं।

४ वेद—१ ऋक्; २ साम; ३ अथर्व; ४ यजुः। **४ उपवेद** क्रमशः—१ आयुर्वेद; २ गान्धर्व वेद ३ दण्ड-नीति (अर्थ-शास्त्र; अस्त्र-शास्त्र); ४ धनुर्वेद।

४ उप-वेद—श्रीमद्-भागवत् के अनुसार पूर्वादि-मुखों से १ आयुर्वेद, २ धनुर्वेद, ३ गान्धर्व-वेद और ४ स्थापत्य—ये चार उपवेद निकले। स्थापत्य अर्थात् विश्वकर्म-शास्त्र, जिसमें गृह, वास्तु, कुण्डादि की रचना-विधि दी है।

६ अङ्ग—१ शिक्षा; २ कल्प; ३ व्याकरण; ४ निरुक्त; ५ छन्द; ६ ज्योतिष।

पुराण—पाँच लक्षणों से युक्त हैं और वेद-व्यास द्वारा प्रणीत हैं।

न्याय—कर्म-मीमांसा। 'न्याय' से आण्वीक्षिकी का भी तात्पर्य है।

मीमांसा—इससे ब्रह्म-मीमांसा, वेदान्त तक का बोध होता है।

धर्मशास्त्र—मनु आदि द्वारा प्रणीत शास्त्र।

यही अठारह विद्यायें हैं।

दर्शन षड् (छः) हैं—१ बौद्ध; २ शैव; ३ ब्राह्म; ४ सौर; ५ वैष्णव; ६ शाक्त। आजकल के विद्वानों के अनुसार १ वेदान्त; २ सांख्य; ३ मीमांसा; ४ वैशेषिक; ५ न्याय; ६ तर्क—ये छः दर्शन हैं।

शैव, पाशुपतादि शास्त्रों की उत्पत्ति

पहले शिव द्वारा शैव-पाशुपतादि शास्त्रों की उत्पत्ति हुई। फिर उनकी शक्ति से आविष्ट विप्रों ने शास्त्र की रचना की। कणाद ने 'वैशेषिक' की, गौतम ने 'न्याय' की, कपिल ने 'सांख्य' की, धिषण ने 'चार्वाक' की, दैत्यों के नाशार्थ विष्णु ने बुद्ध-रूप द्वारा 'बौद्ध'-शास्त्र की रचना की।

आण्विक्षिकी-शास्त्र के अध्ययन से शृगाल-योनि

गौतम-प्रोक्त आण्विक्षिकी (न्याय) शास्त्र का अध्ययन करने से शास्त्रार्थ की प्रवृत्ति बढ़ती है और सभी कर्मों के प्रति सन्देह उत्पन्न होता है। यही शृगाल-योनि की प्राप्ति का तात्पर्य है। आशय यह है कि तर्क-विद्या में रुचि रखना निरर्थक है।

आद्या-सहस्रनाम के अन्तर्गत 'आण्वीक्षिकी' नाम के अनुसार श्रीमद्-दक्षिण कालिका के रूप की अध्ययन-रूप उपासना से चतुर्वर्ग का फल मिलता है। इस 'आण्विक्षिकी' से तात्पर्य है 'अध्यात्म-विद्या' से, जो दत्तात्रेय द्वारा कथित हुई है। अत्रि और अनुसूया के पुत्र-रूप से उन्होंने अलर्क, प्रह्लाद आदि को सइ विद्य ाक शिक्षा दी।

शारीरिक कर्मों के दोष से स्थावरता, वाचिक दोषों से पक्षि-जाति और मानस दोषों से अन्त्य-जता की प्राप्ति होती है।

पुण्य कर्मों का फल सङ्कल्प मात्र अर्थात् मानस कर्म से ही मिल जाता है किन्तु पाप कर्मों का फल कर्म करने पर ही दूर होता है।

तन्त्र के पञ्चाम्नायादि भेद

परमेश्वर महेश प्रकाश-स्वरूप हैं। उनके १ मध्य में ईशान (श्याम वर्ण), २ पूर्व में तत्पुरुष (रक्त-वर्ण), ३ उत्तर में वामदेव (पीत-वर्ण), ४ दक्षिण में अघोर (कृष्ण-वर्ण), ५ पश्चिम में सद्योजात (स्फटिक के समान शुक्ल-वर्ण)—इन पाँच मुखों से 'पञ्च-आम्नाय' निकले। १ पूर्व-मुख से पूर्वाम्नाय, २ पश्चिम से पश्चिमाम्नाय, ३ दक्षिण से दक्षिणाम्नाय, ४ उत्तर से उत्तराम्नाय, ५ निरुत्तर (ऊर्ध्व) से ऊर्ध्वाम्नाय प्रकाशित हुये। ऊर्ध्वाम्नाय सिद्धान्तागम-रूपी है, जिसका ज्ञान बड़े तप से ही होता है।

पूर्वाम्नाय शब्द-रूप, दक्षिणाम्नाय कर्ण-रूप, पश्चिमाम्नाय प्रश्न-रूप, उत्तराम्नाय उत्तर-रूप और ऊर्ध्वाम्नाय बोध-रूप है। ऊर्ध्वाम्नाय केवल अनुभवात्मक है।

षडाम्नायादि-भेद

१ पूर्वाम्नाय—भेदों सहित श्रीविद्या, तारा, त्रिपुरा, भुवनेशी, अन्नपूर्णा।

२ दक्षिणाम्नाय—बगलामुखी, वशिनी (बाल-भैरवी), त्वरिता, धनदा, महिषघ्नी, महा-लक्ष्मी।

३ पश्चिमाम्नाय—महा-सरस्वती, वाग्वादिनी, प्रत्यङ्गिरा।

४ उत्तराम्नाय—भेदों सहित कालिका, तारा, मातङ्गी, भैरवी, छिन्ना, धूमावती।

५ ऊर्ध्वाम्नाय—परमा विद्या, परा प्रासाद।

६ अधाम्नाय—वागीश्वर आदि देवता।

काली का २२ अक्षर का मन्त्र दक्षिणाम्नाय से सम्बन्धित कहा गया है। ऊर्ध्वाम्नाय और अधाम्नाय केवल मोक्ष-दायक हैं। शेष आम्नाय धर्मार्थ-काम-मोक्षार्थ कहे हैं। यथा-विधि कर्म करने से फल मिलता है। छहों आम्नायों से षट्-कर्म सिद्ध होते हैं। उत्तराम्नाय शीघ्र फल देता है।

आम्नाय-भेद से आचार-भेद

पूर्वाम्नाय और दक्षिणाम्नाय के कर्म 'पाशव' कहे हैं। पश्चिमाम्नाय के कर्म 'पशु' और 'वीर'-भाव आश्रित होते हैं तथा उत्तराम्नाय के 'दिव्य' और 'वीर-भाव' के। 'दिव्य' साधक को भी पितृ-कानन (श्मशान) में वीर-भाव से साधना करनी चाहिए। 'दिव्य'-साधक के लिए वीर आसन आवश्यक नहीं है। ऊर्ध्वाम्नाय के कर्म 'दिव्य'-भावानुसार होते हैं।

तन्त्रोक्त आम्नाय उतने ही प्रामाणिक हैं, जितने कि श्रुति-वेद के आम्नाय।

तन्त्र और वेद का घनिष्ठ सम्बन्ध

वेद प्रणव (ॐ) से सदा युक्त है, वेद से ही मन्त्र का उद्भव हुआ है। अतः वेद-परक मन्त्र **वेदाङ्ग** माना गया है। वही **आगम** नाम से प्रसिद्ध है। वेद में **तन्त्र** को वेद, पर अर्थात् उत्तम कहा है। वेद अर्थात् मन्त्र ही जिसके अङ्ग हैं, वह तन्त्र है।

'आगम' (तन्त्र) को पाँचवाँ वेद और 'कौल' को पाँचवाँ आश्रम माना गया है।

अन्य सामान्य शास्त्र

अठारह संख्यावाले विशेषण से युक्त अन्य विद्यायें सामान्य शास्त्र हैं। यथा—कामशास्त्र, नट, मुद्रा, शिल्प, अश्व-गज-रत्न-श्येन-परीक्षा, निर्माण, स्थापत्य, स्वर, शकुन, राजनीति, काव्य, अलङ्कार, आदि शास्त्र। ये सब शास्त्र प्रमाण-स्वरूप हैं। उदाहरण के लिये काम-शास्त्र का ज्ञान पाए बिना जो रमण करता है, वह पशु-वत् ही तत्सम्बन्धी कर्म कर पाता है।

मातृका-वर्णों से मन्त्रोत्पत्ति और दो प्रकार के मन्त्र

मातृका-वर्णों की भिन्नता से सभी मन्त्र उत्पन्न हुये हैं। ये मन्त्र दो प्रकार के हैं—१ 'मन्त्र' पुरुष-देवतावाले, २ 'विद्या' स्त्री-देवतावाले। इनमें से पुरुष-देवतावाले मन्त्र 'सौर' हैं और स्त्री-देवता-वाले 'सौम्य'।

प्रयोग-विशेष की सिद्धि के लिये मन्त्रों के तीन विभाग

१ पुं (पुरुष), २ स्त्री, ३ नपुंसक—ये तीन विभाग मन्त्रों के हैं। **'हुं फट्'** जिन मन्त्रों के अन्त में होता है, वे पुं-मन्त्र हैं। जिनके अन्त में **'वषट्'** या **'द्वि-ठ'** (दो 'ठ') अर्थात् **(स्वाहा)** होता है, वे स्त्री-मन्त्र हैं और 'हुं' या **'नम'** जिनके अन्त में है, वे नपुंसक मन्त्र हैं।

वास्तव में सभी मन्त्र निष्कल, चैतन्य, आनन्दात्मक होने से उनमें कोई लिङ्ग-भेद नहीं है, केवल उपासकों की सुविधा के लिये ऐसी कल्पना की गई है। उसी प्रकार जैसे कि चिन्मय ब्रह्म के कोई शरीरादि न होने पर भी उसके विविध रूपों की कल्पना उपासकों के ही हित में की जाती है।

'ठ' वर्ण लिपि को समता से और कोष-गत अर्थ से 'शून्य' का वाचक है। अतः दो 'ठ'=दो शून्य (:) अर्थात् विसर्ग। **'विसर्ग'** शक्ति-रूप है, इसलिये 'द्वि-ठ' का अर्थ है अग्नि की शक्ति=**'स्वाहा'**।

मन्त्रों को उनके आदि, अन्त और मध्य में प्रणव (तार) की स्थिति से भी पहचाना जाता है। इसी प्रकार विन्दु **(अनुस्वार)**, सर्ग (विसर्ग) और इन्दु-खण्ड (अर्द्ध-चन्द्र) की **मन्त्र** के अन्त में **स्थिति** होने से उनकी क्रमशः पुं, स्त्री, नपुंसकादि भिन्नता प्रतिपादित होती है।

कर्म-भेद के अनुसार मन्त्र की उपयुक्तता

उक्त तीनों प्रकार के मन्त्र वश्य, शान्ति, अभिचार आदि कर्मों के लिये प्रशस्त हैं। पुरुष-मन्त्र वश्य और उच्चाटन में तथा छोटे-मोटे साधारण कर्मों में स्त्री-मन्त्र विशेष उपयोगी होते हैं। शेष कर्मों के लिये नपुंसक-मन्त्र उपयुक्त हैं।

अग्नीषोमात्मक होने से मन्त्र क्रूर और सौम्य होते हैं। मातृका-कुण्डली से आविर्भूत होने के कारण उसी के अनुरूप मन्त्र भी अग्नि और सोम के गुणवाले होते हैं। वह्नि (र), तार (ॐ), अन्त्य (क्ष), वियत् या आकाश (ह)—इनमें से किसी एक के आदि या अन्त में होनेवाले **'आग्नेय मन्त्र'** हैं। इन्दु (स), अमृत (व)—इन वर्णों के आधिक्य से मन्त्र सौम्य होते हैं।

आग्नेय मन्त्र भी अन्त में **'नमः'** लगाने से सौम्य हो जाते हैं। इसी प्रकार सौम्य मन्त्रों के अन्त में **'फट्'** लगाने से वे आग्नेय बन जाते हैं।

आग्नेय मन्त्रों का प्रयोग क्रूर कर्मों में और सौम्य मन्त्रों का सौम्य कर्मों में उपयोग किया जाता है।

आग्नेय मन्त्र प्रबुद्ध होने पर प्राण में दक्षिण भाग में और सौम्य मन्त्र नाभि-स्थित प्राण में बोधित होते हैं। दोनों नाड़ियों में प्राण के जाने पर सभी मन्त्र प्रबुद्ध होते हैं और शुभ फल प्रदान करते हैं।

सुप्त और प्रबुद्ध मन्त्र

वाम श्वास के चलने का समय सोने का और दाएँ श्वास के चलने का समय जगने का है। सोने के समय मन्त्र का प्रयोग करने से वह फल नहीं देता। इसी प्रकार केवल प्रबुद्ध होने मात्र से मन्त्र फलदायक नहीं होता। प्रबोध-काल उस समय को कहते हैं, जब दोनों श्वास चलते हैं।

दसवाँ परिच्छेद

मन्त्रों के फल का कथन

मन्त्रों की 'छिन्न' आदि दूषित अवस्थाएँ

मन्त्र में दोषात्मक लक्षणों के प्रसङ्ग में ४९ अवस्थाओं का वर्णन मिलता है। यथा—

१ **छिन्न**—जिस मन्त्र के आदि, मध्य और अन्त में अनिल बीज (यं) संयुक्त, वियुक्त या स्वराक्रान्त रूप में तीन, चार या पाँच बार आता है; अथवा जिसका मुख्य बीज अनिल बीज (यं) हो, वह 'छिन्न'-दोषवाला माना जाता है। बीज से आशय 'शक्ति-बीज' या 'माया-बीज' (ह्रीं) का है। 'स्वराक्रान्त' = दीर्घ स्वरों (आ, ई, ऊ, ऐ, औ) से युक्त यथा : ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं।

२ **रुद्ध**—जिस मन्त्र के आदि, मध्य और अन्त में भू-बीज (लं) द्वन्द्व-रूप (दो बार) हो, वह भुक्ति और मुक्ति से वर्जित 'रुद्ध' दोषवाला होता है।

३ **शक्ति-हीन**—माया (भुवनेशी-बीज—'ह्रीं'), त्रि-तत्व ('हुं' या 'ॐ'), श्री-बीज (लक्ष्मी-बीज—'श्रीं', राव ('फ्रं)—इनमें से कोई भी यदि किसी मन्त्र में नहीं होता, तो वह मन्त्र जपनेवाले की शक्ति को नष्ट करता है।

४ **पराङ्मुख**—जिस मन्त्र के मुख (आदि) में काम-बीज (क्लीं) न हो, शिर (अन्त) में माया (ह्रीं) या अंकुश (क्रों) न हो, तो वह सिद्धि नहीं देता। अथवा जिस मन्त्र के मध्य में 'क्लीं', आदि में 'ह्रीं' और अन्त में 'क्रों' न हो, वह 'पराङ्मुख'-दोष वाला होता है।

५ **बधिर**—जिसके आदि, अन्त या मध्य में 'इन्दु' (स) या 'जीव-बीज' (बिन्दु-युक्त शून्य) न हो, उसमें 'बधिर' दोष मानते हैं।

६ **नेत्र-हीन**—पाँच वर्णोंवाला जो मन्त्र वह्नि या रेफ (र), अर्क (ह) और इन्दु या चन्द्र (स) से रहित हो, वह दुःख, शोक और भय देता है। सूर्य, अग्नि और चन्द्र को तीन नेत्र कहा है, इसकी हीनता से 'नेत्र-हीनता' का दोष कहा है।

७ **कीलित**—जिस मन्त्र में 'हकारो बिन्दुमान्' (हों) जीव (स) से युक्त = स्हों, राव (फ्रं), चतुष्कल (हूँ), माया (शक्ति-बीज—ह्रीं) या 'नमामि' पद न हो, वह 'कीलित' माना जाता है।

८ **स्तम्भित**—जिसके आदि, मध्य और अन्त में हंस, प्रासाद (हौं) और वाग्भव (ऐं) होते हैं, वह सिद्धि रोकनेवाला 'स्तम्भित' मन्त्र माना गया है।

९ **दग्ध**—पावक या वह्नि (र), मारुत या वायु (य) जिसकी मूर्द्धा (आदि) में सात बार आएँ, वह मन्त्र 'दग्ध' दोषवाला है।

१० **त्रस्त**—दो, तीन, छः या आठ वर्णोंवाले मन्त्र के आदि में यदि प्रणव नहीं है या अस्त्र (फट्) से युक्त नहीं है, तो वह 'त्रस्त' होकर फल-हीन होता है।

११ **भीत**—जो मन्त्र आदि, मध्य या अन्त में शिव (ह) और शक्ति (स) इन दो वर्णों से हीन होता है, वह निष्फल होता है।

LIBRARY
Accn-No. 2848
Date 10.10.07

१२ मलिन—आदि, मध्य और अन्त इन तीन स्थानों को लेकर जिस मन्त्र में चार 'म' नहीं होते, वह मन्त्र 'मलिन' माना जाता है।

१३ तिरस्कृत—जिस मन्त्र के मध्य में 'द' या क्रोध (हूँ) हो, या जिसमें अस्त्र (फट्) दो बार हो।

१४ भेदित—जिसके आदि में दो 'ॐ' हों, अन्त में 'वषट्', मध्य में अस्त्र (फट्) हो; वह मन्त्र सिद्धि नहीं देता।

१५ सुषुप्त—तीन वर्णों वाला जो मन्त्र 'हंस' से हीन है, वह सब सिद्धियों के फल को दूर करनेवाला 'सुषुप्त' या प्रसुप्त माना गया है।

१६ मदोन्मत्त—जिस मन्त्र या विद्या में सत्रह से अधिक अक्षर हों और उसके आदि में पाँच 'फट्' हों, तो उसे 'मदोन्मत्त' या 'उन्मत्त' दोषवाला मानते हैं।

१७ मूर्छित—जिस मन्त्र के मध्य में पञ्च अस्त्र (फट्)-बीज स्थित हों।

१८ हृत-वीर्य—जिस मन्त्र के विराम-स्थान (अन्त) में 'फट्' होता है, वह 'हीन-वीर्य' होने से सिद्धि-प्रद नहीं होता।

१९ हीन—अठारह अक्षरवाले मन्त्र के आदि, मध्य और अन्त को लेकर चार स्थानों में यदि अस्त्र (फट्) हो, तो वह 'हीन', 'भीत' या 'भीम' नामक दूषित मन्त्र माना जाता है।

२० प्रध्वस्त—अठारह या उन्नीस अक्षरवाला जो मन्त्र तार (प्रणव—ॐ), हृल्लेखा (ह्रीं) और अंकुश-बीज (क्रों) से युक्त होता है, उसे 'प्रध्वस्त' कहते हैं।

२१ बालक—सात वर्णवाला मन्त्र 'बाल' है।

२२ कुमार—आठ वर्णवाला मन्त्र 'कुमार' है।

२३ युवा—सोलह वर्णवाला 'युवा' या 'तरुण' है।

२४ प्रौढ़—चौबीस लिपि (अक्षर) वाला मन्त्र 'प्रौढ़' है।

२५ वृद्ध—तीस, चौंसठ, सौ और एक सौ चार अक्षरों वाले मन्त्र 'वृद्ध' हैं।

२६ निस्त्रिंश—नौ अक्षरवाला 'निस्त्रिंश' मन्त्र मृत्यु-दायक होता है।

२७ निर्वीर्य—जिस मन्त्र के अन्त में हृदय (नमः), शिर (स्वाहा), शिखा (वषट्) या वर्म (हुम्) न हो अथवा जिसके मध्य शिव (ह) और शक्ति (स) अक्षर न हों या जिसके आदि में 'ॐ' न हो, वह 'निर्वीर्य' या 'निर्बीज' माना जाता है। ऐसा मन्त्र सभी कर्मों के लिए गर्हित (निषिद्ध) है।

२८ सिद्धि-हीन—मन्त्र के आदि, मध्य, अन्त में छः 'फट्' हों, तो वह 'सिद्धि-हीन' होता है।

२९ मन्द—पंक्ति (प्रत्येक पद में १० अक्षरों वाला वर्णिक छन्द) अक्षर अर्थात् दस अक्षरों-वाला मन्त्र।

३० कूट—एक अक्षरवाला मन्त्र।

३१ निरंश—एक अक्षरवाला मन्त्र।

३२ सत्त्व-हीन—दो अक्षरोंवाला मन्त्र।

३३ केकर—चार अक्षरोंवाला मन्त्र ।

३४ बीज-हीन—छः अक्षरोंवाला मन्त्र ।

३५ धूम्रित—साढ़े तीन, साढे सात, साढ़े बारह और इक्कीस अक्षरोंवाले मन्त्र ।

३६ आलिङ्गित—बीस या तीस अक्षरोंवाले मन्त्र ।

३७ मोहित—बारह अक्षरोंवाले मन्त्र ।

३८ क्षुधार्त्त—चौबीस, सत्ताइस या बत्तीस अक्षरोंवाले मन्त्र 'क्षुधातुर' हैं ।

३९ अति-तृप्त—ग्यारह, तेईस या पचीस वर्णोंवाले मन्त्र ।

४० अंग-हीन—छब्बीस या उन्नीस वर्ण-वाले मन्त्र ।

४१ अति-क्रुद्ध—अट्ठाइस या इकतीस अक्षरोंवाले मन्त्र । ये सभी कर्मों के लिए निन्दित हैं ।

४२ अति क्रूर—तीस या तैंतीस अक्षरोंवाले मन्त्र सभी कर्मों के लिये निन्दित हैं ।

४३ स-व्रीड़—चालीस अक्षरोंवाले मन्त्र से लेकर एक-एक अक्षर वृद्धि करते हुए तिरसठ अक्षरोंवाले मन्त्र तक २४ प्रकार के मन्त्र 'व्रीड़ित' माने गये हैं ।

४४ शान्त-मानस—पैंसठ अक्षरोंवाले मन्त्र ।

४५ स्थान-भ्रष्ट—छाछठ से निन्यानबे तक अक्षरोंवाले ३४ प्रकार के मन्त्र ।

४६ बिकल—तेरह या पन्द्रह अक्षरोंवाले मन्त्र ।

४७ अति-वृद्ध—चार सौ से लेकर एक सहस्र तक के अक्षरोंवाले मन्त्र प्रयोगों में त्याज्य हैं ।

४८ निःस्नेह—इक्यानबे, बानबे, सौ, डेढ़ सौ, दो सौ अक्षरोंवाले मन्त्र ।

४९ पीड़ित या दण्डक—एक सहस्र से अधिक वर्णोंवाले मन्त्र ।

दो सहस्र अक्षरोंवाले मन्त्र, जो सात खण्डों में बाँटे जाते हैं, वे स्तोत्र-रूप जाने जाते हैं और वे सभी दोष-युक्त हैं ।

मन्त्रों के ही अनुसार **विद्याएँ** हैं । लक्षण-भेद से ही उनमें भेद प्रतीत होता है, वास्तव में तत्त्वतः वे समान हैं । 'सभी कर्मों में' इस उक्ति का आशय है '**सभी काम्य कर्मों में**', अतः उक्त दोष काम्य कर्मों के सम्बन्ध में ही माननीय हैं । मुक्ति-प्राप्ति के लिये उक्त वर्ण-संख्यक मन्त्रों का जप करने में कोई दोष नहीं है । ऐसी दशा में कुछ आचार्यों के मत से मुक्त्यर्थ जप में मन्त्रों के दस संस्कार करने की भी आवश्यकता नहीं है । राघव भट्ट के अनुसार मुक्त्यर्थ जप में भी मन्त्र के शोधनादि संस्कार करने आवश्यक हैं ।

मन्त्र-शोधन की आवश्यकता

मन्त्र के उक्त दोषों के जाने बिना जो मन्त्र-साधना करता है, उसे सफलता नहीं मिलती । अतः योनि-मुद्रा द्वारा कुम्भक-प्राणायाम से मन्त्रों को आत्मा से युक्त कर उनका शोधन कर ले, तब उनका प्रयोग करे ।

मन्त्र-शोधन की विधि—महा-मुद्रा

योनि-मुद्रा बाँधकर मूलाधार-कमल को संकुचित करते हुये ध्यान-पूर्वक कुम्भक प्राणायाम करे

और वहाँ से उत्पन्न होनेवाले मन्त्र के वर्णों को ब्रह्म-रन्ध्र तक ले जाये और ले आये। मन्त्र के दोषों की शान्ति के लिये उसका एक सहस्र जप करे।

योनि-स्थान से मुद्रा बाँधने के कारण उसे 'योनि-मुद्रा' कहते हैं। इस महा-मुद्रा से मूल-बन्ध का संशोधन करे।

वाएँ पाद-मूल (एड़ी) से योनि को दबाकर दाएँ पैर को फैलाये। दोनों हाथों से मुख को भरे। मुख को कण्ठ से लगाकर ऊपर को श्वास धारण करे। मूल-रन्ध्र को पार्ष्णि-भाग से योनि को दबाकर गुदा को संकुचित करे। अपान वायु को ऊपर खींचना 'मूल' बन्ध कहा गया है।

योनि-मुद्रा का वर्णन

निशीथ (रात्रि) काल में मुक्त-केश एवं नग्न होकर शक्ति-सहित योग-रूपिणी इष्ट-देवी का ध्यान करे। फिर बाएँ पैर की एड़ी को गुह्य-देश से संयुक्त कर शरीर को स्थिर करे और तालु को जिह्वा से सटाये। नेत्रों को नाक की नोक (अग्र-भाग) पर स्थिर करे। कण्ठ से मुख को लगाकर ऊर्ध्व-वाहिनी, भजङ्ग-रूपिणी, मूलाधार-निवासिनी देवी कुण्डलिनी का ध्यान करे।

'मूलाधार'-कमल में अग्नि-मण्डल के ऊपर दक्षिणा-काली का ध्यान करे। यथा—

चतुर्भुजां महा-देवीं परमामृत-वृंहिताम्, श्याम-वर्णां महा-देवीं महा-पद्मासन-स्थिताम्।
अभयं च वरं चैव दक्षिणे धारिणीं सदा, खड्गं मुण्डं च वामेऽस्मिन् धारयन्तीं सनातनीम्।
मुक्त-केशीं स्मित-मुखीं श्मशानालय-वासिनीं, दन्तुरां दक्षिण-व्याप्ति मुक्त-केशीं दिगम्बरीम्।
शवानां कर-सङ्घातैः कृत-काञ्चीं हसन्मुखीं, लम्बमानां मुण्ड-मालां धारयन्तीं सदा-शिवाम्।
शवस्य हृदये चैव दक्ष - पाद - निषेवितां, महा - कालेन रत्यर्थमत्यन्त - लालसा - पराम्।
चन्द्र-सूर्य - वह्नि-रूप - नयन - त्रय - संयुताम्, अर्द्ध-चन्द्र-धरां देवीं पीनोन्नत-पयोधराम्।
शिवाभिर्घोर - रावाभिश्चतुर्दिक्षु समन्विताम्, चतुर्वेदैरपारां च सर्व - वेद - विभूषिताम्।
कामदां काम-रूपां च भक्तानां त्राण-कारिणीं, चतुर्वर्ग-प्रदां भीमां वन्दे दक्षिण-कालिकां।

'स्वाधिष्ठान' में इन्दु-रूपिणी विश्व-रूपा महा-देवी का ध्यान करे। यथा—

अभयं वरदं चैव हस्तं च सुर - सुन्दरि, धनुर्वाणधरां देवीं पाशांकुश - धरां पुनः।
वाण-लिङ्ग-समायुक्तां नील-मेघानन-प्रभाम्, ललज्जिह्वां महा-देवीं विष्णु-रूपां सनातनीम्।
बाल-युग्म-लसत्-कर्णां दुष्टासुर-निसूदिनीम्, व्याघ्र-चर्म-परीधानां ब्रह्म-रन्ध्र-निवासिनीम्।
अति-प्रसन्न-वदनां स्मेरानन-सरोरुहाम्।

'मणिपूर' में तेज-पुञ्ज-स्वरूपा सनातनी देवी का ध्यान करे—

दिगम्बरीं करालास्यां मुक्त-केशीं चतुर्भुजाम्, रक्त-वर्णां महा-देवीं रक्त-वस्त्र-विधारिणीम्।
शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म-धारिणीं सुर-पूजिताम्, धर्मार्थ-दायिनीं देवीं भक्तानां त्राण-कारिणीम्।
सर्व-सिद्धि-प्रदां देवीं जगतां मोहिनीं पुनः, महा-मायां मोहिनीं च ज्ञानिनां ज्ञानदां सतीम्।

सुन्दरीं रमणीं रामां चतुर्वर्ग-फल-प्रदाम्, शान्तां शान्त - प्रियामुग्रामुग्र - दैत्य-विनाशिनीम् ।
मधु-मांस-प्रियां कृष्णां यशोदानन्द-कारिणीं, भक्ति-गम्यां महा-देवीं महा-काल-निवासिनीं ।
सर्वेषां जननीं नित्यां चिन्तयेत् सुर-पूजिताम् ।

'अनाहत' में पर-देवता का निम्न प्रकार ध्यान करे—

अष्ट-भुजां महा-देवीं रक्त-वर्णां त्रि-शक्तिकाम्, धनुर्बाणं च खड्गं च चक्रं च दधतीं शिवे !
पाशांकुश-धरां देवीं ब्रह्मादि-सुर-वन्दिताम्, अर्द्ध-चन्द्र-धरां देवीं पीनोन्नत-पयोधराम् ।
पद्मासनां महा-मायां महा-पद्मासन-स्थितां, एवं सञ्चिन्तयेद् देवीं ब्रह्म-मार्गेण गामिनीम् ।

'विशुद्ध' महा-चक्र में परमेश्वरी का ध्यान करे । यथा—

दश-भुजां महा - देवीं पीत-वर्णां सनातनीं, कपालं खेटकं शंखं दर्पणं चामरं तथा ।
दक्षिणे बिभ्रतीं देवीं काम-राजोपरि स्थिताम्, वामे खड्गं महा-पद्मं कर्तृकं पाशमंकुशम् ।
धारयन्तीं महा-देवीं महा-सिंहासन-स्थिताम्, दिव्य-वस्त्र-परीधानां जटा-मुकुट-मण्डिताम् ।
ब्रह्म-विष्णु-महादेव-वन्दितां सुर-सुन्दरीम् ।

'आज्ञा-चक्र' में निम्न प्रकार ध्यान करे—

सिंह-स्कन्ध-समारूढां द्विभुजां सुमनोहराम्, वराभयं दधानां च नाना-मणि-विभूषिताम् ।
जटा-मुकुट-संयुक्तामर्द्ध-चन्द्र-विभूषिताम्, रक्त-काञ्चो-समायुक्तां रत्न-माला-विभूषिताम् ।
रक्त-वस्त्र-परीधानां कमला-पति-सेविताम्, संसार-दुःख-शमनीं संसारार्णव-तारिणीम् ।
सुषुम्ना-वर्त्मना देवीं चिन्तयेद् व्याल-रूपिणीम् ।

'सहस्र-दल' के मध्य में पञ्च-बाणों से विभूषित कामदेव भ्रमण करते रहते हैं । गङ्गादि सभी तीर्थ, अमृत और वसन्तादि सभी ऋतुएँ वहाँ शोभायमान हैं ।

यह उत्तम 'सहस्रदल' श्वेत-वर्णवाला है और सभी देवों तथा सभी शक्तियों से युक्त है । यह सभी मन्त्रों और चारों वेदों से विभूषित है । इसकी कर्णिका स्वर्ण-वर्ण वाली (सुनहली) है और ब्रह्मा-विष्णु-शिवात्मिका है । उसमें पर-शिव का ध्यान करे । यथा—

चिन्मयं पर-शिवं देवि ! ध्यान-गम्यं सनातनं, सारात् सार-तरं परादपि परं चेतो-वचोऽगोचरं ।
नित्यानन्द-निरन्तरं निरुपमं वेदैरपारं परम्, शिव-शक्ति-मयं देवि ! निर्गुणं सगुणात्मकम् ।
प्रदीप-कलिकाकारं योगिनां ध्यान-रूपिणम्, चैतन्य-रूपिणं देवं परमामृत-बृंहितम् ।

उसी कर्णिका के मध्य में पर-शिव से संयुक्त सनातनी त्रिगुणा देवी का ध्यान करे—

घोरदंष्ट्रां करालास्यां ललज्जिह्वां चतुर्भुजाम्, सद्यश्छिन्न-शिरः खड्ग-वामोर्द्धाधः करांबुजां ।
अभयं वरदं चैव दक्षिणाधोर्द्ध-पाणिकाम् । नील-मेघ-प्रभां तन्वीं घोर-रूपां दिगम्बराम ।

कण्ठावसक्त-मुण्डाली-गलद्-रुधिर-चर्चिताम्, कर्णावतंसां नीत - शव - युग्म - भयानकाम् ।
बालार्क-मण्डलाकार-लोचन-त्रितयान्विताम्, सृक्क-द्वय-गलद्-रक्त-धारा-विस्फुरताननाम् ।
मुक्त-केशीं स्मित-मुखीं श्मशानालय-वासिनीम्, शवानां कर-सङ्घातैः कृत-काञ्चीं हसन्मुखीम् ।
शव-रूप - महादेव - हृदयोपरि संस्थिताम्, महा - कालेन रत्यर्थमुपविष्टां स्मरातुराम् ।
शिवाभिर्घोर - रावाभिश्चतुर्दिक्षु समन्विताम्, अति - प्रसन्न - वदनां स्मेरानन-सरोरुहाम् ।

'अनाहत-चक्र' में कोटि विद्युत् के समान प्रभावाली चिद्-रूपा कला शिखा-वत् सदा विद्यमान रहती है। उसे भावना द्वारा ब्रह्म-मार्ग से लिङ्ग-भेद क्रम से जाती हुई ध्यान करे। कोटि-सूर्यों की प्रभा-वाला और कोटि चन्द्र के समान शीतल अमृत है, जिसका लक्षण परमानन्द है। कुलाकुल दिव्य पद को पहुँच कर पुनः कुल में उसे प्रवेश कराये। इस प्रकार अभ्यास करने से साधक जरा (बुढ़ापा), मृत्यु और दुःखादि सांसारिक बन्धनों से छूट जाता है। वह कला चतुर्विधा है और उसकी योनि से सृष्टि होती है। यही सर्व-सिद्धि देनेवाली **'योनि-मुद्रा'** है।

'मूलाधार-कमल' में मनोहर त्रिकोण है। उसके मध्य में कोटि बाल-सूर्य के समान कान्तिमान् **'काम'** घूमता रहता है। उसके ऊपर कोटि विद्युत् जैसी प्रभावाली **'कुण्डली शक्ति'** है, जो सुप्त सर्प के आकार में तीन फेरोंवाली है। मूलाधार के उक्त त्रिकोण में उसका ध्यान करे। आत्मा के सहित यह शक्ति उक्त चक्रों (कमलों) में क्रमशः जाती हुई गगन-गत महा-पद्म (सहस्रार) में स्थित **'हंस'** से लाक्षा-रस जैसे रंगवाले दिव्यामृत का पान करती है और पुनः कुल-देश (मूलाधार) में आ जाती है। प्रत्येक चक्र में क्रमशः अमृत-रस के द्वारा सभी दलों में वर्तमान डाकिनी आदि समस्त देवताओं की और कुण्ड-लिनी का तर्पण करे।

मन्त्र के अक्षर चिच्छक्ति में ओत-प्रोत हैं, ऐसी भावना करे। उसी को सहस्रार में परमामृत से तृप्त देखे और अपनी श्रद्धा-भक्ति अर्पित करे। इस प्रकार चिन्तन करने से पूजा, होमादि के बिना ही साधक सब पापों से छूटकर इष्ट-देवता का दर्शन पाता है। छः मास के भीतर सभी सिद्धियाँ उसे मिल जाती हैं और वह आत्म-साक्षात्कार करने में सफल होता है। वर्ष भर इस साधना के करने से अठारह महा-सिद्धियाँ उसे प्राप्त होती हैं।

उक्त प्रकार से परमात्म-स्वरूपिणी देवी का चिन्तन करनेवाला साधक साक्षात् शङ्कर, विष्णु, और परम ब्रह्म जैसा श्रेष्ठ देवता-स्वरूप होता है। यही साधना **'योनि-मुद्रा'** है, जिससे एक वर्ष में ही सिद्धि पाकर साधक पूर्ण-काम होता है।

भूत-लिपि आदि द्वारा मन्त्र-दोषों की शान्ति

'योनि-मुद्रा' के करने में असमर्थ साधकों के लिये निम्न उपाय हैं—

१—मूल-मन्त्र को माया (ह्रीं), श्री (श्रीं), काम (क्लीं) या प्रणव (ॐ) से सम्पुटित कर १००८ बार जपे, तो मन्त्र **'सुसिद्ध'** हो जाता है। तब उसका प्रयोग करे।

२—बयालीस अक्षरोंवाली **'भूत-लिपि'** नव-वर्गोंवाली है। यथा—

प्रथम वर्ग (५ अक्षर)—पञ्च ह्रस्व : अ-इ-उ-ऋ-लृ

द्वितीय वर्ग (४ अक्षर)—सन्धि वर्ण : **ए-ऐ-ओ-औ**
तृतीय वर्ग (५ अक्षर)—व्योम (**ह**), इर (**य**), अग्नि (**र**), जल (**व**), धरा (**ल**)
चतुर्थ वर्ग (प्रथम ५ वर्णाक्षर)—अन्त्य (ङ), आद्य (क), द्वितीय (ख), चतुर्थ (घ), मध्यम (ग)।
पञ्चम वर्ग (द्वितीय ५ वर्णाक्षर)—**ञ-च-छ-झ-ज**
षष्ठ वर्ग (तृतीय ५ वर्णाक्षर)—**ण-ट-ठ-ढ-ड**
सप्तम वर्ग (चतुर्थ ५ वर्णाक्षर)—**न-त-थ-ध-द**
अष्टम वर्ग (पञ्चम ५ वर्णाक्षर)—**म-प-फ-भ-म**
नवम वर्ग (३ अक्षर)—रान्त (**श**), श्वेत (**य**), इन्दु (**स**)

इस प्रकार 'भूत-लिपि' का पूरा स्वरूप निम्न प्रकार है—

अ-इ-उ-ऋ-लृ; ए-ऐ-ओ-औ; ह-य-र-व-ल; ङ-क-ख-घ-ग; ञ-च-छ-झ-ज; ण-ट-ठ-ढ-ड; न-त-थ-ध-न; म-प-फ-भ-ब; श-य-स (कुल ४२ अक्षर)

भूत-लिपि के उक्त नौ वर्गों के आदि अक्षरों को सूचित करने का सूत्र है—**'आयम्बरार्ण वर्गाणां पञ्चमाः शान्त-संयुताः।'** अर्थात् आय (**अ-ए**), अम्बरार्ण (**ह**), वर्गाणां पञ्चमाः (ङ-ञ-ण-न-म) शान्त (**श**) यथा—

अ-ए-ह-ङ-ञ-ण-न-म-श

नौ वर्गों के ये ही नौ आदि अक्षर हैं।

उक्त नौ वर्गों के क्रमशः नौ देवता हैं—**१ विरिञ्च, २ विष्णु, ३ रुद्र, ४ ग्रशिव, ५ प्रजा-पति, ६ इन्द्र, ७ यम, ८ वरुण, ९ चन्द्र**। ये सब **'क्रिया-ज्ञान-इच्छा'**—इन तीन शक्तियों से युक्त हैं।

उक्त 'भूत-लिपि' से सम्पुटित कर मन्त्र को सौ बार जपने से वह मन्त्र सिद्धि हो जाता है किन्तु पहले 'भूतलिपि' की साधना कर ले, जिसका विवरण निम्न प्रकार है—

भूतलिपि की साधना-विधि

विनियोग—अस्य भूत-लिपि-मन्त्रस्य श्री दक्षिणामूर्ति ऋषिः, गायत्री छन्दः, श्री वर्णेश्वरी-परा देवता, श्री वर्णेश्वरी-परा-प्रसन्नार्थे जपे विनियोगः।

ऋष्यादि-न्यास—श्री दक्षिणामूर्ति-ऋषये नमः शिरसि। गायत्री-छन्दसे नमः मुखे। श्री वर्णेश्वरी-परा-देवतायै नमः हृदि। श्री वर्णेश्वरी-परा-प्रसन्नार्थे जपे विनियोगाय नमः कराञ्जलौ।

षडङ्ग-न्यास—	**कर-न्यास**	**अङ्ग-न्यास**
हं यं रं वं लं	**अंगुष्ठाभ्यां नमः**	**हृदयाय नमः**
ङं कं खं घं गं	**तर्जनीभ्यां स्वाहा**	**शिरसे स्वाहा**
ञं चं छं झं जं	**मध्यमाभ्यां वषट्**	**शिखायै वषट्**
णं टं ठं ढं डं	**अनामिकाभ्यां हुं**	**कवचाय हुँ**
नं तं थं धं दं	**करतल-करपृष्ठाभ्यां फट्**	**अस्त्राय फट्**

न्यास करने के बाद, **'लिपि-तरु'** अर्थात् वर्ण-मय-वृक्ष के मूल में **'वर्ण-मय-पद्म'** पर वर्णेश्वरी देवी का ध्यान करे। **'वर्ण-मय-वृक्ष'** नित्य है, उसका बीज है पर-सम्वित् कुण्डलिनी या परब्रह्म। इस प्रकार विन्दु और नाद उसके मूल में हैं। पृथ्वीतत्व के वर्ण उसकी शाखायें हैं, जल-तत्त्व के वर्ण उसके

पत्ते, अग्नि-तत्त्व के वर्ण उसके रत्नों समान दीप्त अंकुर, वायु-तत्त्व के वर्ण उसके पुष्प और आकाश-तत्त्व के वर्ण उसके फल हैं। यह वृक्ष सभी प्राणियों का आश्रय है। वेद और आगमादि से युक्त यह अति ऊँचा और मनोहर है। शिव-शक्ति-मय यह वृक्ष तीनों लोकों को छाया देता है। इसके आश्रय से मुनियों की सभी कामनायें पूरी होती हैं।

देवी वर्णेश्वरी (वागेश्वरी) का ध्यान

अङ्कोन्मुक्त - शशाङ्क - कोटि - सदृशीमापीन - तुङ्ग - स्तनीम्,
चन्द्रार्द्धाङ्कित - मस्तकां मधु - मदादालोल - नेत्र - त्रयाम् ।
बिभ्राणामनिशं वरं जप - वटीं विद्यां कपालं करै—
राद्यां यौवन - गर्विताम् लिपि - तनुं वागीश्वरीमाश्रये ॥

कुब्जिका तन्त्र के अनुसार इनका ध्यान निम्न प्रकार है—

अक्ष - स्रजं हरिण - पोतमुदग्र - टङ्कं विद्याः करैरविरतं दधतीं त्रि - नेत्राम् ।
अर्द्धेन्दु - मौलिमरुणामरविन्द - मालां वर्णेश्वरीं प्रणमत स्तन - भार - नम्राम् ॥

भूत-लिपि की प्राण-प्रतिष्ठा

ध्यान करने से पूर्व हृदय में लेलिहानी मुद्रा से निम्न मन्त्र तीन बार पढ़कर देवी की प्राण-प्रतिष्ठा करे—

ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हौं हंसः अमुष्या भूत-लिप्याः प्राणाः इह प्राणाः; ॐ आं ह्रीं क्रों...भूत-लिप्याः जीव इह स्थितः; ॐ आं ह्रीं क्रों...भूत-लिप्याः सर्वेन्द्रियाणि; ॐ आं ह्रीं क्रों...भूत-लिप्याः वाङ्-मनो-चक्षुः-श्रोत्र-घ्राण-पदानि इहैवागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा।

भूत-लिपि के न्यासों का क्रम

प्राण-प्रतिष्ठा के बाद क्रमशः निम्न न्यास करे—

स्वर-न्यास—अं नमः गुह्ये। इं नमः लिङ्गे। उं नमः नाभौ। ऋं नमः हृदि। लृं नमः कण्ठे। एं नमः भ्रू-मध्ये। ऐं नमः ललाटे। ओं नमः शिरसि। औं नमः ब्रह्मरन्ध्रे।

पञ्च-वक्त्र-न्यास—हं नमः ऊर्ध्व-मुखे। यं नमः पूर्व-मुखे। रं नमः दक्षिण-मुखे। वं नमः उत्तर-मुखे। लं नमः पश्चिम-मुखे।

वर्ण-न्यास—ङं नमः दक्ष-कराग्रे। कं नमः दक्ष-कर-मूले। खं नमः दक्ष-कूर्परे। घं नमः दक्ष-करांगुलि-सन्धौ। गं नमः दक्ष-मणि-बन्धे॥ ञं नमः वाम-कराग्रे। चं नमः वाम-कर-मूले। छं नमः वाम-कूर्परे। झं नमः वाम-करांगुलि-सन्धौ। जं नमः वाम-मणि-बन्धे॥ णं नमः दक्ष-पादाग्रे। टं नमः दक्ष-पाद-मूले। ठं नमः दक्ष-जानौ। ढं नमः दक्ष-पादांगुलि-सन्धौ। डं नमः दक्ष-गुल्फे॥ नं नमः वाम-पादाग्रे। तं नमः वाम-पाद-मूले। थं नमः वाम-जानौ। धं नमः वाम-पादांगुलि-सन्धौ। दं नमः वाम-गुल्फे॥ मं नमः उदरे। पं नमः दक्ष-पार्श्वे। फं नमः वाम-पार्श्वे। भं नमः नाभौ। बं नमः पृष्ठे॥ शं नमः गुह्ये। षं नमः हृदि। सं नमः भ्रू-मध्ये॥

सृष्टि-क्रम में भूत-लिपि सर्गावसाना होती है, अर्थात् प्रत्येक वर्ण के अन्त में विसर्ग रहता है, यथा—अः, आः इत्यादि और स्थिति-क्रम में विन्दु और विसर्ग दोनों रहते हैं, यथा—अंः, आंः इत्यादि। संहार-क्रम में प्रतिलोम से भूत-लिपि को विन्दु-युक्त कर न्यास करे।

उक्त नौ वर्गों में पञ्च-भूतों (आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी) के वर्ण सन्निहित हैं। केवल द्वितीय वर्ग में पृथ्वी-तत्व का और नवें वर्ग में जल एवं पृथ्वी इन दो तत्वों के वर्ण नहीं हैं।

एक मत यह भी है कि अग्नि-वर्णों का पहले न्यास करे, फिर क्रमशः वायु, जल के वर्णों का। इन्हें विन्दु-युक्त रखे। तब आकाश और भूमि के वर्णों को विसर्ग-युक्त कर न्यास करे।

आगमोक्त मार्ग से दीक्षा लेकर एक लाख न्यास, एक लाख जप कर दस हजार होम तिल से करे। एक बार न्यास करने से एक आवृत्ति होती है, यह क्रम है।

भूत-लिपि की पूजा-विधि

प्रतिदिन अष्ट-दल, षोडश-दल, चतुर्द्वार-युक्त भूपुरवाला यन्त्र बनाकर उसमें '**१ मेधा, २ प्रज्ञा, ३ प्रभा, ४ विद्या, ५ धी, ६ धृति, ७ स्मृति, ८ बुद्धि, ९ विद्येश्वरी**' इन ९ पीठ-शक्तियों की पूजा करे। ये शक्तियाँ गौर-वर्णा हैं, दो हाथ अञ्जलि-रूप हैं और ऊपर के दो हाथों में पुस्तक एवं कुम्भ लिये हैं।

तब '**हसौः वर्णाब्जाय भूतलिपि-योग-पीठाय नमः**' मन्त्र से वर्ण-कमल का आसन देकर मूल-मन्त्र से उस पर मूर्ति-कल्पना करे। फिर निम्न प्रकार आवरण-पूजन करे—

(१) अष्ट-दल के आठ केसरों में प्रदक्षिण-क्रम से अङ्ग-देवताओं का पूजन-तर्पण करे। यथा—

हं यं रं वं लं हृदयाय नमः हृदय-शक्ति श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि नमः आग्नेये। ङं कं खं घं गं शिरसे स्वाहा शिर-शक्ति-श्रीपा० ईशाने। ञं चं छं झं जं शिखायै वषट् शिखा-शक्ति-श्रीपा० नैऋते। णं टं ठं ढं डं कवचाय हुँ कवच-शक्ति-श्रीपा० वायव्ये। नं तं थं धं दं नेत्र-त्रयाय वौषट् नेत्र-शक्ति-श्रीपा० पूर्वे। मं पं फं भं बं अस्त्राय फट् अस्त्र-शक्ति-श्रीपा० पृष्ठे।

निम्न मन्त्र से पुष्पाञ्जलि प्रदान करे—

ॐ अभीष्ट-सिद्धिं मे देहि शरणागत-वत्सले ! भक्त्या समर्पये तुभ्यं प्रथमावरणार्चनम् ॥

(२) अष्ट-दलों के मध्य में पूर्वादि क्रम से चार दिशाओं के दलों में निम्न शक्तियों का पूजन-तर्पण करे। यथा—

ॐ अम्बिका-श्रीपा०। ॐ वाग्भवी-श्रीपा०। ॐ दुर्गा-श्रीपा०। ॐ श्रीशक्ति-श्रीपा०।

ॐ अभीष्ट-सिद्धिं ……द्वितीयावरणार्चनम्' से पुष्पांजलि दे।

(३) अष्ट-दलों में ही पूर्वादि-क्रम से अष्ट-मातृकाओं का पूजन-तर्पण करे। यथा—

ॐ ब्राह्मी-श्रीपा०। ॐ माहेश्वरी०। ॐ कौमारी०। ॐ वैष्णवी०। ॐ वाराही०। ॐ चामुण्डा०। ॐ माहेन्द्री०। ॐ महा-लक्ष्मी०। ॐ अभीष्ट-सिद्धिं……तृतीयावरणार्चनम्।

(४) षोडश-दलों में पूर्वादि-क्रम से निम्न १६ शक्तियों का पूजन-तर्पण करे। प्रत्येक नाम के आदि में 'ॐ' और अन्त में 'श्रीपा० पू० त० नमः' जोड़ ले—

१ काली, २ विकराली, ३ उमा, ४ सरस्वती, ५ श्री, ६ दुर्गा, ७ उषा, ८ लक्ष्मी, ९ श्रुति, १० स्मृति, ११ धृति, १२ श्रद्धा, १३ मेधा, १४ मति, १५ कान्ति, १६ आर्या।

ॐ अभीष्ट-सिद्धिं……चतुर्थावरणार्चनम्।

(५) षोडश-दलों के अग्र-भागों और सन्धि-स्थलों में पूर्ववत् पूर्वादि-क्रम से निम्न ३२ शक्तियों का पूजन-तर्पण करे—

१ विद्या, २ श्री, ३ पुष्टि, ४ प्रज्ञा, ५ सिनीवाली, ६ कुहू, ७ रुद्रा, ८ वीर्या, ९ प्रभा, १० नन्दा, ११ पोषिणी, १२ सिद्धिदा, १३ काल-रात्रि, १४ महा-रात्रि, १५ भद्रकाली, १६ कपर्दिनी, १७ विकृति,

१८ दण्डिनी, १६ मुण्डिनी, २० सेन्द्र-खण्डा, २१ शिखण्डिनी, २२ निशुम्भ-शुम्भ-मथिनी, २३ महिषासुर-मर्दिनी, २४ इन्द्राणी, २५ रुद्राणी, २६ शङ्करार्द्ध-शरीरिणी, २७ नारी, २८ नारायणी, २९ त्रिशूलिनी, ३० पाशिनी, ३१ अम्बिका, ३२ ह्लादिनी। ॐ अभीष्ट-सिद्धि......पञ्चमावरणार्चनम्।

(६) चतुरस्र के भीतर आगे से प्रदक्षिण-क्रम से निम्न ६४ शक्तियों का पूर्ववत् पूजन-तर्पण करे—

१ पिङ्गलाक्षी, २ विडालाक्षी, ३ समृद्धि, ४ वृद्धि, ५ श्रद्धा, ६ स्वाहा, ७ स्वधा, ८ मातृका, ९ वसुन्धरा, १० त्रिलोक-रात्रि, ११ सावित्री, १२ गायत्री, १३ त्रिदशेश्वरी, १४ सुरूपा, १५ बहु-रूपा, १६ स्कन्द-माता, १७ अच्युत-प्रिया, १८ विमला, १६ अमला, २० अरुणी, २१ आरुणी, २२ प्रकृति, २३ विकृति, २४ सृष्टि, २५ स्थिति, २६ संहृति, २७ सन्ध्या, २८ माता, २६ सती, ३० हंसी, ३१ मर्दिकी, ३२ रञ्जिका, ३३ परा, ३४ देव-माता, ३५ भगवती, ३६ देवकी, ३७ कमलासना, ३८ त्रिमुखी, ३९ सप्त-मुखी, ४० सुरा, ४१ असुर-विमर्दिनी, ४२ लम्बोष्ठी, ४३ ऊर्ध्व-केशी, ४४ बहु-शीर्षा, ४५ वृकोदरी, ४६ रथ-रेखा, ४७ शशि-रेखा, ४८ अपरा, ४९ गगन-वेगा, ५० पवन-वेगा, ५१ भुवन-पाला, ५२ मदना-तुरा, ५३ अनङ्गा, ५४ अनङ्ग-मदना, ५५ अनङ्ग-मेखला, ५६ अनङ्ग-कुसुमा, ५७ विश्व-रूपा, ५८ असुर-भयङ्करी, ५९ अक्षोभ्या, ६० सत्य-वादिनी, ६१ वज्र-रूपा, ६२ शुचि-वृता, ६३ वरदा, ६४ वागीशा।

ॐ अभीष्ट-सिद्धि............षष्ठावरणार्चनम्।

[७] भूपुर में लोक-पालों का पूर्वादि-क्रम से पूजन-तर्पण करे—

१ इन्द्र, २ अग्नि, ३ यम, ४ निर्ऋति, ५ वरुण, ६ वायु, ७ कुबेर, ८ ईशान, ९ ब्रह्मा, १० अनन्त। ॐ अभीष्ट-सिद्धि..........सप्तमावरणार्चनम्।

[८] भूपुर में लोकपालों के समीप उनके अस्त्रों का पूजन-तर्पण करे—

१ वज्र, २ शक्ति, ३ दण्ड, ४ खड्ग, ५ पाश, ६ अंकुश, ७ गदा, ८ त्रिशूल, ९, पद्म, १० चक्र।

ॐ अभीष्ट-सिद्धि.........अष्टमावरणार्चनम्।

[९] भूपुर के बाहर पूर्वादि-क्रम से बलि-देवताओं का पूजन-तर्पण करे---

१ बटुक, २ योगिनी, ३ क्षेत्रपाल, ४ गणेश, ५ वसु, ६ सूर्य, ७ शिव, ८ भूत।

ॐ अभीष्ट-सिद्धि.........नवमावरणार्चनम्।

'**कराली**' आदि षोडश शक्तियों को श्याम-वर्णा, खड्ग-खेटक-धारिणी और अलङ्कारों से विभू-षिता ध्यान करे।

'**विद्या**' आदि बत्तीस शक्तियों को चक्र-हस्ता, विडाल-मुखी और सुन्दर आभूषणों से सज्जिता ध्यान करे।

'**पिङ्गलाक्षी**' आदि चौंसठ शक्तियों को धनुर्बाण-धारिणी, ज्वाला के समान महा-प्रभावाली, दंष्ट्रिणी, ऊर्ध्व-केशी, सभी आभरणों से विभूषिता और युद्ध के लिये उन्मुख मानसवाली ध्यान करे।

भूत-लिपि के प्रयोग का फल

'**श्रीभूत-लिपि देवता**' का जो पूजन करता है, वह लक्ष्मी और सरस्वती का कृपापात्र होकर देवों द्वारा भी अभिनन्दित होता है। १० सहस्र कमलों के होम से शासक वश में होता है; उतने ही उत्पलों के होम से लक्ष्मी प्रसन्न होती हैं; पलाश-कुसुमों के होम से एक वर्ष के भीतर कवित्व-शक्ति मिलती है; राजी-लवण के होम से वशीकरण होता है। भूत-लिपि से पुटित कर सौ बार जपने से कैसा भी मन्त्र हो, सिद्ध होता है।

मन्त्रों की दोष-शान्ति के लिए दस संस्कार

श्री कृष्णानन्द आगमवागीश कृत 'तन्त्रसार' में दस संस्कारों का वर्णन है। उन्हें कृपया **'हिन्दी-तन्त्रसार'** के पृष्ठ ४३ पर देखें।

मन्त्रों के अन्य दोष भी इन्हीं संस्कारों द्वारा दूर हो जाते हैं। गुरु से मन्त्र प्राप्त करने पर भी दूषित आचार-विचार या आलस्य के कारण मन्त्र शक्ति-हीन हो जाता है। इस प्रकार के सभी दोषों की शान्ति के लिए ये संस्कार करने चाहिये।

बीजाभिधान (बीज - कोष)

बीजों का संकेत जानने के लिये कुछ बीजों के नाम और उद्धार यहाँ उद्धृत हैं---

ह्रीँ—**माया, लज्जा, परा, सम्वित्, त्रिगुणा, भुवनेश्वरी, हृल्लेखा, शम्भु-वनिता, शक्ति, देवी, ईश्वरी, शिवा, महा-माया, पार्वती, संस्थान-कृत-रूपिणी, परमेश्वरी, भुवना, धात्री, जीवन-मध्यगा।**

ह्लीँ—वह्नि (र) से हीन और इन्द्र (ल) से युक्त 'माया' (ह्रीं) का नाम है **'स्थिर-माया'**।

श्रीँ—अग्नि (र) सहित 'श' के अन्त में विन्दु और नाद (ँ) हों, तो उसे **'लक्ष्मी-प्रणव, श्री, लक्ष्मी, विष्णु-वनिता, रमा, क्षीर-समुद्रजा'** कहते हैं।

स्त्रीँ—सोलहवाँ व्यञ्जन (त्र) वह्नि (र)' वामाक्षि (ई) और विन्दु (ं) से युक्त हो तथा चन्द्र-बीज (ँ) उस पर लगा हो, तो वह **'वधू-बीज, बधू, वामेक्षणा, योषिद्, एकाक्षी, स्त्री, कामिनी'** कहा जाता है।

ऐँ—बारहवाँ स्वर (ऐ) नाद (ँ) और विन्दु (ं) से युक्त हो, तो **'भग, योनि, सरस्वती-बीज, अधर, वाग्भव, वाक्'** कहलाता है।

हूँ—'ह' कार वाम-कर्ण (ऊ) और नाद-विन्दु से विभूषित हो, तो उसके नाम---**कूर्च, क्रोध, उग्र, दर्प, दीर्घ हूङ्कार, शब्द, दीर्घ-कवच, तारा-प्रणव।**

क्रीँ—कामाक्षर (क) वह्नि (र) पर स्थित होकर रति (ई) और विन्दु से विभूषित हो, तो उसके नाम---**काली-बीज, गोपाल-बीज, काम-बीज, कामेशी-बीज, परा शक्ति।**

हौँ—सत्यान्त (ह) व्योम (औ) और इन्दु (ँ) से युक्त हो, तो **'प्रासाद शैव'** कहलाता है।

क्रोँ—इस बीज के नाम हैं—**क्रोङ्कार, अंकुश।**

क्लह्रीँ—कला (क्-ल्) सहित भुवनेशानी (ह्रीं) हो, तो वह **'कलाद्या, क्लेदिनी-बीज, कामेशी-बीज'** कहा जाता है।

आँ—'आ' कार विन्दु सहित हो, तो उसके नाम—**पाश, शेष।**

नमः—इसका नाम है **'हृदय'**।

स्वाहा—**द्वि-ठः, ठ-युगल, ठठः, चन्द्र-युग्म, शिव, वेद-माता, ज्वलन - सुन्दरी, देव-भोज्य, ठ-द्वय, ध्रुव, हवि, देवास्य, वह्नि-सुन्दरी।**

वषट्—**शिखा, शिरोमध्य, शक्र-माता, हर-प्रिया।**

हुँ हूँ—**कवच, क्रोध, वर्म, तनुत्र, शस्त्रादि, रिपु।** व्योम (ह) और ताल-जङ्घा (ऊ) के नाद-विन्दु से विभूषित होने पर **'कूर्च, काल, महा-काल, निरञ्जन'** नामक बीज बनता है।

वौषट्—**अस्त्र, नेत्र-युग।**

फट्—**अस्त्र, शस्त्र, आयुध।**

ह्सौः—तार्तीय, प्रेत-बीज।

हंसः—अजपा-मनु।

गं—'ग' कार विन्दु-युक्त हो, तो **'विघ्न-बीज, गणेश-बीज'** कहलाता है।

लं—स्मृति (ल) या मांस (ल) विन्दु-युक्त हो, तो **'भू-बीज'** होता है।

ड्रीँ—ठान्त (ड) दहन (र), नेत्र (ई) और इन्द्र (ँ) युक्त हो, तो **'बिम्ब-बीज'** बनता है।

नाद—काम-कला, वाम-नयन, विन्दु-संयुत, अर्क-मात्रा, कला, वाणी, अर्द्धेन्दु, सदाशिव, अनुच्चार्या, तुरीया, विश्व-मातृ-कला, परा।

भूत-डामर-तन्त्रों के संकेतों के समझाने के लिए कुछ बीजों के नाम यहाँ नीचे उद्धृत हैं---

ॐ—प्रणव, विष-बीज, ध्रुव, हालाहल, काला, श्रुति-पथ (-मुख), बहु-रूपि, निरञ्जन, विधि। कीर्ति (अ), काल-वक्त्र (उ) और महा-काल (म) से यह अनादि, सृष्टि-स्थिति-संहार करनेवाला **'विधि-बीज'** सिद्ध होता है। इसे **'पञ्च-रश्मि'** भी कहते हैं।

ह्रीँ—क्षतज (र) पर स्थित व्योम-वक्त्र (ह) जब धूम्र-भैरवी (ई) से अलकृत होकर नाद-विन्दु से युक्त हो, तो उसे **'प्राणात्मिक (प्राथमिक) बीज'** कहते हैं।

क्रों—क्रोधीश (क) यदि क्षत (र) पर आरूढ़ होकर नाद-विन्दु से युक्त हो, तो उसे **'पितृ-भू-वासिनी'** कहते हैं।

ऐँ—उग्र-भैरवी (ऐ) नाद-विन्दु से युक्त हो, तो **'भौतिक, वाग्भव'** बीज बनता है, जो शुद्ध बुद्धि-दायक है।

क्लीं—क्रोधीश (क) यदि बल-भृद् (भिद्) अर्थात् 'ल' और धूम्र-भैरवी (ई) के साथ होकर नाद-विन्दु से युक्त हो, तो **'त्रिमूर्ति, मन्मथ, काम-राज, त्रैलोक्य-मोहन'** उसके नाम होते हैं। दूसरे शब्दों में इन्द्र (ल) के आसन पर ब्रह्मा (क) मूर्ति या त्रि-मूर्ति (ई) और मन्मथ (म) से युक्त हो, तो यह बीज बनता है।

स्फें—धूम्र-ध्वज (स) और कालाग्नि (फ) यदि ऊर्ध्व-केशी (ए) तथा इन्द्र-विन्दु (ँ)से मिलें, तो **'युगान्त-कारक'** बीज बनता है।

ह्रां—रक्त (र) पर स्थित बलि-भोजन (ह) यदि काल-रात्रि (आ) के आसन पर नाद-विन्दु से युक्त हो, तो **'विशिख'** नामक महा-मन्त्र होता है।

ह्रं—क्षतज (र) और आकाश (ह) नाद-विन्दु से एवं विदारो (अ) से विभूषित हों, तो **'वैवस्वत'** या **'दृक्'** बीज बनता है।

प्रीं—कर्पादिन (प) क्षतज (र) से युक्त हो और धूम्र-भैरवी (ई) से मिलकर नाद-विन्दु-वान् हो, तो **'ध्वांक्ष-बीज'** बनता है।

ठं ठं ठः ठः—दो कपाली (ठ) लाकर महा-काल (म) से युक्त करे और पुनः दो को चण्डिका (:) से जोड़े, तो यह चार अक्षर का 'समासन'-बीज कहलाता है।

ह्रँ ह्रँ—क्षतज (र) व्योम-वक्त्र (**'ह' से युक्त**) होकर चन्द्र-खण्ड (ँ) से विभूषित हो तो **'खद्योत'**-बीज बनता है। वही काल-रात्रि (**ऐ या औ**) से युक्त हो, तो **'ग्रासनी'**-बीज बन जाता है।

हिन्दी प्राण-तोषिणी तन्त्र

धर्म-काण्ड : पहला परिच्छेद

संस्कार-रूपी ग्रन्थि का वर्णन

गर्भाधानादि दस संस्कार

गर्भाधानादि संस्कारों का प्रयोग आवश्यक है। अतः उनका वर्णन किया जाता है।

[टिप्पणी—यहाँ महा-निर्वाण तन्त्र के नवें उल्लास में वर्णित दसों संस्कारों की विधि उद्धृत है, जिसका शब्दशः हिन्दी-रूपान्तर 'हिन्दी महा-निर्वाण तन्त्र' में पृष्ठ ६३ से ७९ तक दिया गया है। कृपया वहाँ देखें। इस परिच्छेद का जो विषय वहाँ नहीं आया है, उसी का सारांश यहाँ दिया गया है।—सं०]

शिशु की जिह्वा पर 'वाग्भव', तारा त्र्यक्षरी या मूल-मन्त्र का लेखन

सीमन्तोन्नयन संस्कार के बाद **'जात-कर्म-विधि'** के अन्तर्गत नव-जात शिशु का गुप्त नाम रखने तक की विधि **'हिन्दी-महा-निर्वाण-तन्त्र'** के पृष्ठ ७१ पर दी है। गन्धर्व-तन्त्र के अनुसार नव-जात शिशु की जीभ पर जन्म के बाद ३ दिन के भीतर स्वर्ण-शलाका या श्वेत दूब द्वारा मधु (शहद) से **'वाग्भव-कूट'** लिखना चाहिये।

'वाग्भव-कूट' अर्थात् कामदेव (**क**), योनि (**ए**), तुर्य स्वर (**ई**), पुरन्दर (**ल**), भुवनेशी (**ह्रीं**) =**क - ए - ई - ल - ह्रीं**।

इस 'वाग्भव-कूट' को मूर्ख के सिर पर हाथ रखकर साधक यदि १०८ बार जप करे, तो वह श्लोक-रचना करने लगता है, इसमें सन्देह नहीं अर्थात् वह तर्क, पद-वाक्यार्थ, शब्दालङ्कार आदि तत्वों का विशेष ज्ञानी हो जाता है। जिह्वा पर लिखने से गूंगा भी सुकवि होता है।

'बृहन्नील तन्त्र' में द्वितीय-विद्या (**तारा**) की त्र्यक्षरी मन्त्र का कविता-कारक प्रयोग दिया है। रविवार की मध्य रात्रि में तीनों बीजों का १००८ जप करे। तब उनसे सौ बार अभिमन्त्रित जल को सात दिनों तक पिए, तो कवित्व-शक्ति प्राप्त होती है, इसमें सन्देह नहीं।

दाएँ हाथ से मधु और लाजा लाए। नाड़ी-छेदन के पूर्व ही शिशु का पहले संस्कार करे। फिर दाएँ हाथ से तीन बार उसकी जिह्वा का मार्जन कर स्वर्ण-शलाका या दूर्वा से जिह्वा और दोनों ओठों में दो पंक्तियों में मन्त्र को लिखे। ग्यारहवें, बारहवें दिन पुनः लिखे। यथा-शक्ति गन्ध, चन्दन, पुष्पों से तारिणी देवी की पूजा कर भक्ति-पूर्वक लिखना चाहिए। उत्तर की ओर मुख कर बैठे, उत्तम पीठ स्थापित कर तारिणी देवी की षोडशोपचारों से पूजा करे। गुग्गुल से धूप दे, जो सभी कर्मों को फल-प्रद करती है। नारिकेल, केला, नीबू, शर्करा, मधु, खीर, मांस, मत्स्यादि प्रिय पदार्थों की नैवेद्य दे। इससे पुत्र वाग्मी, जितेन्द्रिय, सत्यवादी और धार्मिक होता है। यदि पिता उपस्थित न हो, तो पितृव्य (चाचा) या मातुल (मामा) भी मन्त्र लिख सकते हैं।

मन्त्र का साधक जिस शिशु के ओठ पर मूल-मन्त्र लिखता है, वह बालक विद्वान् होता है।

यज्ञ-सूत्र का परिमाण, ग्रन्थन-विधि

'हिन्दी महानिर्वाण तन्त्र' के पृष्ठ ७६ पर **'उपनयन'**-संस्कार की विधि कृपया देखें। उसी के तारतम्य में यहाँ **'मातृका-भेद-तन्त्र'** के अनुसार बताया है कि ऋग्वेदी को नाभि के ऊपर तक, यजुर्वेदी को बाहु-मूल तक और साम-वेदी को ब्रह्म-रन्ध्र से नाभि तक या गले से नाभि तक या पीठ की ओर मेरु-दण्ड तक लम्बा **'यज्ञ-सूत्र'** धारण करना चाहिए।

दूसरा प्रकार यह है कि गले से दाहने अँगूठे तक लम्बा यज्ञ-सूत्र धारण करे। अथर्ववेदी के यज्ञ-सूत्र का परिमाण (लम्बाई) यजुर्वेदी के समान है अथवा आज्ञा-चक्र (भ्रू-मध्य) से लेकर नाभि तक लम्बा यज्ञ-सूत्र धारण करे।

यह सङ्केत (विवरण) जाने बिना जो 'सूत्र' (यज्ञोपवीत) धारण करता है, वह व्यास के समान विद्वान् होते हुये भी चाण्डाल-तुल्य है।

'गायत्री-तन्त्र' में लिखा है कि यज्ञ-सूत्र को या तो कन्या काते या पति-पुत्रवती स्त्री। विधवा या जो सधवा पुत्र-हीन हो, वह 'सूत्र' को न काते। शूद्र स्त्री यदि दीक्षिता हो, तो 'सूत्र' कात सकती है। कपास से बने 'सूत्र' का ही 'यज्ञ-सूत्र' बनता है।

'यज्ञ-सूत्र' में ग्रन्थि (गाँठ) बाँधते समय निम्न विप्रों का स्मरण करना चाहिए—

ब्रह्मा च काश्यपो विप्रः सनकश्च सनन्दनः, सनत् सनातनो विप्रो नारदः कपिलस्तथा।
मरींचिरत्रिः पुलहः पुलस्त्यो गौतमः क्रतुः, भृगुर्दक्षः प्रचेताश्च वशिष्ठो वाल्मीकिस्तथा।
द्वैपायनो भरद्वाजः शुक्रो जैमिनिरेव च, विदूरथः शुनःशेफो जातु-कर्णश्च रौरवः।
और्वः संवर्तकः शुक्रः सुराचार्यो वृहस्पतिः, चन्द्रः सूर्यो बुधः श्रीमान् यज्ञ-सूत्रस्य ग्रन्थिषु।
तिष्ठन्तु मम वामांशे वाम-स्कन्धे त्वहर्निशम्, ब्रह्माद्याः देवताः सर्वा यज्ञ-सूत्रस्य देवता॥

यज्ञ-सूत्र का जीव-न्यास

'यज्ञ-सूत्र' को द्विज-श्रेष्ठ दाएँ हाथ में लेकर उसका 'जीव-न्यास' करे। पहले गायत्री का जप कर प्रणव को सौ बार जपे। पुनः गायत्री का जप कर प्रणव को सौ बार जपे। पुनः गायत्री का उच्चारण कर 'यज्ञ-सूत्र' को बाएँ कन्धे पर धारण करे। इस 'जीव-न्यास' के बिना 'यज्ञोपवीत' कोरा सूत्र ही रहता है।

दार (स्त्री) के परिग्रह की आवश्यकता

'उद्वाह (विवाह) संस्कार' की विधि **'हिन्दी महानिर्वाण तन्त्र'** के पृष्ठ ७६ पर कृपया देखें। उसके प्रसङ्ग में यहाँ **'मत्स्य-सूक्त'** के अनुसार बताया है कि—

दारा (स्त्री) हीन व्यक्ति की मुक्ति नहीं होती, उसके सभी कर्म निष्फल होते हैं। भार्या (पत्नी) से रहित व्यक्ति देवार्चन और यज्ञादि न करे। एक पहिये वाले रथ और एक पंखवाले पक्षी के समान ही भार्या-हीन पुरुष सभी कर्मों में अयोग्य ठहरता है। बिना भार्या के कोई कर्म नहीं होता, भार्या-हीन को सुख नहीं मिलता। बिना भार्या के घर किसका? अतः सर्वस्व लगाकर भी दार (स्त्री) का संग्रह करना चाहिए। सवर्णा स्त्री ही **'धर्म-पत्नी'** होती है। असवर्णा भार्या **'काम-पत्नी'** मानी जाती है।

दश संस्कारों की प्रयोग-विधि

[महा-निर्वाण-तन्त्रोक्त दस संस्कारों की प्रयोग-विधि को यहाँ कुछ और स्पष्ट किया गया है। प्रयोग-विधि **'हिन्दी महा-निर्वाण तंत्र'** में द्रष्टव्य है। विशेष स्पष्टीकरण यहाँ उल्लिखित हैं।]

पृष्ठ	पंक्ति	मूल शब्द	स्पष्टीकरण
६३	८	द्विजों के लिये	ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों के लिये
६८	३	नित्य कर्म समाप्त कर	आसन पर बैठकर दीक्षा-पद्धति में लिखित मन्त्रों से घटों को स्थापित कर उनमें ब्रह्मा, दुर्गा, गणेश, विष्णु, सूर्य, शिव, आदित्यादि नौ ग्रहों और इन्द्रादि दश दिक्पालों की पूजा कर
६८	७	आवाहन करे	अर्घ्य-स्थापन कर हाथ जोड़कर आवाहन करे—'ह्लीं आयान्तु…'
६८	१३	यथाशक्ति उनकी पूजा कर	'ह्लीं गौर्यै मात्रे नमः, ह्लीं पद्मायै मात्रे नमः' इस प्रकार पाद्यादि से
६८	१४	सिन्दूर और चन्दन	सिन्दूर या रक्त-चन्दन
६८	१८	'वायु' नामक अग्नि	'वायु' अग्नि का ध्यान, आवाहन कर घृत से पाद्यादि पूजन कर
६८	२३	विष्णुर्योनिं	ह्लीं विष्णुर्योनिं…
६८	२७	आहुति प्रदान करे	'ह्लीं सूर्याय नमः, ह्लीं प्रजापतये स्वाहा, ह्लीं विष्णवे स्वाहा' इन तीन मन्त्रों से प्रत्येक को क्रमशः आहुति प्रदान करे।
६८	२८	उत्तम आहुति	घी से आहुति
६८	२९	गर्भं धेहि	ह्लीं गर्भं धेहि
६९	२	यथेयं पृथिवी	ह्लीं यथेयं…
६९	५	विष्णु का ध्यान	विष्णु का पुनः ध्यान
६९	६	विष्णो !	ह्लीं विष्णु ! …
६९	१२	अथवा	इसके बाद
६९	१४	युग्म रात्रि में	भार्या के साथ अन्य भवन में…पत्नी को छूते हुये शय्या-शोधन करे
६९	२६	यथाऽग्निना	ह्लीं यथाऽग्निना…
७०	१	किं त्वं पिबसि ?	किं त्वं त्रिः कृतं पिबसि ?
७०	३	ह्लीं पुंसवनं	मया पुंसवनं कृतं पीयते।
७०	८	गर्भ-विघ्न-कर्त्तारो	चात्र विघ्न-कर्त्तारो
७०	१४	होम द्वारा	होम से वह्नि-विसर्जन तक कर्म कर दक्षिणाच्छिद्रावधारण तक कर
७०	२१	पूर्वोक्त धारा-होम तक	पञ्च-देव-पूजन से लेकर धारा-होम तक
७०	२२	तीन आहुतियाँ	'शिव' नामक अग्नि का ध्यानावाहन पूजन कर तीन आहुतियाँ
७०	२३	विष्णवे स्वाहा	ह्लीं विष्णवे स्वाहा। ह्लीं भास्वते स्वाहा। ह्लीं धात्रे स्वाहा
७०	२४	चन्द्र के लिये	चन्द्र के लिये 'ह्लीं सोमाय स्वाहा' से
७०	२९	आयुष्मती	आयुष्मति
७१	१	स्विष्ट-कृत होमादि	स्विष्ट-कृत होम और प्रायश्चित्त होम कर दक्षिणा, अग्नि-विसर्जनादि
७१	२	धारा होम	गर्भाधान-पद्धति में कथित पञ्च-देव-पूजा से लेकर धारा-होम तक
७१	३	पाँच आहुतियाँ	'ह्लीं अग्नये स्वाहा, ह्लीं इन्द्राय स्वाहा, ह्लीं प्रजापतये स्वाहा, ह्लीं विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा, ह्लीं ब्रह्मणे स्वाहा' से पाँच आहुतियाँ
७१	४	१० बार	७ बार
७१	६	आयुर्वर्चो	ह्लीं आयुर्वर्चो…

७१	८	गुप्त नाम रखे	गुप्त नाम रखे। तब जन्म-दिन के तीन दिन के भीतर श्वेत दूर्वाओं (दूबों) या स्वर्ण-शलाका द्वारा मधु (शहद) से शिशु की जीभ पर वाग्भव-कूट या तारा देवी का त्र्यक्षर मन्त्र या कुल-देवता का मन्त्र लिखे। इससे शिशु विद्वान् और शब्दालङ्कार का ज्ञाता होता है।
७१	९	प्रायश्चित्तादि होम	स्विष्ट-कृद् होम से लेकर वह्नि-विसर्जन तक के कर्म
७१	९	नाड़ी-छेदन	नाड़ो छेदन करे। तब अशौच लगता है। यह 'जात-कर्म' संस्कार है।
७१	१३	पति के पास	पति के बगल में—बाएँ क्रोडासन पर आकर
७१	१५	जाह्नवी··· सुपवित्रा··· कुम्भी	ह्लीं जाह्नवी··· सपवित्रा··· कुम्भी
७१	१८	भाजयतेऽनः मातरः	भाजयतेह न उशतीरिव मातरः
७१	१९	जिन्नथ	जिन्वथ
७२	४	ब्रह्मा विष्णुः	ह्लीं ब्रह्मा विष्णुः
७२	१५	पूर्ववत् देव-पूजा आदि	नित्य-कर्म कर पूर्ववत् गणाधिप, गौरी आदि का पूजन कर 'शुचि' नामक अग्नि का संस्कार कर
७२	१६	पाँच आहुतियाँ	'ह्लीं अग्नये स्वाहा, ह्लीं इन्द्राय स्वाहा' आदि
७२	२४	देव-पूजा से	गणाधिप व मातृकादि-पूजा कर 'सत्य' नामक अग्नि का संस्कार कर
७२	२९-३०	चोटी को	उक्त चोटी-सहित केशों को
७३	३	नाई को	बालक को
७३	३	तीन आहुतियाँ	तीन आहुतियाँ 'ह्लीं प्रजापतये स्वाहा' मन्त्र से
७३	८	कुशलं··· विभुः	विश्वकर्मा कुशलं कुरुताम्
७३	२५-२८	ब्रह्म चर्यं	ह्लीं ब्रह्मचर्यं कुरु वत्स
७४	४	यज्ञोपवीतं परमं	ह्लीं यज्ञोपवीतं परमं···
७४	९	कुश-जल द्वारा	त्रि-पत्र कुश से जल लेकर
७४	१०	तच्चक्षुर्देव-हितं	'ह्लीं तच्छक्षुः' इस मन्त्र से
७६	९	जितेन्द्रियः सत्यवादी	ह्लीं जितेन्द्रियः सत्यवादो ···
७६	१३	'भूः भुवः स्वः'	'ह्लीं ॐ भूः स्वाहा, ह्लीं ॐ भुवः स्वाहा, ह्लीं ॐ स्वः स्वाहा'
७६	१४	होम	होम से लेकर दक्षिणा तक के कर्म कर
७६	२०	वर से कुशल-प्रश्न	वर से पूछे : 'ह्लीं साधु भवानास्ताम्', वर उत्तर दे : ह्लीं साध्वहमासे' फिर वर से पूछे 'ह्लीं अर्चयिष्यामो भवन्तं', वर उत्तर दे : 'ह्लीं अर्चय'
७६	२१	समर्पयामि	ह्लीं पाद्यं समर्पयामि
७६	२५	'प्राणाय स्वाहा' इत्यादि	'ह्लीं प्राणाय स्वाहा, ह्लीं अपानाय स्वाहा, ह्लीं समानाय स्वाहा, ह्लीं उदानाय स्वाहा 'ह्लीं व्यानाय स्वाहा' इन मन्त्रों से
७७	३३	एक एक आहुति	'ह्लीं' शिवाय स्वाहा, ह्लीं दुर्गायै स्वाहा, ह्लीं विष्णवे स्वाहा, ह्लीं ब्रह्मणे स्वाहा, ह्लीं इन्द्राय स्वाहा' से

सूचना : उक्त पृष्ठ-पंक्ति-संख्या 'हिन्दी महा-निर्वाण तन्त्र' की है।

दूसरा परिच्छेद

'गुरु' का प्रकरण (विषय)

'दीक्षा' एक प्रमुख संस्कार है। उसे करनेवाले गुरु उसके मूल-रूप हैं।

गुरु के लक्षण आदि

(१) माता-पिता से शुद्ध जन्मवाला, शुद्ध भावनावाला, इन्द्रियों को जीतनेवाला, सभी आगमों के सार का ज्ञाता, सभी शास्त्रों का अर्थज्ञ, परोपकारी, जप-पूजादि में तत्पर, सत्य-वक्ता, शान्ति-पूर्ण, वेद-वेदाङ्ग का ज्ञाता, योग-मार्ग के अर्थ का समझनेवाला, देवता के समान मनोहर इत्यादि। आगम तन्त्र के अनुसार गुरु को इन गुणों से युक्त होना चाहिये।

(२) सभी शास्त्रों में अति निपुण, सभी शास्त्रों के अर्थ को जाननेवाला, मधुर वक्ता, सुन्दर अच्छे अङ्गोंवाला, कुलीन, देखने में शुभ, जितेन्द्रिय, सत्य बोलनेवाला, शान्त मनवाला, ब्राह्मण, माता-पिता की सेवा करनेवाला, सभी कर्मों में रुचि रखनेवाला, आश्रम में रहनेवाला अर्थात् गृहस्थ, स्वदेश में स्थिर—ऐसा गुरु होना चाहिये।

(३) मध्य देश में जन्मा अर्थात् श्रेष्ठ कुलवाला, शान्ति-मय, सभी गुणों से सम्पन्न, पुत्र और पत्नी से युक्त गुरु होना चाहिये।

(४) पशु, वीर और दिव्य इन तीन भावों का मर्मज्ञ, वेदान्त का ज्ञाता, शान्त अर्थात् विषय-भोग की तीव्र इच्छा से रहित और शम आदि गुणों से युक्त, 'शम' अर्थात् श्रवणादिक से भिन्न विषयों में मन का निग्रह करनेवाला (यथा—तीव्र भूख होने पर भोजन के सिवा अन्य बात मन को अच्छी नहीं लगती। ऐसी स्थिति में भोजन के विलम्ब को सहन करना तथा पुष्प-माला, चन्दनादि विषयों में अत्यन्त रुचि के स्थान में तत्व-ज्ञान के साधनों और श्रवण-मनन आदि में अभिरुचि रखना), 'दान्त' अर्थात् तप करनेवाला, क्लेश सहनेवाला या 'दम' से युक्त ('दम' अर्थात् श्रोत्र आदि बाह्य इन्द्रियों के विषयों को अपनी विशेष वृत्ति के द्वारा निवारण करना)---अथवा 'शान्त' अर्थात् अन्तरिन्द्रियों को वश में करने-वाला और 'दान्त' अर्थात् बहिरिन्द्रियों को वश में करनेवाला, कुलीन, विनम्र, शुद्ध वेश धारण करने-वाला, पवित्र आचरणवाला, प्रतिष्ठा-प्राप्त, कार्य-कुशल, बुद्धिमान्, गृहस्थ, ध्यान-परायण, मन्त्र-तन्त्र का मर्मज्ञ, निग्रह-अनुग्रह में समर्थ, लोगों को वश में करनेवाला, मन्त्रार्थ जप-कर्ता गुरु होना चाहिये।

(६) बाह्य इन्द्रियों के विषयों को शान्त करनेवाला गुरु कठिनाई से प्राप्त होता है और अन्तः इन्द्रियों के विषयों को शान्त करनेवाला गुरु सभी स्थानों में सम्मान पाता है। आचारवान्, महा-विद्या की आराधना में लगा हुआ गुरु माना जाता है।

कुलीन गुरु की प्रशंसा

'कुलीन' का अर्थ है **'कौल'**। कुछ लोग अपनी बुद्धि से **'कुलीन'** का अर्थ शुद्ध-जन्मा या आचारादि नौ गुणों से युक्त बताते हैं किन्तु यह ठीक नहीं है। जो लोग माता-पिता की शुद्धता से **'कुलीन'**-शब्द की व्याख्या करते हैं, वे कदाचित् इस भाव से कि उन्हें यह सन्देह है कि विष्णु-मन्त्र का उपदेश करने-

वाले गुरु में कुलाचार का अभाव होना चाहिये। ऐसा सन्देह होने का कारण यह है कि व्याख्याकारों ने कुलार्णव, रुद्रयामल आदि तन्त्रों का अध्ययन नहीं किया है क्योंकि इन तन्त्रों में स्पष्ट रूप से यह निर्णय किया गया है कि सौर, गाणपत्य, शैव, वैष्णव और शाक्तों—सभी को **'कुलाचार'** का उपदेश करना चाहिये। **'कुलीन'** सब मन्त्रों का अधिकारी होता है। वह समस्त मन्त्रों की दीक्षा दे सकता है।

शान्त, दान्त, कुलोन, शुद्ध अन्तःकरण वाला, पञ्च-तत्वात्मक साधक ही सद्गुरु है। उस शिष्य-पालक को लोग 'सिद्ध' मानते हैं। दैवी शक्ति के चमत्कार करनेवाला सद्-गुरु कहा जाता है। अश्रुत को सहज ही मनोहर ढंग से कहनेवाला, तन्त्र-मन्त्र का ज्ञाता ही सद्-गुरु है।

शाक्त के लिये शाक्त-गुरु प्रशस्त है, शैव के लिये शैव, वैष्णव के लिये वैष्णव, सौर के लिये सौर और गाणप के लिये गाणप गुरु निर्दिष्ट है किन्तु **'कौल'** सभी के लिये सद्-गुरु माना गया है। अतः बुद्धिमान् व्यक्ति को **'कौल'** से दीक्षा लेनी चाहिये।

पशु साधक के मुख से मन्त्र पानेवाला पशु, वीर से मन्त्र पानेवाला वीर और **'कौल'** से मन्त्र पानेवाला ब्रह्म-विद् होता है।

शैव भी पर-विद्याओं का उपदेश कर सकता है। वैष्णव अपने मतवालों को, सौर सौर-मतानुयायियों को और गणापत्य गणेश की दीक्षा का प्रवर्तक होता है किन्तु **'कौल'** शैव और शाक्त सभी को दीक्षा देने का अधिकारी है। अतः 'कुलीन' गुरु का ही आश्रय लेना चाहिये।

दिव्य, वीर और पशु—ये तीन प्रकार के भाव हैं और इन्हीं के अनुसार गुरु, मन्त्र एवं देवता तीन प्रकार के होते हैं---यह व्याख्या पशु-गुरु विषयक है।

'कौल' सभी मन्त्रों का उपदेश कर सकता है और वही **'सद्-गुरु'** है। इससे यह मानना कि केवल शान्ति आदि लक्षणों से युक्त साधक ही 'सद्-गुरु' हो सकता है, ठीक नहीं है क्योंकि 'कौल' मात्र ही सद्-गुरु कहा गया है। **'कुलीन'**-शब्द का तात्पर्य शुद्ध-वंश-जन्मा आदि करना ठीक नहीं है क्योंकि यह कूट अर्थ-कल्पना है, जो निन्दनीय है। शाम्भव तन्त्रशास्त्र में प्रचलित पदों का प्रकट अर्थ ही लेना चाहिये। जो प्रकट अर्थ के अतिरिक्त की कल्पना करते हैं, उनका पतन होता है।

नीरोगी, निरभिमानी, निर्विकार, तपस्वी, सत्यवादी और सदा ध्यान-परायण, आगम के अर्थ को विशेष रूप से जाननेवाला, अपने धर्म में लगा रहनेवाला, धैर्यवान् **'नाथ'** गुरु माना गया है।

गुरु, नाथ, आचार्य शब्दों के अर्थ

'गु' =गुह्य आगम के अर्थ-तत्त्व का बोध कराने से तथा **'रु'** =रुद्रादि-देव के समान होने से **'गुरु'** कहा जाता है।

'श्री' =श्री, मोक्ष और ज्ञान के देने से, **'ना'** =नाद-ब्रह्मात्म-तत्व का बोध कराने से और **'थ'** =स्थगित ज्ञान-चिह्न होने से **'श्रीनाथ'** कहा जाता है।

'आ' =आचार का स्वयं पालन करते हुये शिष्य को आचार में लगाता है, **'चर्'** =चराचर के समन्वय की शिक्षा देता है और **'य'** =यमादि योग को सिद्ध करता है, इससे **'आचार्य'** कहा जाता है। अर्थात् शास्त्र के अर्थों को स्पष्ट करनेवाला।

गुरु के विशेष लक्षण

विशुद्ध माता-पिता वाला, जितेन्द्रिय, सर्वागमों का ज्ञाता, पर-दुःख में करुणा करनेवाला, वेद-वेदाङ्गों में निपुण, शान्त, द्विज, **'कुलीन'** गुरु कहा जाता है।

संसार-बन्धन को दूर करने के लिये शिव ही सिद्धान्त-सार के ज्ञाता गुरु का रूप ग्रहण कर सिद्धान्त-सार को स्पष्ट करते हैं। अनुग्रह और निग्रह करने में सदा सावधान, दिव्याकृति वाले वे गुरु रूपी शिव आँखों से दिखाई नहीं देते। **'श्रीगुरु'** के रूप में वे ही शिष्यों को शिक्षा देते हैं।

परम सम्वित् को देनेवाले परमानन्द-दायक तत्त्व को जो जानता है, वही **'गुरु'** है। वर्ण, कला, पद, तत्व, मन्त्र और भुवन—इस **'षडध्वान'** को तथा **'षडाधार'** (षट्-चक्र), **'नव-द्वार'** (शरीर के नौ छिद्र) एवं **'षोडशाधार'** (मूलाधारादि) को जो जानता है, वही गुरु है। जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय और तुरीयातीत—इस **'पञ्चक'** को जो जानता है, वही गुरु है।

षट्-चक्र, षोडशाधार, त्रि-लक्ष और व्योम-पञ्चक को प्राणायाम आदि के द्वारा अपने शरीर में जो जान लेता है, वही गुरु है।

'षडध्वान' में अध्वान का अर्थ है वर्ण। 'षडध्वान' का स्पष्टीकरण दीक्षा-प्रकरण में दिया है। **'षडाधार'** षट्-चक्र हैं क्योंकि वे पृथिवी आदि के आधार हैं। शरीर-रूप 'पुर' के **'नव-द्वार'** अर्थात् नौ छिद्र हैं—२ आँख, २ कान, १ मुख, २ नाक, १ गुह्य, १ लिङ्ग। **'त्रि-सूत्र'** हैं तीन नाड़ियाँ। **'षोडशाधार'** हैं—१ मूलाधार, २ स्वाधिष्ठान, ३ मणिपूर, ४ अनाहत, ५ विशुद्ध, ६ आज्ञा-चक्र, ७ विन्दु, ८ कला, ९ पद, १० निवोधिका, ११ अर्द्धेन्दु, १२ नाद, १३ नादान्त, १४ उन्मनी, १५ विष्णु-वक्त्र, १६ ध्रुव-मण्डलिका। जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति—ये बुद्धि के तीन आवर्त्त-रूप हैं। **'त्रिलक्ष'**—स्वयम्भू (मूलाधार) में, वाण (अनाहत में) और इतर लिङ्ग (आज्ञा में)। **'व्योम-पञ्चक'** हैं पृथिवी आदि पञ्च-महाभूत।

जो १ पिण्ड, २ पद, ३ रूप, और ४ रूपातीत—इन चार को अच्छी तरह जानता है, उसे गुरु कहा जाता है। **'पिण्ड'**=कुण्डलिनी-शक्ति, **'पद'**=हंस, **'रूप'**=विन्दु और **'रूपातीत'**=निरञ्जन। अथवा जो १ परा, २ पश्यन्ती, ३ मध्यमा और ४ वैखरी—इन चारों को जानता है, उसे गुरु कहते हैं।

गुरु की महिमा

सारे संसार का मूल गुरु है और परम तप का मूल गुरु है। गुरु की केवल प्रसन्नता से ही साधक मोक्ष पा जाता है।···एकमात्र गुरु ही सभी कामनाओं को पूर्ण करनेवाले साक्षात् शिव हैं। गुरु ही परम तत्त्व हैं और सारा संसार गुरुमय है। गुरु की प्रसन्नता के बिना करोड़ों पुरश्चरणों का भी कोई फल नहीं होता।···शास्त्र का मूल गुरु है, उसके सिवा और कोई कल्याण करनेवाला नहीं है। अतः यत्न करके गुरु का आश्रय लेना चाहिये।

गुरु के बिना जो पुस्तक आदि देखकर जप करता है, उसे पाप होता है। माता-पिता, भाई कोई उसको रक्षा नहीं कर सकते। केवल गुरु ही क्षण में पाप का नाश करते हैं। गुरु के बिना किसी को तन्त्र में कुछ भी अधिकार प्राप्त नहीं होता।

गुरु-मन्त्र-देवता की एकता

गुरु ही एकमात्र शिव कहे गये हैं, देवेशी भी गुरु ही हैं और मन्त्र भी गुरु कहा गया है। अतः मन्त्र, गुरु और देवता में कोई भेद नहीं है। कभी उस गुरु का ध्यान सहस्रार-पद्म में, तो कभी हृदय-कमल में, तो कभी दृष्टि-पथ (भ्रू-मध्य) में करना चाहिये।···देवता, गुरु और मन्त्र की एकता की भावना बुद्धि द्वारा करते रहने से मन्त्र सिद्ध होता है। प्रकट करने से हानि होती है।···एकता का ज्ञान कैसे उत्पन्न होता है? **'गुरु'** की आकृति मनुष्य की है, **'देवता'** की ध्यानोक्त रूप की और **'मन्त्र'** की अक्षरों के रूप की है। फिर एकता कैसे?

इस सम्बन्ध में यह जानना चाहिये कि एक ही जाति-स्वरूप और स्वाभव से एक ही जन्म होने से भाव-योग में एक ही प्रकार का साधन है। गुरु से मन्त्र का जन्म होता है और मन्त्र से देवता का। अतः गुरु देवता का पितामह हुआ। पिता की भावना से जैसे पिता का पिता। इस भावना से सन्तोष होता है और ऐसा न होने से असन्तोष। आशय यह है कि एक ही जाति अर्थात् निराकार-स्वरूप। कहा भी है कि महाकाल ही गुरु-रूप में हैं, मन्त्र ध्वनि-मय है और देवता के आकार की कल्पना की जाती है—इस प्रकार तीनों की ही निराकारता स्पष्ट है। अथवा तीनों का एक ही साधन होने से। गुरु से मन्त्र का जन्म होता है, इससे जिस प्रकार पुत्र-पौत्र पिता के अंश से ही जन्म लेने के कारण उनमें ऐक्य-भाव है, उसी प्रकार गुरु, मन्त्र और देवता में ऐक्य है।

श्रेष्ठ साधक गुरु-मुख से महा-मन्त्र प्राप्त करता है, जो वीज देवता से उत्पन्न होता है, उसकी मुक्ति निश्चय है। देवता का शोरर वीज से हो उत्पन्न होता है और गुरु की आज्ञानुसार उसकी मूर्ति होती है। इसप्रकार गुरु आदि की भावना करने से भाव-सिद्धि होती है। अतः इन तीनों की एकता बताई है। मन्त्र, गुरु और देवता में जो भेद की कल्पना नहीं करता, उस पर प्रसन्न होकर जगदम्बा उसे प्रतिदिन सब कुछ प्रदान करती हैं।

गुरु के सन्तुष्ट होने का फल

गुरु ही हित करनेवाला है, गुरु ही हरण करनेवाला और गुरु ही पृथ्वी पर रक्षक है। गुरु का सन्तोष होने से सभी देवता सन्तुष्ट हो जाते हैं। गुरु के प्रसन्न होने पर शिव प्रसन्न होते हैं और उनके अप्रसन्न होने पर शङ्कर भी रुष्ट हो जाते हैं। गुरु के प्रसन्न होने पर भगवती प्रसन्न होती हैं और उनके अप्रसन्न होने पर वे रुष्ट हो जाती हैं। संसार-सागर के पार करने में गुरु कर्ता, पाता और हर्ता हैं तथा मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं।

'गुरु' शब्द के कहने का फल

'**ग**'कार सिद्ध-दायक कहा गया है और **रेफ** पाप का दाह करनेवाला। '**उ**'कार शम्भु कहा गया है। इस प्रकार तीन स्वरूप वाला '**गुरु**' शब्द है। '**गुरु**' के दोनों अक्षर क्रमशः निर्गुण और परब्रह्म हैं। यह गोपनीय महा-मन्त्र है और सर्व-श्रेष्ठ है। जिसकी जीभ के अग्र-भाग में '**गुरु**' अक्षर रहता है, उसे कोई मोह नहीं होता; वेद पढ़ने की कोई आवश्यकता उसे नहीं रह जाती। '**ग**'कार के उच्चारण मात्र से ब्रह्म-हत्या दूर हो जाती है। '**उ**'कार के कहने मात्र से जन्म भर के पापों से छुटकारा मिल जाता है। '**रेफ**', '**उ**'कार और **बिसर्ग** के उच्चारण से कोटि जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं। '**गुरु**' शब्द को जप करने से पूर्व-काल में ब्रह्म-हत्या से शिव मुक्त हुये थे, इसमें सन्देह नहीं। परशुराम माता के वध से और इन्द्र ब्रह्म-हिंसा के पाप से '**गुरु**' का उच्चारण करने मात्र से मुक्त हुये थे।

गुरु-शरीर में ब्रह्मा आदि की स्थिति

गुरु के शरीर में ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, पार्वती, इन्द्रादि देवता, यक्षादि पितृ-देवता, गङ्गादि नदियाँ, सभी गन्धर्व, सर्प-जातियाँ, स्थावर-जङ्गम पर्वत आदि सभी भौतिक एवं अन्य सभी निरन्तर विद्यमान रहते हैं। श्री गुरु की तृप्ति मात्र से उक्त सभी की तृप्ति हो जाती है।

सबकी अपेक्षा गुरु की श्रेष्ठता

गुरु से अधिक श्रेष्ठ न शास्त्र हैं और न तप। मन्त्र, देवी और शिव गुरु से अधिक नहीं हैं। देव-मूर्ति और जप भी गुरु से अधिक श्रेष्ठ नहीं हैं।...सदा गुरु के स्वरूप का ध्यान और उनके तत्व का

जप करना चाहिये। गुरु के चरणोदक में काशी-क्षेत्र और गङ्गा का वास रहता है। गुरु निश्चय ही साक्षात् विश्वेश्वर तारक ब्रह्म हैं। ध्यान का मूल गुरु की मूर्ति है; पूजा का मूल गुरु के चरण हैं; मन्त्र का मूल गुरु के वचन हैं और सिद्धि का मूल गुरु की कृपा है। मुनियों, सर्पों या देवताओं से भी शापित अथवा काल-मृत्यु के भी भय से गुरु रक्षा करते हैं।...गुरु ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर हैं। गुरु तीर्थ-यज्ञ-दान-तप हैं। गुरु अग्नि-सूर्य और समस्त जगत् हैं।

दान, तप, तीर्थ-यात्रा की क्या आवश्यकता ? जिसने श्रीगुरु के चरणों की पूजा कर ली, उसके द्वारा सारे जगत् की पूजा हो गई। ब्रह्माण्ड-रूपी पात्र में जो तीर्थ हैं, वे सब गुरु के चरण-तल में वास करते हैं अत: गुरु-चरणों की पूजा से विश्व की पूजा सम्पन्न हो जाती है।

दीक्षा और शिक्षा-भेद से 'गुरु' के दो प्रकार तथा अन्य भेद

दीक्षा-गुरु ही आदि गुरु हैं। शेष शिक्षा-गुरु माने गये हैं। जिनके मुख से महा-मन्त्र सुना जाता है अथवा जिनके निर्देशानुसार साधना की जाती है, उन्हें हो परम गुरु जानना चाहिये और उन्हीं की कृपा सिद्धि देनेवाली है।

१ प्रेरक, २ सूचक, ३ वाचक, ४ दर्शक, ५ शिक्षक और ६ बोधक—ये छः गुरु कहे गये हैं। इनमें से पाँच 'कार्य'-भूत हैं और छठे बोधक गुरु 'कारण'-रूप हैं।

जिन्हें तत्त्वज्ञ गुरु से उपदेश मिलता है, वे ही तत्त्वज्ञ होते हैं। पशुओं से उपदेश पानेवाले 'पशु' ही होते हैं। ज्ञानवान् ही मूर्ख का उद्धार करता है, मूर्ख मूर्ख का उद्धार नहीं कर सकता।...शिष्य के धन को लेनेवाले गुरु तो बहुत हैं किन्तु शिष्य के हृदय के ताप को नष्ट करनेवाला गुरु दुर्लभ ही है। भुक्ति-मुक्ति देनेवाले एक वही गुरु श्रेष्ठ है।

गुरु का विशेष वर्णन

आदिनाथ को महा-काल कहा है। वही सब मन्त्रों के गुरु हैं। शैव, शाक्त, वैष्णव, गाणपत्य, ऐन्दव, महा-शैव और सौर में वही गुरु हैं। मन्त्र-वक्ता वही हैं और मन्त्र देने के समय मनुष्य में उन्हीं महा-काल का अधिष्ठान होता है। अतः मनुष्य में गुरुत्व नहीं होता। मन्त्र-दाता शिव ही हैं। गुरु का जो ध्यान पद्म पर किया जाता है, वही ध्यान शिष्य भी शीर्षस्थ कमल पर करता है।

गुरु एक ही है। मनुष्य के शरीर में उसका अधिष्ठान होने से सभी शास्त्रों में उसकी महिमा गाई गई है। मनुष्य में गुरुत्व की कल्पना की जाती है, वह स्वयं मुख्य नहीं है। मनुष्य में गुरु-भावना करने से मोक्ष नहीं मिलता। अतः मनुष्य गुरु नहीं है किन्तु कल्पना से उसमें गुरु की भावना की जाती है। ठीक उसी प्रकार, जैसे दीक्षादि संस्कार में साधक वृक्षादि में पूजन करते हैं।

विद्या-वान् या विद्याहीन कैसा भी गुरु हो, उसे परम देव मानना चाहिये। इसकी सार्थकता तभी है, जब वृक्षादि के समान जैसा कि ऊपर बताया है, उसे पूजनीय माना जाय, वास्तव में नहीं। यही बात इस उक्ति से भी प्रतिपादित होती है कि गुरु में मनुष्य-बुद्धि न रखनी चाहिये। जैसे घट के छिद्र, व्रणादि दोषों को देखा जाता है, उसी प्रकार मनुष्य के महा-पातकादि दोष विचारणीय हैं।

गुरु एक ही सर्वत्र बताया गया है। उसका भेद नहीं करना चाहिये। सारा जगत् गुरु-मय है। गुरु के नित्य होने से मानव-गुरु की मृत्यु होने पर तीन रात का जो अशौच बताते हैं, वे मूर्ख ही हैं। स्मृतियों में गुरु-मरण के अशौच का जो विधान है, वह स्मृतियों में कथित गुरु के सम्बन्ध में है या वैदिक

गुरु के सम्बन्ध में। यदि इसे तान्त्रिक गुरु के सम्बन्ध में भी मानें, तो कुलागम में कथित प्रेरकादि गुरुओं के सम्बन्ध में ही यह माननीय है अथवा पश्वाचारी शिष्य के लिये यह कर्तव्य है। बोधक गुरु के सम्बन्ध में यह (अशौच) नहीं है।

गुरु के सम्बन्ध में विशेष ज्ञातव्य यह है कि पशु-मन्त्र की दीक्षा दश-पौरुषी होती है, जब कि वीर-मन्त्र-दीक्षा पचीस-पौरुषी, महाविद्या-मन्त्र की दीक्षा पचास-पौरुषी और ब्रह्म-योग की दीक्षा सौ पौरुषी होती है। इसका आशय यह है कि पश्वाचार के मत से देय मन्त्र यदि शिष्य द्वारा गुरु से ग्रहण किया जाता है, तो उसके बाद शिष्य की सन्तति द्वारा अन्य गुरु से मन्त्र ग्रहण करने की दशा में पैतृक गुरु की दसवीं पीढ़ी तक के लोगों के प्रति शिष्य के वंश की दसवीं पीढ़ी तक लोगों को गुरु की मर्यादा का पालन करना होता है। तभी गुरु-वंश की मर्यादा की जो कल्पना की गई है, वह सार्थक होगी। अथवा लोभी या दुष्ट गुरु का त्याग करने की दशा में भी उसके वंश की मर्यादा का पालन करने हेतु उक्त निर्देश पालनीय है। दिव्य और वीर गुरु का भी त्याग, उनमें दोष दिखाई देने पर, किया जा सकता है। गुरु त्याग से मृत्यु होती है, यह वचन है, वह निर्दोष गुरु का त्याग करने के सम्बन्ध में समझना चाहिये।

अपने गुरुदेव साक्षात् ब्रह्म ही हैं, इसमें सन्देह नहीं। उनके पिता पृथ्वी पर स्वयं विष्णु-रूप परम गुरु हैं और उनके पिता सदा महेश्वर-समान परापर गुरु हैं।···आदि में गुरु सर्वत्र हैं, फिर मन्त्र-दाता परम गुरु हैं। परापर गुरु भगवती शक्ति हैं और सदाशिव परमेष्ठी गुरु हैं।

परम्परा, आगम, आम्नाय और मन्त्राचार आदि सभी बातें गुरु-मुख से प्राप्त करने पर ही सफल होती हैं, अन्यथा नहीं। पाशों को छिन्न करने से, पर-तेज के रञ्जन से और जाति-भेदों को छिन्न करने से 'पारम्पर्य' कहा जाता है।

स्त्री-गुरु के लक्षण और उसकी महिमा

साध्वी, सदाचारा, गुरु-भक्ता, जितेन्द्रिया, सर्व-मन्त्रार्थ-तत्त्वज्ञा, सुशीला, पूजन-तत्परा, सर्व-लक्षण-सम्पन्ना, रूपवती, कमल-नयना, रत्नालङ्कार-भूषिता, स्वर्णाभूषण-सज्जिता, शान्ता, कुलीना, चन्द्रमुखी, बुद्धिमती, सर्व-गुण-सम्पन्ना, शिवत्व-दायिनी, मनोहरा, गौरवान्विता, स्फूर्ति-कारिणी और शिव-ज्ञान-दायिनी स्त्री गुरु बनाने योग्य होती है। विधवा स्त्री को गुरु नहीं बनाना चाहिये।

स्त्री द्वारा दी गई दीक्षा शुभ होती है। माता की दीक्षा आठ गुना श्रेष्ठ मानी गई है। पुत्रवती विधवा स्त्री गुरु बनाने योग्या है, वह केवलानन्द की देनेवाली है। यदि मन्त्र सिद्ध है, तो विधवा के मुख से ग्रहण करना चाहिये। माता का मन्त्र सुफल ही देता है, अतः आठ गुना श्रेष्ठ बताया गया है। स्वयं अथवा स्वप्न में यदि देवी का मन्त्र पुत्रवती सती स्त्री द्वारा दिया जाता है, तो वह आठ गुना अधिक फल-दायक होता है। यदि माता अपना मन्त्र पुत्र को प्रदान करती है, तो भक्ति-मार्ग से वह अष्ट-सिद्धियों को प्राप्त करता है। पहले भक्ति, फिर मुक्ति प्राप्त कर काम-रूप बनकर सहस्र-कोटि विद्याओं के मर्म का ज्ञाता होता है। स्वप्न में अथवा स्वयं माता यदि अपने मन्त्र को देती है, तो उसके बाद पुनः दीक्षा लेनेवाला दानवत्व को प्राप्त करता है। यदि भाग्यवश माता अपनी इच्छा के अनुरूप हो, तो सिद्धि की प्राप्ति होती है। अपने मन्त्र के उपदेश में गुरु का चिन्तन नहीं करना चाहिये।

वर्जनीय गुरु का वर्णन

कुरूप, रोगी, क्रूर, निरानन्द, पापी, चोर, मूर्ख, अङ्ग-हीन, दुश्चरित्र, कपटी, बातूनी, बहु-भोजी, कंजूस, झूठा, धूर्त, ठग, आलसी, आचार-हीन, धर्म-हीन आदि वर्जित हैं। विशेष उल्लेखनीय यह है कि

दीक्षा लेते समय यदि गुरु स्वस्थ हो और बाद में वह रुग्ण या अङ्ग-हीन हो जाय, तो उसका त्याग न करके उसे गुरु-वत् ही मानते रहना चाहिये। अर्थात् रुग्णादि दोषों का विचार दीक्षा लेते समय करना चाहिये।

इसके अतिरिक्त पिता, नाना, यति, वन-वासी और अपने शत्रु या आश्रित से दीक्षा नहीं लेनी चाहिये।

प्रमाद-वश यदि उक्त निषिद्ध व्यक्ति से दीक्षा ले ली हो, तो प्रायश्चित्त करके पुनः दीक्षा लेनी चाहिये। सावित्री मन्त्र, विष्णु-मन्त्र या प्रणव का एक लाख जप करने से प्रायश्चित्त होता है। असमर्थ हो, तो दस हजार गायत्री-मन्त्र का जप करे। छन्दों की माता गायत्री सब पापों की राशि को भस्म कर देती है।

सिद्धि मन्त्र को दुष्कुल से भी ग्रहण कर लेना चाहिये। स्वप्न में प्राप्त मन्त्र के लिये दीक्षा का नियम नहीं है। स्वप्न में प्राप्त और स्त्री द्वारा प्रदत्त मन्त्र संस्कार मात्र से शुद्ध हो जाते हैं।

मनुष्य में गुरुत्व की कल्पना मात्र की जाती है। जिस प्रकार स्वर्ण-पात्र में कोई दोष होने पर उसे भी छोड़ दिया जाता है और किसी दूसरे पात्र में भोजन किया जाता है, उसी प्रकार लोभी या दुष्ट मनुष्य को शिष्य द्वारा छोड़ दिया जाना चाहिए। सारे संसार में ज्ञान के लिए ही गुरु किया जाता है। ज्ञान से मोक्ष मिलता है, अतः ज्ञान ही सर्व-श्रेष्ठ है। जो गुरु ज्ञान देने में समर्थ नहीं है, उसे शिष्य को त्याग देना चाहिये, जैसे अन्न का इच्छुक अन्न-हीन को छोड़ देता है। जिस गुरु में ज्ञान शोभायमान है, वह साक्षात् शिव ही है। अज्ञानी को छोड़कर ज्ञानी की शरण ले। जिस प्रकार मधु का लोभी भृङ्ग एक पुष्प से दूसरे पुष्प पर जाता है, उसी प्रकार ज्ञान-लोभी शिष्य को एक गुरु से दूसरे गुरु के पास जाना चाहिए।

पूर्वोक्त दोषों से युक्त दिव्य या वीर भी हों, तो उनके प्रति भी शिष्य को गुरु की भावना न करनी चाहिये। उन्हें अपना हितैषी बनाना चाहिये। गुरु त्व की कल्पना उनमें न करे।

कौलों के लिए भी कहा है कि—महा-विद्या के मन्त्र को देकर जो वीराचार की शिक्षा नहीं देता, वह घोर नरक में जाता है और शिष्य का भी पतन होता है। पशु-भाव में रह कर जो कालिका और तारिणी का मन्त्र देकर उनका आचार नहीं बताता, वह नरक से नहीं लौटता। इसलिए साधकों को पशु-गुरु का सदा त्याग करना चाहिए। यदि दैवयोग से कोई शाक्त पशु-दीक्षा को प्राप्त कर ले, तो कौल से कौलिकी दीक्षा द्वारा उस मन्त्र को पुनः प्राप्त करे।

शिष्य-शब्द की व्युत्पत्ति और लक्षण

शरीर, धन और प्राणों को सद्-गुरुओं के लिये जो अर्पित करता है, वही शिष्य कहलाता है। गुरु के लक्षणों के समान ही बनकर शिष्य को सद्-गुरु का आश्रय लेना चाहिये।

शमादि चारों गुणों से युक्त, श्रद्धालु, स्थिर-विचार, अलोभी, स्थिर-शरीर, जितेन्द्रिय, आस्तिक, गुरु, मन्त्र और देवता में दृढ़-भक्ति-वान्—ऐसा शिष्य होना चाहिये। अन्यथा वह गुरु के लिये दुःख-दायी होता है।

शिष्य को कुलीन, श्रद्धात्मा, पुरुषार्थी, वेद-ज्ञाता, कार्य-कुशल, वासना-रहित, प्राणियों का हितैषी, धर्म-निष्ठ, स्व-धर्म-परायण, माता-पिता का हितैषी होकर मन, वचन, शरीर, धन-धान्य से गुरु की सेवा में तत्पर होना चाहिए।

शिष्य अपने गुणों से युक्त होकर सदा गुरु-भक्त रहे। धर्म-कामादि में तत्पर होकर गुरु-मन्त्र के प्रति निष्ठा रखे। सत्यवादी हो और गुरु, मन्त्र तथा देव-पूजन में एवं गुरूपदिष्ट मार्ग में तत्पर रहे।

वर्जनीय शिष्य के लक्षण

कामी, कुटिल, लोक-निन्दित, झूठे, विनय-हीन, असमर्थ, परिवार-हीन, शत्रुओं को प्रिय, सदा पाप करनेवाले, अशिक्षित, जड़ात्मा, कलि-दोषों से युक्त, वैदिक कर्मों से रहित, आश्रम के आचारों से रहित, अशुद्ध विचारवाले, अश्रद्धालु, क्रोधी, संशयालु, चरित्र-हीन, पर-स्त्री-परायण, द्वैत बुद्धि-वाले और सबको निन्दा करनेवाले शिष्य का त्याग करना चाहिये।

धन आदि के कारण यदि वीर साधक किसी त्याज्य व्यक्ति का त्याग नहीं करता, तो वह शिष्य के समान ही पापी होकर शिष्य के पापों के फलस्वरूप शीघ्र ही सिद्धि-हीन हो जाता है। उसके कार्य की हानि होकर उसे अचानक ही नरक की प्राप्ति होती है। अतः यत्न-पूर्वक विचार करके शिष्य बनाना चाहिये। अन्यथा शिष्य के दोष से गुरु को नरक में जाना पड़ता है।

गुरु-आज्ञा का पालन, विरुद्धाचार या गुरु-द्रोह

गुरु की आज्ञा का उल्लङ्घन न करे और उनकी बात को काटे नहीं। दिन-रात सेवक के समान गुरु की आज्ञा का पालन करे। गुरु की आज्ञा जो नहीं मानता है, वह मूर्ख घोर नरक को जाता है और शूकर की योनि को प्राप्त करता है। गुरु की आज्ञा न माननेवालों का सारा धर्म, आचार-विचार, दीक्षा, तपस्या, पुण्य, यश आदि सब व्यर्थ हो जाता है।

गुरु की आज्ञा न मानने, उनकी निन्दा करने और उनको अप्रिय बात करनेवाले तथा जो गुरु से विद्रोह करता है, उसका साथ कभी न करना चाहिये। जो गुरु के धन की इच्छा रखता है और जो गुरु-पत्नी में आसक्त रहता है, वह तिर्यग् योनि को प्राप्त करता है और राक्षस उसका भक्षण करते हैं। ऐसे पापी शिष्य के लिये कोई प्रायश्चित्त भी नहीं है। अर्थात् इस प्रकार के दोष अत्यन्त निषिद्ध हैं। गुरु का शत्रु-वत् अपकार करनेवाला शिष्य निर्जन देश अरण्य में ब्रह्म-राक्षस होता है। गुरु के शाप से मरे हुये लोगों का उद्धार करने में सभी देवता और मुनि असमर्थ रहते हैं।

गुरु की निन्दा जो शिष्य जिस दिन सुनता है, उस दिन की उसकी पूजा को भगवती स्वीकार नहीं करतीं। जहाँ गुरु की निन्दा होती है, वहाँ कान बन्दकर तुरन्त उस स्थान से दूर चला जाय, जिससे निन्दा सुनाई न पड़े और बाद में गुरु-नाम का स्मरण करे। गुरु की निन्दा करनेवाले मनुष्य की श्री अर्थात् लक्ष्मी-धन-वैभव आदि शोभा और आयु समाप्त हो जाती है तथा वह कोटि कल्पों तक नरक में पतित होता है। जब तक चन्द्र और सूर्य हैं, तब तक उसे घोर नरक में रहना पड़ता है। यदि शिष्य गुरु को मनुष्य समझता है, तो उसे कोटि युगों में भी सिद्धि नहीं मिलती। गुरु की आज्ञा तोड़ना, गुरु के धन को चुराना या गुरु को अप्रिय बात कहना—यह सब '**गुरु-द्रोह**' कहलाता है। जो ऐसा करता है, वह पापी है। गुरु के क्रोध से शिष्य का विनाश होता है। गुरु की निन्दा करने से मृत्यु होती है और गुरु के अनिष्ट से महान् विपत्ति आती है। अतः मनुष्य चाहे जीते जी अग्नि में प्रवेश कर जाय या विष-पान कर ले या मृत्यु में पड़ जाय, किन्तु गुरु का अपराधी न बने।

गुरु की सन्तान को छोड़कर अन्य गुरु का आश्रय नहीं लेना चाहिए। गुरु की निन्दा न तो करनी चाहिये और न सुननी चाहिये। गुरु का सदैव सदाशिव-मय ध्यान करना चाहिये। गुरु के पुत्र को

गणेश के समान और पुत्री को सरस्वती-लक्ष्मी के समान तथा गुरु के कुटुम्बियों को भैरवों के गण के समान मानना चाहिए।

गुरु के सम्मान की विधि

गुरु की पूजा सदा गन्ध और पुष्प-माला से करनी चाहिए। उसी प्रकार गुरु-पत्नी की। गुरु के समान ही गुरु के पुत्रों, पुत्रियों और उनके वंशजों की भक्तिपूर्वक पूजा करनी चाहिये। पूजा का क्रम यह है कि गुरु के अभाव में अर्थात् उनके न मिलने पर गुरु-पत्नी की पूजा करे। वह भी न मिलें, तो गुरु-पुत्र की और उनके अभाव में गुरु-वधू की तथा उनके अभाव में गुरु के वंशज की पूजा करे।

पूजा-काल में, शिव-मन्दिर में, अर्चना के मध्य में यदि गुरुदेव या गुरु-पत्नी या गुरु-पुत्र का आगमन हो, तो शिष्य अन्य सभी पूजा को छोड़ दे और उन्हीं की पूजा करे। शिष्य के लिये वह दिन कोटि सूर्य-ग्रहणों व चन्द्र-ग्रहणों के समान पुण्य-दायक होता है। गुरुदेव के दर्शन मात्र से सब पापों का नाश होता है। बुद्धिमान् व्यक्ति को उसी क्षण से दानादि पुण्य कर्म करने चाहिए।

गुरु की प्रसन्नता का फल

गुरु की प्रसन्नता पाने से देवता की प्रसन्नता मिलती है और देवता की प्रसन्नता से मन्त्र की सिद्धि मिलती है। गुरु की पूजा किए बिना जो इष्ट की पूजा करता है, उसके मन्त्र का तेज स्वयं भैरव हरण कर लेते हैं। गुरु-पूजा के बिना कोटि पुण्य व्यर्थ हो जाते हैं।...गुरु द्वारा जो क्रियायें नहीं बताई गई हैं, वे सब निष्फल होती हैं। अतः दीक्षा लेकर ही जप, होम, पूजन आदि करना चाहिये।

गुरु के चरण-कमलों को प्रणाम कर और गुरु-पादुका का ध्यान कर परम तत्त्व को जान कर जो कुल-देवी के मन्त्र का जप करता है, वह सब प्रकार से कृतार्थ होता है। गुरु-देव का मन्त्र संसार-सागर से पार करता है। ब्रह्मादि देवता और मुनि-गण उसी सिद्ध मन्त्र को उपासना करते हैं। वह दरिद्रता के दुःख और सभी प्रकार के भय को नष्ट कर देता है। गुरु की सेवा, गुरु का ध्यान, गुरु की स्तुति, गुरु-मन्त्र का जप, गुरु की पूजा, गुरु की तृप्ति, गुरु की भक्ति जो मनुष्य भाग्यवश करते हैं, उन्हें मन्त्र-सिद्धि मिलती है और वे जीवन्मुक्त हो जाते हैं।

गुरु-गृह में किये कर्म, गुरु-चरणों की धूलि और गुरु-पादोदक

गुरु के घर में रह कर शिष्य जो पुण्य कर्म करता है, उसका फल अक्षय होता है। वह पुण्य किसी तीर्थ-स्थान में किए गए पुण्य से सौ गुना अधिक फल-दायक होता है।

गुरु के चरणों की धूलि जो बुद्धिमान अपने मस्तक में लगाता है, उसे कोटि तीर्थों में मिलने-वाले फल से दस गुना अधिक पुण्य मिलता है

गुरु के पादोदक (चरणोदक) को जो नित्य भक्ति-पूर्वक पीता है, उसे साढ़े तीन करोड़ तीर्थों का पुण्य प्राप्त होता है। जो बुद्धिमान तीनों सन्ध्याओं में गुरु के पादोदक को पीता है, उसका इस संसार के मोह-मार्ग में फिर जन्म नहीं होता। श्री गुरु के चरण-कमलों के पवित्र पूजा-जल में ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और सभी पितृ-देवता विद्यमान रहते हैं। जो ऐसे पादोदक को नित्य पीता है, वह धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष का स्वामी होता है।

गुरु के चरणोदक को जो अपने शिर पर धारण करता है, वह समस्त तीर्थों से मिलनेवाले पुण्य को प्राप्त करता है। जो तीनों सन्ध्याओं में गन्ध-पुष्प से गुरु की पूजा करता है, उसे किसी मन्त्र के पूजादि विधान और न्यास-जप आदि की कोई आवश्यकता नहीं है।

गुरु एवं गुरु-पुत्रादि के उच्छिष्टादि की महिमा

गुरु के बचे अन्न को जो खाता है, उसके कोटि जन्मों के पाप तुरन्त नष्ट हो जाते हैं। स्नान, पाद-प्रक्षालन और आचमन भी न करे, प्रसाद के मिलते ही उसे खा लेना चाहिये। इसमें स्थान का विचार न करे। कुलीनता, जाति-विचार, भाई-बन्धु आदि या शूद्र के छूने का विचार न करे। उसके खाने से मोक्ष ही मिलता है। गुरु के जूठे अन्न को जो अमृत समझकर ग्रहण करता है, उससे शिव भी सन्तुष्ट होते हैं।

गुरु और गुरु-पुत्र के उच्छिष्ट को अवश्य खाना चाहिये। इसमें कोई सन्देह करने से साधक का पतन होता है। भगवती का उच्छिष्ट तो ब्रह्मादि को भी दुर्लभ है। गुरु का उच्छिष्ट भगवती के उच्छिष्ट के समान ही परम पवित्र और श्रेष्ठ है। गुरु-पत्नी भी गुरु ही हैं। अतः उनका भी उच्छिष्ट उसी भाव से ग्रहण करना चाहिये। गुरु, गुरु-पत्नी या गुरु-पुत्र के छुये हुये मुट्ठी भर अन्न को जो बीस वर्ष तक नित्य खाता है, वह रोग से रहित होता है तथा शिव-स्वरूप होता है।

गुरु के उच्छिष्ट को जो अपने सभी अङ्गों में लगाता है, उसका शरीर वज्र के समान दृढ़ हो जाता है और उसे किसी भी प्रकार की हानि नहीं पहुँच सकती। गुरु के उच्छिष्ट को जो भक्ति के साथ खाता है, उसे जगद्धात्री अन्नपूर्णा सभी ऐश्वर्य प्रदान करती हैं।

यदि भ्रम-वश कोई कभी गुरु के उच्छिष्ट को नहीं खाता, तो कोटि कल्पों तक उसे मोक्ष नहीं मिलता। भगवती उस पर रुष्ट होती हैं।

गुरु के समीप क्या करे, क्या नहीं

गुरु की पादुका, गुरु के वस्त्र, आसन, बिस्तर, छत्र, वाहन, चामर-भूषणादि को देखकर गुरु के प्रति नमस्कार करे। उन्हें अपने प्रयोग में न लाये। गुरु के सिद्ध महा-पीठ में अर्थात् उनके समीप स्थान में पैर धोना, स्नान करना, तेल लगाना, दाँत साफ करना, मल-मूत्र त्याग करना, केश कटाना, सोना, स्त्री-सङ्ग करना, वीरासन से बैठना, कटु वचन बोलना, हँसना, रोना, केश खोलना, पैर फैलाना, झगड़ा करना, अङ्ग-भङ्ग करना, ताली बजाना, जुआ खेलना आदि मना है। इन दूषित कार्यों के करने से देवता का शाप मिलता है। गुरु के सामने अपनी इच्छा से बैठना नहीं चाहिये।

गुरु की आज्ञा होने पर असंस्कृत सुरा का भी पान करना चाहिए। वैसा करने से कोई प्रायश्चित्त नहीं करना पड़ता। तन्त्र के विरुद्ध भी कोई बात गुरुदेव यदि कहें, तो वह भगवान् रुद्र के वचन के समान वेद-सम्मत होती है।

गुरु के मुख से जो बात निकले, वह सभी शास्त्रों से सम्मत माननी चाहिए। गुरु का कार्य करने में स्वयं समर्थ हो, तो उसे दूसरे से न कराये। भाई-बन्धु और सेवकों के सामने भी अति भक्ति के साथ हर दशा में गुरु की आज्ञा का पालन करे। अपनी जाति, विद्या या घर का कभी अभिमान न करे।

गुरु-भक्ति की महिमा

जिस साधक की जीभ के अग्र भाग में सदा पादुका-मन्त्र रहता है, वह सहज ही धर्मार्थ-काम-मोक्ष को पा लेता है। जो देवता के साथ श्रीगुरु के श्रीचरण-कमलों का ध्यान करता है, वही मुक्ति और भुक्ति के लिये वीर साधक है। उससे बढ़कर कोई भक्त नहीं होता। विद्या के अङ्ग-मन्त्र, आसन, मुद्रा, तन्त्रादि सभी गुरु के मुख से प्राप्त होने पर ही फल देते हैं, अन्यथा नहीं। श्रीपादुका-मन्त्र, मूल-मन्त्र और अपनी पादुका को जिस किसी को कभी न बताये। भक्ति-पूर्वक अपनी सामर्थ्य के अनुसार गुरु की जो भी

सेवा करता है, उसका फल समान रूप से उसे मिलता है। धनी-निर्धन में कोई अन्तर नहीं होता। **गुरु** की भक्ति से रहित व्यक्ति चाहे सर्वस्व भी दे दे, तो उसे पुण्य नहीं मिलता, अपितु नरक ही मिलता है। **गुरु** की भक्ति से साधक देवराज इन्द्र के समान प्रतापी होता है और विना **गुरु** की भक्ति किये देवता की उपासना करनेवाला शूकर के समान निन्दित होता है। सभी शास्त्रों में वताया है कि गुरु-भक्ति से श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है।

उस धन, शक्ति, कुल और कर्मशीलता को धिक्कार है, जिससे **गुरुदेव** के प्रति भक्ति न उत्पन्न होती हो।

शिष्य के कर्तव्य

गुरु की स्त्री, सन्तान और बन्धुओं की कभी बुराई न करे और उनके द्रव्य का कभी उपयोग न करे। उनके द्वारा दी गई वस्तु का त्याग न करे। **गुरु**-द्वारा निर्दिष्ट मार्ग से अपने मन को शुद्ध करे। **गुरु** द्वारा अच्छा या बुरा जो भी कहा जाय, उसका उल्लङ्घन न करे। **गुरु** से कभी झूठ न वोले। पिता के **गुरु**-कुल को मोह-वश जो छोड़ देता है, वह घोर नरक में जाता है।

श्री**गुरु**, कुल-शास्त्रों और पूज्य-स्थानों को भक्ति-पूर्वक प्रणाम कर उनकी महिमा का गान करे। **गुरु** का नाम जप-काल को छोड़कर कभी उच्चारण न करे। सदैव उन्हें **'श्रीनाथ', 'देव', 'स्वामी'** आदि कह कर सम्बोधित करे।

गुरु की सेवा १ आत्मा से, २ अर्थ से, ३ मान-सम्मान से और ४ सद्भाव से—चार प्रकार की होती है। बुद्धि-पूर्वक सेवा कर शिष्य **गुरु** को सन्तुष्ट करे। इससे शिष्य को पग-पग पर अश्वमेध-यज्ञ का फल मिलता है। केवल **गुरु** की सेवा करने से ही भगवती की कृपा मिल जाती है और भ० शिव की भक्ति के साथ **गुरु**-सेवा करने से सभी कामनाओं की पूर्ति होती है, सभी पाप नष्ट हो जाते हैं, पुण्यों की वृद्धि होती है और सभी कार्य सिद्ध होते हैं।

गुरु के मित्र, सेवक, सेविकाओं आदि का कभी अपमान न करे। उनकी आज्ञा और वेद-शास्त्रागम आदि की निन्दा न करे। **'देशिक' (गुरु)** के आवास में शान्त-चित्त और भक्ति-पूर्वक प्रवेश करे। वाहन, पादुका, छत्र, चामर, व्यञ्जन, ताम्बूल आदि आडम्बरों को बाहर ही छोड़कर धीरे-धीरे भीतर जाय।

'देशिक'-शब्द का अर्थ यह है कि **'दे'**वता-रूप धारण करने से, **'शि'**ष्य पर अनुग्रह करने से और **'क'**रुणामय स्वरूप होने से **'देशिक'** कहा जाता है। **'देशिक'** का आवास अर्थात् **गुरु** का निवास-स्थान।

खाली हाथ कभी राजा, देवता और **गुरु** के पास न जाये। फल, पुष्प, वस्त्रादि यथा-शक्ति इन्हें समर्पित करना चाहिए।

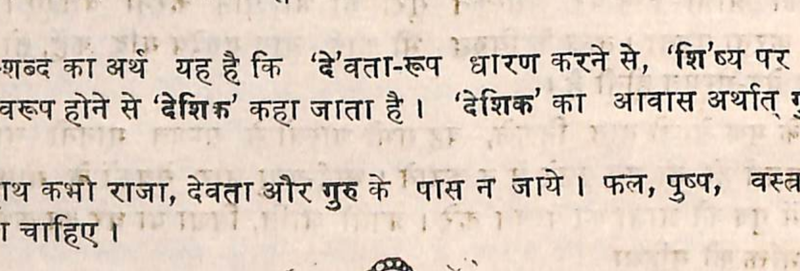

तीसरा परिच्छेद

गुरु-शिष्य-विचार से अंकुरारोपण तक के कर्म

दीक्षा के पूर्व नाड़ी-नक्षत्र का विचार

अश्विनी आदि २७ नक्षत्रों को सर्पाकार तीन नाड़ियों में लिखे। **गुरु** और शिष्य के जन्म-नक्षत्रों की नाड़ी यदि एक ही हो, तो दोनों का सम्बन्ध द्वेष-पूर्ण रहेगा। अतः सम्बन्ध स्थापित करने में इस बात को ध्यान में रखना चाहिये। जन्म-नक्षत्र ज्ञात न हों तो नामाक्षर से निम्न तालिका से नक्षत्र जान-कर नाड़ी का निर्णय कर ले। उदाहरण के लिये **गुरु** का नाम यदि '**हरिहर**' हो, तो उनका नक्षत्र होगा 'पुनर्वसु' और नाड़ी होगी 'आदि'। '**राम**' नामक शिष्य का नक्षत्र होगा 'चित्रा' और नाड़ी होगी 'मध्य'। भिन्न नाड़ी होने से इन दोनों के बीच **गुरु**-शिष्य का सम्बन्ध सद्भावपूर्ण होगा। इसी प्रकार वर-कन्या, मन्त्र, देवता आदि के सम्बन्ध में भी शुभाशुभ जाना जा सकता है।

आदि	**मध्य**	**अन्त्य**	**अन्त्य**	**मध्य**	**आदि**	**आदि**	**मध्य**	**अन्त्य**
अश्विनी	**भरणी**	**कृत्तिका**	**रोहिणी**	**मृगशिरा**	**आर्द्रा**	**पुनर्वसु**	**पुष्य**	**आश्लेषा** ↓
चुचेचोला	लीलूलेलो	अइउए	ओवावीवू	वेवोकाकी	कुघङछ	केकोहाही	हुहेहोड	डीडूडेडी
ज्येष्ठा	**अनुराधा**	**विशाखा**	**स्वाती**	**चित्रा**	**हस्त**	**उ० फा०**	**पू० फा०**	**मघा** ←
नायायीयू	ननीनूने	तीतूतेतो	रूरेरोता	पेपोरारी	पूषणठ	टेटोपापी	मोटाटीटू	ममीमूमे
→ **मूल**	**पूर्वाषाढ़ा**	**उत्तराषाढ़ा**	**श्रवण**	**धनिष्ठा**	**शतभिषा**	**पू० भा०**	**उ० भा०**	**रेवती**
ययोभाभी	भूधफढ	भेभोजजी	खीखूखेखो	गगीगूगे	गोससीसू	सेसोददी	दूथझञ	ढेढो चच

दीक्षा में 'चक्रादि-विचार' का विवरण 'हिन्दी-तन्त्रसार' पृष्ठ ७ पर देखें। कुछ मन्त्रों के सम्बन्ध में कहा है कि सिद्धादि विचार की आवश्यकता नहीं है। यह कथन प्रशंसा-परक है। रुद्रयामलादि तन्त्रों में लिखा है कि **काली, तारा आदि मन्त्र के सम्बन्ध में सिद्धादि का विचार न करे।**' किन्तु यह कथन यतियों के लिये है, गृहस्थों को विचार कर लेना चाहिये।

कुल-परम्परा से जो देवता उपासित है, या स्त्री द्वारा जिसकी उपासना हुई हो, या जिस देवता के प्रति आन्तरिक श्रद्धा हो, उसके मन्त्र-ग्रहण में विचार करने की आवश्यकता नहीं है।

दीक्षा-मण्डप के लिये भूमि-परीक्षा

दीक्षा-कर्म में '**मण्डप**' बनाया जाता है। उसके लिये भूमि की परीक्षा करनी आवश्यक है। टूटी-फूटी, काँटों से युक्त और दीमक लगी भूमि को सर्वथा छोड़ देना चाहिये। टूटी-फूटी भूमि में '**मण्डप**' बनाने से मृत्यु जैसा कष्ट मिलता है। ऊसर भूमि धन को नष्ट करती है। काँटों से युक्त भूमि सदा कष्ट देती है और विषम (ऊँची-नीची) भूमि शत्रुओं को उत्पन्न करती है। अतः ऐसी भूमियों पर '**मण्डप**' न बनाये।

ईशान कोण को ढालवाली भूमि पर मण्डप बनानेवाले को निश्चय ही 'श्री' की प्राप्ति होती है। पूर्व दिशा को ढालवाली वृद्धि करती है, उत्तर ढालवाली धन देती है। आग्नेय कोण को ढालवाली

विद्वेष, मरण और व्याधि-कारिणी, दक्षिण-ढालवाली मृत्यु-भय-दायिनी, नैऋत-ढालवाली गृह-क्षय-कारिणी, पश्चिम-ढालवाली धन-हारिणी और वायव्य कोण को ढालवाली भूमि से सदा उद्वेग रहता है।

'श्वेत' भूमि ब्राह्मणी, 'लाल' भूमि क्षत्रिया, 'पीली' भूमि वैश्या और 'काली' शूद्रा मानी गई है। ब्राह्मण में घी की, क्षत्रिया में रक्त की, वैश्या में दुग्ध की और शूद्रा में मल की गन्ध होती है। ब्राह्मणी मधुर, क्षत्रिया कसैले, वैश्या तीखे और शूद्रा कड़वे स्वादवाली होती है। ब्राह्मणी कुश से, क्षत्रिया शव से, वैश्या कुश-काश से और शूद्रा सभी प्रकार के तृणों से युक्त होती है।

सभी वर्णोंवाली वह भूमि, जिसमें जल स्थिर रहे, जो दृढ़ और चिकनी हो; गर्मी में जो ठण्डी, जाड़े में गर्म और वर्षा-काल में शीतोष्ण हो, वह समतल भूमि सब सुख देनेवाली तथा शुभ होती है।

जिस भूमि पर बछड़ों और बैलों सहित गाएँ और स्त्रियों सहित पुरुष सप्रेम विचरण करते हों; जहाँ कमल, जाती, चम्पक, पाटल, मल्लिका, नागकेशर पुष्पों जैसी सुगन्ध रहती हो; जो दही, दूध, घी, मदिरा, आसव या अन्य शुभ गन्ध से युक्त हो—वह सभी वर्णोंवाली भूमि सामान्य मानी गई है।

भूमि की परीक्षा कर गड्ढों को भरकर और जल भरकर उसे कोमल बनाकर तथा उसे पुष्प-युक्त कर ऐसी बना ले, जिससे वहाँ ग्लानि उत्पन्न न हो। जहाँ दीपक बुझे नहीं, पुष्प जल्दी मुरझायें नहीं, ऐसी श्वेत, अरुण, पीत या कृष्ण भूमि विप्रों के लिये प्रशस्त है।

भूमि का शल्योद्धार

अङ्गार, तुष (भूसी), केश, अस्थि आदि से भूमि को रहित कर लेना चाहिये। यही भूमि का **'शल्योद्धार'** कहलाता है। ऐसा किये बिना यदि कुण्ड बनाने के लिये भूमि खोदी गई और उसके अन्दर से उक्त निषिद्ध वस्तुएँ निकलीं तो कर्ता की हानि होती है। भूमि में से भस्म निकलने से भय, 'तुष' (भूसी) से दरिद्रता, 'अस्थि' आदि से अप-मृत्यु होती है।

गाय की सींग, पीला मेढक, शङ्ख, सीपी, कछुआ, शम्बूक और रत्न शुभ फल-दायक हैं।

'अहि-चक्र' से शल्योद्धार और धनोद्धार

द्रव्य (धन), शल्य (काँटा—निषिद्ध वस्तु) इन दोनों से भूमि युक्त है या इनसे शून्य (रहित) है, इस बात का ज्ञान **'अहि-चक्र'** द्वारा होता है। आठ रेखाएँ खड़ी और पाँच रेखाएँ पड़ी खींचने से २८ कोष्ठोंवाला यह चक्र बनता है। इसमें सर्पाकार शैली में नक्षत्रों के नाम लिखे जाते हैं। यथा—

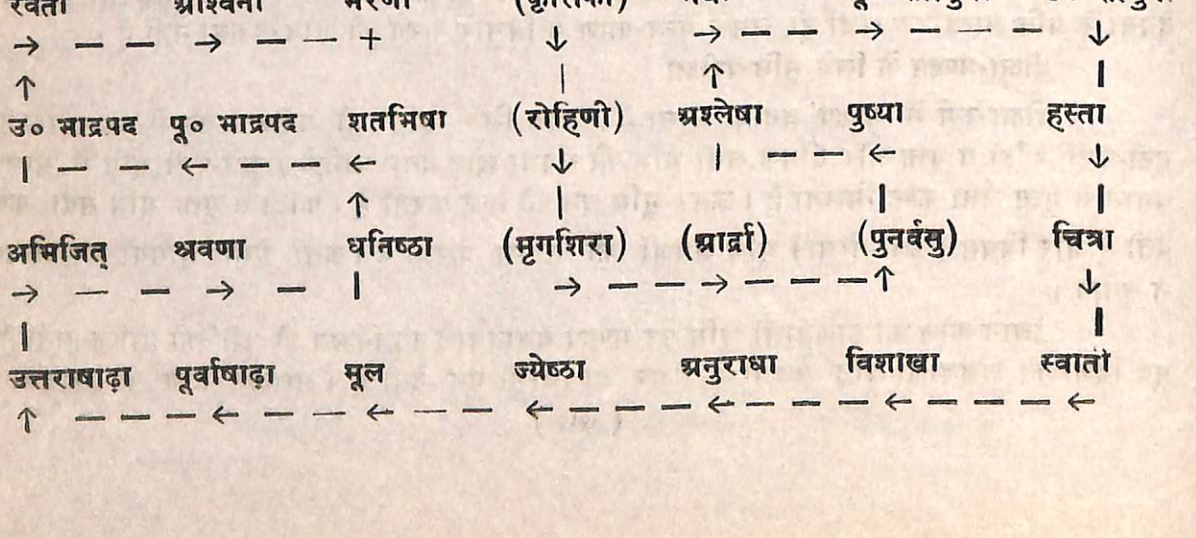

उक्त 'अहि-चक्र' में 'कृत्तिका' को द्वार पर स्थित माने, तो नक्षत्रों की स्थिति सर्पाकार दिखाई देगी, जिसका उतार-चढ़ाव इस प्रकार है—कृत्तिका→रोहिणी—मृगशिरा—आर्द्रा—पुनर्वसु—पुष्या—अश्लेषा—मघा—पू० फल्गुनी—उ० फल्गुनी—हस्ता—चित्रा—स्वाती—विशाखा—अनुराधा—ज्येष्ठा—मूल—पूर्वाषाढ़ा—उत्तराषाढ़ा—अभिजित—श्रवणा—धनिष्ठा—शतभिषा—पूर्व भाद्रपद—उ० भाद्रपद—रेवती—अश्विनी →भरणी। 'भरणी' की स्थिति सर्पाकार की पूँछ की अन्तिम नोक पर होगी।

अश्विनी से तीन : १ अश्विनी, २ भरणी, ३ कृत्तिका, आर्द्रा से पाँच : १ आर्द्रा, २ पुनर्वसु, ३ पुष्या, ४ अश्लेषा, ५ मघा, पूर्वाषाढ़ से चार : १ पूर्वाषाढ़ा, २ उत्तराषाढ़ा, ३ अभिजित, ४ श्रवण और १ रेवती, २ पूर्व-भाद्रपदा--इन दो को लेकर १४ नक्षत्र चन्द्रमा के हैं। शेष १४ नक्षत्र सूर्य के हैं।

भूमि की माप के लिये बताया है कि २ वित्ता = १ हाथ, २ हाथ = १ राज-हस्त (गज), १० राज-हस्त = १ दण्ड, ३० दण्ड = १ निवर्तन।

जिस भूमि में एक **'निवर्तन'** अर्थात् ३० दण्ड लम्बे-चौड़े क्षेत्र में **'निधि'** (धन) के गड़ होने की सम्भावना हो, यदि वह क्षेत्र किसी गृह की परिधि में हो, तो उस गृह के द्वार पर उक्त **'अहि-चक्र'** की स्थापना करे और यदि खुले भू-भाग में वह क्षेत्र हो, तो जिस दिशा में **'शेषनाग का शिर'** हो, उसी दिशा में उस भू-भाग का द्वार समझकर वहाँ **'अहि-चक्र'** स्थापित करे।

भाद्र, आश्विन, कार्तिक मासों में **'शेषनाग का सिर'** पूर्व दिशा में; मार्गशीर्ष, पौष, माघ मासों में दक्षिण में; फाल्गुन, चैत्र, वैशाख मासों में पश्चिम में और ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण मासों में उत्तर दिशा में रहता है।

अथवा कृत्तिकादि सात-सात नक्षत्र पूर्वादि दिशाओं में हैं, इस दृष्टि से जिस दिशा में चन्द्र नक्षत्र हो, उस दिशा में द्वार को कल्पना करे।

अथवा द्रव्य का स्वामी जिस दिशा से उस भू-क्षेत्र में प्रवेश करे, उसी दिशा में द्वार का अनुमान करे।

द्वार का निश्चय कर वहीं पर **'अहि-चक्र'** के मुख को रख कर चक्र को स्थापना करे। फिर तात्कालिक चन्द्र को ज्ञात करे। प्रश्न करते समय जो नक्षत्र हो, उसके उदय-काल से बीती घटियों को २७ से गुणा कर प्राप्त गुणन-फल में ६० से भाग दे। भाग-फल और शेष जो हो, उसमें अश्विनी आदि गत चन्द्र-नक्षत्र की संख्या जोड़े, तो स्पष्ट-चन्द्र-नक्षत्र मिलता है।

तात्कालिक-चन्द्र के समान ही स्पष्ट-सूर्य-नक्षत्र को ज्ञात करे अर्थात् प्रश्न करते समय जो नक्षत्र हो, उसके उदय-काल से बीती घटियों को २७ से गुणा कर भागादि क्रिया करे।

अहि-चक्र का फलादेश

१—सूर्य और चन्द्रमा दोनों यदि सूर्य के नक्षत्र में पड़ें, तो समझे कि भूमि में **'शल्य'** (निषिद्ध द्रव्य) विद्यमान है और उसे दूर करने का यत्न करे।

२—सूर्य और चन्द्रमा दोनों यदि चन्द्रमा के नक्षत्र में पड़ें, तो भूमि में **'द्रव्य'** (निधि) की सम्भावना होती है। उसे प्राप्त करने का यत्न करे।

३—यदि सूर्य और चन्द्रमा अपने-अपने नक्षत्र में पड़ें, तो भूमि में **'द्रव्य'** और **'शल्य'** दोनों विद्यमान हैं, ऐसा समझना चाहिये। द्रव्य को प्राप्त करे और शल्य को दूर करे।

४—सूर्य के नक्षत्र में यदि चन्द्रमा हो और चन्द्रमा के नक्षत्र में सूर्य हो, तो समझे कि भूमि **'शून्य'** है—उसमें **'शल्य'** या **'द्रव्य'** कुछ भी नहीं है।

५—यदि चन्द्रमा पाप-ग्रह से युक्त हो, तो भूमि में विद्यमान 'द्रव्य' की प्राप्ति नहीं होती। शुभ ग्रह की राशि में चन्द्रमा के होने पर 'द्रव्य' लाभ अवश्य होता है।

६—यदि चन्द्रमा पर सूर्य की दृष्टि हो, तो स्वर्ण; दैनिक चन्द्र की दृष्टि हो, तो मोती; मंगल की दृष्टि हो, तो तांबा; बुध की दृष्टि हो, तो पीतल; गुरु की दृष्टि हो, तो रत्न; शुक्र की दृष्टि हो, तो काँसा, शनि की दृष्टि हो, तो लोहा; राहु की दृष्टि हो, तो राँगा और केतु की दृष्टि हो, तो सीसा 'द्रव्य' की प्राप्ति होती है। एक से अधिक ग्रहों की दृष्टि होने पर, उन ग्रहों से सम्बन्धित सभी धातु-'द्रव्य' मिलते हैं। यदि किसी ग्रह की दृष्टि न हो या चन्द्रमा क्षीण-बल हो, तो भूमि को 'शून्य' समझे। यदि सभी ग्रहों की दृष्टि हो, तो महा-निधि अर्थात् बहुत 'द्रव्य' समझना चाहिये।

७—चन्द्रमा सूर्य की राशि में हो, तो 'द्रव्य' स्वर्ण-पात्र में; अपनी राशि में हो, तो रजत-पात्र में; मङ्गल की राशि में हो, तो ताम्र-पात्र में; बुध की राशि में हो, तो पीतल-पात्र में; गुरु की राशि में हो, तो प्रस्तर-पात्र में; शुक्र की राशि में हो, तो मृत्तिका-पात्र में और शनि की राशि में हो, तो लौह-पात्र में मिलेगा।

८—चन्द्रमा के जितने अंश भुक्त हों, द्रव्य-स्वामी के उतने ही हाथ नीचे भूमि में 'द्रव्य' मिलेगा। यदि चन्द्रमा नीच राशि (वृश्चिक) में हो, तो उससे दूनी गहराई तक खोदना होगा और यदि चन्द्रमा परम नीच (वृश्चिक के तीसरे अंश में) हो, तो 'द्रव्य' भूमि के नीचे जल में मिलेगा।

९—चन्द्रमा उच्च राशि में हो, तो नवमांश के क्रम से जहाँ 'द्रव्य' गड़ा प्रतीत हो, वहाँ से ऊपर ही वह प्राप्त होगा। यदि परम उच्च (वृष के तीसरे अंश में) हो, या नक्षत्र-सन्धि में हो, तो 'द्रव्य' भूमि से ऊपर ही दीवाल में स्थित समझना चाहिए।

१०—चन्द्रमा जितने अंश भोग चुके हों, उतनी ही 'द्रव्य'-संख्या होती है। षड्-वर्ग-बल के अनुसार संख्या में दस गुनी वृद्धि समझे। १ गृह, २ होरा, ३ द्रेष्काण, ४ नवांश, ५ द्वादशांश, ६ त्रिंशांश—ये ही षड्-वर्ग हैं। इनमें से किसी एक में चन्द्रमा हो, तो संख्या को १० गुना; दो वर्गों में हो, तो १०० गुना; तीन में हो, तो १००० गुना—इसी क्रम से संख्या में वृद्धि करता जाय।

११—चन्द्रमा यदि सूर्य से युक्त हो, तो 'द्रव्य' का अधिष्ठाता 'गुरु'; दैनिक चन्द्र से युक्त हो, तो 'मुग्ध ग्रह'; मङ्गल से युक्त हो, तो 'क्षेत्रपाल'; बुध से युक्त हो, तो 'मातृका'; गुरु से युक्त हो, तो 'दीपेश'; शुक्र से युक्त हो, तो 'भीषण'; शनि से युक्त हो, तो 'रुद्र'; राहु से युक्त हो, तो 'यक्ष'; केतु से युक्त हो, तो 'नाग' होता है।

अधिष्ठाता देवताओं के प्रीत्यर्थ निम्न प्रकार पूजन करे—'ग्रह' के लिए होम, 'मुग्ध'—नारायणी बलि, 'क्षेत्रपाल'—मदिरा-मांस की बलि, 'मातृका'—छाग-बलि, 'दीपेश'—दीप-पूजा, 'रुद्र'—रुद्र का जप, रुद्री पाठ आदि, 'यक्ष' —शान्ति, 'नाग'---गणेश सहित नाग-गण की पूजा।

सभी कर्मों में श्रीलक्ष्मी एवं पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश---इन पञ्चतत्त्वों की पूजा अवश्य करे। 'द्रव्य' के अधिष्ठाता की पूजा करने से गुप्त निधि अवश्य प्राप्त होती है और निधि को पानेवाला लोक-वन्दित होता है।

शल्योद्धार की अन्य विधियाँ

गृह-निर्माण आदि के आरम्भ में भूमि का 'शल्योद्धार' करने से नव-निर्मित गृह कल्याणकारी होता है। इसके लिये गृह-स्वामी के जिस अङ्ग में, निर्माण-काल में खुजली हो, उसके अनुसार 'शल्य' का निर्णय कर उसे खोद कर हटा दे। यथा—

खुजलानेवाला अङ्ग	सम्भावित 'शल्य' (निषिद्ध वस्तु)	कितना खोदे
सिर	अग्नि-दाह, रोग, धन-हानिकारक 'शल्य'	तीन हाथ
बाहु	मृत्यु-प्रदा, विदेशान्तर-कारिणी 'लौह-शृङ्खला'	दो हाथ
ऊरु	यशोहानि-कारिणी 'कांस्य-शल्य'	एक हाथ
हाथ	अग्नि-दाह, रोग, पीड़ा-कारक 'कङ्काल'	तीन हाथ
पीठ	मृत्यु, अपयश-कारिणी 'शल्य'	एक हाथ
पैर	अङ्ग-नाश, राज-दण्ड, शस्य-हानिकारिणी 'शल्य'	डेढ़ हाथ
कुक्षि	सर्प-दंश-कारिणी 'पाषाण-शल्य'	दो हाथ
जानु	अग्नि-दाह, मनस्ताप, क्लेश-कारिणी 'भस्म-शल्य'	दो हाथ

अथवा-ज्योतिष के अनुसार विचार करे। पवित्र होकर हाथ में दूर्वा, प्रवाल, अक्षत, पुष्प लेकर ज्योतिषी के पास जाय और विनम्रतापूर्वक 'शल्य' के विषय में पूछे। प्रश्न-कर्त्ता ब्राह्मण **'पुष्प'** का, क्षत्रिय **'नदी'** का, वैश्य **'देवता'** का और शूद्र **'फल'** का नाम ले। ज्योतिषी भूमि को अभिमन्त्रित करे—

ॐ लं धारिणी भूत्यै नमः स्वाहा

फिर भूमि के सदन (गृह) क्षेत्र को नौ भागों में बाँट कर क्रमशः निम्न नौ वर्णों को लिखें—

व - क - च - त - ए - ह - श - प - य

प्रश्न-कर्ता द्वारा कहे पुष्पादि नामों के आदि अक्षर से **'शल्य'** का निर्णय करे। यथा—

व—पूर्व दिशा में नरास्थि (मनुष्य की हड्डी)—नरक-प्रद। **क**—आग्नेय कोण में सर्प की हड्डी—मृत्यु-प्रद। **च**—नैऋत्य कोण में प्लवङ्गास्थि (वानर की हड्डी)—विनाश-कारक। **त**—दक्षिण दिशा में श्वान (कुत्ते) अस्थि—भय-दायक। **ए**—पश्चिम कोण में अस्थि-शिशु—मृत्यु और प्रवास-प्रद। **ह**—वायव्य कोण में नर-रूप—दारिद्रच, इष्ट-क्षय-कारक। **श**—उत्तर दिशा में विप्रास्थि—धन-नाशक। **प**—ईशान कोण में ऋक्षास्थि—कुल-नाश, गोधनादि-हानिकारक। **य**—मध्य भाग में भस्म, कपाल, काला लोहा – वंश-नाशक। यत्न-पूर्वक निर्दिष्ट निषिद्ध वस्तु (शल्य) को डेढ़ हाथ गहराई तक खोदकर बाहर निकाल दे।एक पुरुष के बराबर गहराई में यदि'शल्य' होता है, तो उसका दोष नहीं होता।

मण्डपादि की दिशा का ज्ञान

दिशा का ज्ञान कर मण्डपादि का निर्माण करना चाहिए। दिशा जाने बिना मनमाने ढंग से कार्य करने पर हानि होती है। जहाँ दिशा-ज्ञान होने में कठिनाई जान पड़े, वहाँ 'शंकु' की स्थापना कर दिशा जान लेनी चाहिये। बारह अंगुल लम्बी खैर या यज्ञ-काष्ठ की लकड़ी, जिसका मूल भाग दो अंगुल मोटा और अगला भाग सुई के समान नुकीला हो, उसे 'शंकु' कहते हैं। भूमि को समतल कर उसमें एक हाथ लम्बा वृत्त बनाए। उसके मध्य विन्दु में उक्त 'शंकु' को गाड़े। गाड़ते समय 'शंकु' को स्थिर कर लोहे के हथौड़े से क्रमशः आठ चोटें उस पर इस प्रकार करे कि हथौड़ा हाथ से गिरने न पाये, अन्यथा गाड़ने-वाले को बड़ा दुःख-दायी होता है। इस 'शंकु' को छाया द्वारा पूर्वादि दिशाओं का ज्ञान करे।

मण्डप का निर्माण

पहले पुण्याहवाचन करे। दीक्षा के लिये सुन्दर, मनोहर मण्डप बनाए। मण्डप-भूमि में ५, ७ या ९ हाथ के अन्तर पर १२ खम्भे चारों ओर और ४ मध्य में कुल १६ खम्भे स्थापित करे। बाहर के १२

खम्भे ५ हाथ ऊँचे और भीतर के ४ खम्भे ८ हाथ ऊँचे हों। इन खम्भों का ५ वाँ भाग भूमि के भीतर रखे। नारियल, बाँस के पत्तों से उन्हें आच्छादित करे। इस प्रकार बने मण्डप को विविध प्रकार के रंगों से सजाए। खम्भों और दीवालों को पुष्प-मालाओं, झण्डियों, वस्त्रों आदि से अलंकृत करे। दिशाओं में लोकपालों के वर्णों की पताकाएँ लगाए। आठ दिशाओं में आठ कुम्भ रखे।

मण्डप के पूर्वादि चार द्वारों पर ४ तोरण क्षीर-वृक्षों के बनाये—१ पूर्व में न्यग्रोध (वट अर्थात् बरगद) का, २ दक्षिण में उडम्बर (गूलर) का, ३ पश्चिम में अश्वत्थ (पीपल) का और ४ उत्तर में प्लक्ष (पाकड़) का। एक मत के अनुसार पूर्व में पाकड़ का और उत्तर में बरगद का तोरण रखे। यज्ञ-मण्डप में तोरण-रूप में देवता विघ्नों का नाश करते हैं और यज्ञ की रक्षा करते हैं।

अंकुरार्पण आदि

दीक्षा संस्कार आदि सभी मङ्गलमय अनुष्ठानों के पाँच, सात या नौ दिन पूर्व 'पालिका' और 'शरावों' (मिट्टी के पात्रों) में शालि (धान, चावल), श्यामाक (सावां), आढ़की (अरहर), तिल, सरसों, मूँग, उड़द, आदि के बीज, जिनके अंकुर निकल सकते हैं, रात्रि में बोये जाते हैं क्योंकि बीजों के स्वामी **'सोम'** (चन्द्र) हैं। बीजों को धोकर मूल-मन्त्र से बोना चाहिए। प्रत्येक बीज में देव-पूजा का विधान है। यथा--प्रियंगु में स्कन्द की, निष्पावा (बोडा) में वायु की, कुलथी में अग्नि की, अरहर में निर्ऋति की, मूँग में सोम की, तिल में वैवस्वत की, चावल में प्रजापति की, सरसों में अनन्त की और उड़द में वरुण की। सोम की पूजा नित्य की जाती है। उक्त 'शरावों' को मिट्टी, बालू, गोबर आदि से और **'वं'** बीज का उच्चारण कर सुगन्धित जल से भरे तथा उन्हें पीले, लाल, श्वेत, कृष्ण आदि रंगों से रँगे।

सब प्रकार के अभ्युदय को प्राप्त करने के लिए अंकुरार्पण के पूर्व दिन में नान्दीमुख श्राद्ध कर स्वस्तिवाचन किया जाता है। फिर अगले दिन सङ्कल्पकर शुभ **'अंकुरार्पण'** कर्म करना चाहिए।

प्रतिदिन बोए हुए बीजों पर निम्न मन्त्र से हल्दी-चूर्ण-मिश्रित जल छिड़के—**'त्रि-पञ्चकाय सर्वाय शङ्कराय शिवाय च, सर्व-लोक-प्रधानाय शाश्वताय नमो नमः।'**

बीजों को अंकुरित होते हुए किसी अन्य व्यक्ति को न देखने देना चाहिये। शिष्य भी आचार्य की अनुमति से ही उन्हें देख सकता है। अंकुर-पात्रों को वस्त्र से ढँककर छिपा देना चाहिए।

अनुष्ठान के पूर्व के उक्त सात दिनों में क्रमशः १ भूत, २ पितृ, ३ यक्ष, ४ नाग, ५ ब्रह्मा, ६ शिव और ७ विष्णु--इन सात देवों का गन्ध-पुष्प-चन्दनादि से पूजन कर रात्रि में उन्हें बलि दी जाती है—

१ भूतों के लिये---लावा, तिल, हल्दी, दही, सत्तू। २ पितरों के लिए---चावल, तिल। ३ यक्षों के लिए करम्भ (दधि-युक्त सत्तू) और लावा। ४ नागों के लिए---नारिकेल-जल से युक्त सत्तू, पिष्टक। ५ ब्रह्मा के लिए---कमल पुष्प, दूर्वा और अक्षत (समूचा चावल) या यव (जौ)। ६ शिव के लिए---पूए के साथ अन्न। ७ विष्णु के लिए---दुग्ध, दधि, खीर, गुड़ और चावल।

श्याम वर्ण के अंकुर हों, तो धन-जन की हानि होती है। तिरछे-मेढ़े अंकुर रोग की सूचना देते हैं। कुबड़े अंकुर से शत्रु-भय और दुःख, टूटे-फूटे अंकुर से देश तथा इष्ट की हानि ज्ञात होती है। काले अंकुर खराब वर्षा की और धुएँ जैसे रँगवाले अंकुर कलह की सम्भावना बताते हैं।

उक्त प्रकार के अशुभ-सूचक अंकुर हों, तो **'शान्ति होम'** करे। गुरुदेव ब्राह्मणों के साथ मूल-मन्त्र द्वारा अघोरास्त्र और अस्त्र-मन्त्रों से सौ या एक सहस्र आहुतियाँ दें।

चौथा परिच्छेद

अधिवास की विधि

'दीक्षा' का शब्दार्थ और उसकी महिमा

शिव की तदात्मता देने और तीनों मलों का क्षय करने से **'दीक्षा'** कही जाती है।...परम ज्ञान को देती है और पापों की पद्धति को क्षीण करती है, अतः **'दीक्षा'** कहलाती है।...अत्यन्त अर्थ-ज्ञान को देने और पाशों के बन्धन का क्षय करने से **'दीक्षा'** कही जाती है।...मन, कर्म, वचन द्वारा जो पाप होते हैं, उन्हें विशेषतया नष्ट करती है क्योंकि यह श्रेष्ठ ज्ञान देनेवाली है। इसी से लोक में इसे **'दीक्षा'** कहते हैं। पहले विज्ञान—विशेष ज्ञान देती है, दूसरे लय करती है, तीसरे मुक्ति देती है, इससे वह **'दीक्षा'** नाम से जानी जाती है।...जिसके ज्ञान मात्र से मनुष्य देवत्व को प्राप्त करता है, क्योंकि दिव्य ज्ञान देकर पापों का वह क्षय करती है—अतः वह **'दीक्षा'** कहलाती है।

'दीक्षा' से विहीन व्यक्ति को न सिद्धि मिलती है, न सद्-गति। अदीक्षित मर कर रौरव नरक में जाता है। अतः प्रयत्न करके गुरु से तान्त्रिक **'दीक्षा'** में दीक्षित होना चाहिये। अदीक्षित लोग जप-पूजा जो भी क्रिया करते हैं, वे फल नहीं देतीं, जैसे शिला (चट्टान) पर बोया हुआ बीज नहीं उगता।...रसेन्द्र से भिदकर जैसे लोहा सोना बन जाता है, वैसे ही **'दीक्षा'** से भिदकर आत्मा शिवत्व को प्राप्त करती है। **'दीक्षा'** रूपी अग्नि में उसके कर्म-बन्धन नष्ट हो जाते हैं और जीव शिव-रूप हो जाता है।...शूद्र की शूद्रता और विप्र की विप्रता दूर हो जाती है क्योंकि **'दीक्षा'**-संस्कार के प्रभाव से जाति-भेद नहीं रह जाता।

शिव-लिङ्ग को पत्थर समझने से जो पाप होता है, वही पाप दीक्षित व्यक्ति के पूर्व जीवन को स्मरण करने से होता है। काष्ठ, पत्थर, लौह, मृत्तिका, रत्नादि के प्रतिष्ठित लिङ्ग जैसे पूज्य माने जाते हैं, वैसे ही सभी वर्णों के लोग **'दीक्षा'** प्राप्त करने पर पूजनीय होते हैं। दीक्षित व्यक्ति के द्वारा पूजा करने मात्र से ब्रह्म से लेकर सारे भुवन पूजित होते हैं। दीक्षित व्यक्ति के लिए तप, नियम, व्रत, तीर्थ-यात्रादि की कोई आवश्यकता नहीं रहती।

'दीक्षा' से बढ़कर न कोई ज्ञान है, न कोई तप, वह सर्वश्रेष्ठ है। **'दीक्षा'** के लिये विहित वार, तिथि, नक्षत्रादि का विवरण 'हिन्दी तन्त्रसार' पृष्ठ१४में दिया है। विशेष बात यह है कि सद्-गुरु का जब दर्शन हो, वही सूर्य-पर्व का श्रेष्ठ काल है। शिष्य को बुलाकर गुरुदेव कृपा कर यदि **'दीक्षा'** दें, तो लग्नादि का कोई विचार न करे। यह निर्देश दिव्य और वीर-भाव के व्यक्तियों के लिये है।

'दीक्षा' के बिना प्राणियों को मोक्ष नहीं मिलता, ऐसा भगवान् शिव का शासन है और **'आचार्य'** के बिना **'दीक्षा'** नहीं मिलती। सैकड़ों उपासनाएँ करने पर भी **'दीक्षा'** के बिना अभीष्ट सिद्ध नहीं होता। अतः मन्त्र-सिद्धि के लिए गुरु से **'दीक्षा'** अवश्य प्राप्त करे।

दिव्य या वीर गुरु को पाकर उनसे **'दीक्षा'** लेकर बुद्धिमान् व्यक्ति को एकाग्र होकर पुरश्चरण करना चाहिये। पशु-भाववाले गुरु से दीक्षा ले, तो सभी निर्दिष्ट बातों का विचार कर लेना चाहिये।

पुस्तक में लिखे मन्त्र को जपनेवाले को सिद्धि नहीं मिलती। उसे पग-पग पर हानि उठानो पड़ती है। करोड़ों जप करने पर भी उसे सिद्धि नहीं मिलती...जैसे उपनयन के बिना द्विज अध्ययनादि षट्-कर्मों के करने के अधिकारी नहीं होते, वैसे ही दीक्षा के बिना मन्त्र-जप देवार्चनादि का अधिकारी कोई व्यक्ति नहीं होता।...अपनी इच्छानुसार, मनमाने ढँग से, या कहीं सुने हुये, या छिप कर छल-पूर्वक जाने हुये या कागज-पुस्तकादि में देखकर मन्त्र का जप करने से अनर्थ ही होता है।...अतः अपने को संस्कार-युक्त कर लेना चाहिये।

विप्र की विधिवत् 'दीक्षा' अभिषेक से पूरी होती है। गुरु से मन्त्र सुनकर दीक्षित मन्त्र की साधना करे। गुरु-मुख से जानकर करने से सभी क्रियायें भुक्ति और मुक्ति-रूपी फल देती हैं। अतः गुरु की नित्य सेवा करे। गुरु के बताये बिना सभी कार्य निष्फल होते हैं। इसलिये **'दीक्षा'**-से युक्त होकर जप, होम, पूजन करे।

दीक्षा से ज्येष्ठता की प्राप्ति

द्विज भी यदि अन्त्यज के बाद **'दीक्षा'** प्राप्त करता है, तो वह कनिष्ठ होता है। पहले **'दीक्षा'** पानेवाला अन्त्यज ही ज्येष्ठ माना जाता है और ज्येष्ठता के कारण वह पूज्य होता है, यही शास्त्र का निर्णय है।

एक मन्त्र की साधना का फल

जो जप, होम, और अर्चन आदि बहुत सी क्रियाओं द्वारा एक ही मन्त्र को सिद्ध कर लेता है, उसे अन्य मन्त्र थोड़ी ही साधना से सिद्ध हो जाते हैं। अच्छो प्रकार से एक ही मन्त्र जिसे सिद्ध होता है, उसके लिये इस संसार में कुछ भी असाध्य नहीं रहता। अनेक मन्त्र जपनेवाले व्यक्ति को हानि ही होती है।

दीक्षा के भेद

'दीक्षा' तीन प्रकार की होती हैं—१ शाक्ती, २ शाम्भवी, ३ मान्त्री।

'शाक्ती दीक्षा' द्वारा शक्ति का प्रवेश होता है। शक्ति अर्थात् कुण्डलिनी, जो पर-चिद्-रूपा है। उसके द्वारा कुलाकुल-भेद ब्रह्म-नाड़ी में होकर पर-शम्भु से मिलन होना शक्ति-प्रवेश कहलाता है। मन्त्रार्चन, आसन, ध्यान, स्थापना आदि उपासना से युक्त यह दीक्षा **'आणवी'** भी कही जाती है।

'शाम्भवी दीक्षा' में चरण-विन्यास होता है। **'चरण'** चार हैं---१ शुक्ल, २ रक्त, ३ मिश्र, ४ पर। दो चरण शिव-शक्ति-स्वरूप हैं। शुक्ल चरण सत्व-प्रधान, रक्त चरण रजः प्रधान, मिश्र चरण तमः- प्रधान और पर चरण गुणातीत निर्वाण अर्थात् साक्षात् परमानन्द-मय सदाशिव स्वरूप कहा गया है। सहस्र-दल-कमल की कर्णिका के मध्य में स्थित चन्द्र-मण्डल से निकलती अमृत-धारा से इन्हें आप्लावित होते हुए इनका चिन्तन किया जाता है। इस दीक्षा से आचार्य और शिष्य में अभेद-भाव उत्पन्न होता है। देशिक (गुरु) के अनुग्रह से शिष्य को शिवत्व प्राप्त होता है।

'मान्त्री दीक्षा' में मन्त्र का उपदेश होता है। इसमें मन्त्र-यन्त्रार्चनादि क्रियाओं से भोग और मोक्ष की प्राप्ति होती है। इसे **'क्रियावती'** दीक्षा भी कहते हैं, जिसमें कुम्भ-मण्डलादि का स्थापन होता है। मन्त्र-मार्ग से इष्ट-देवता का साक्षात्कार कर गुरु शिष्य का उद्बोधन करते हैं। यही **'मन्त्र-दीक्षा'** है। मतान्तर से **'दीक्षा'** के चार भेद हैं---१ क्रियावती, २ वर्ण-मयी, ३ कलात्मा, ४ वेध-मयी। ये सभी सर्व-सम्पत्ति-प्रदायिनी और कल्याण-कारिणी हैं। सभी दीक्षाएँ पूर्ण मुक्ति प्रदायिनी हैं।

अधिवास की विधि

गृह-प्रवेश के बाद गुरु-देव या स्वयं शिष्य सभी कर्म विधिपूर्वक करे। चन्दन, अगरु, धूपादि से पूजा-मण्डप को सुगन्धित करे। फिर वहाँ के विघ्नों को दूर करे। हाथ जोड़ कर निम्न मन्त्र पढ़े—**ॐसूर्यः सोमो यमः कालो महा-भूतानि पञ्च च। एते शुभाशुभस्येह कर्मणो नव साक्षिणः।**

तब घट (कलश) स्थापन हेतु निम्न मन्त्र से पृथ्वी को स्पर्श कर उसका शोधन करे—**ॐ भूरसि भूमिरस्यदितिरसि विश्वधा या विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री पृथिवीं यच्छ पृथिवीं दं पृथिवीं मा हिंसीः।**

निम्न मन्त्र से वहाँ शुक्ल धान्य छिटके—**ॐ धान्यमसि धिनुहि देवान् धिनुहि यज्ञं धिनुहि यज्ञ-पतिं धिनुहि मां यज्ञनम्।**

घट में नौ रत्नों ❀ को छोड़े—**ॐ प्राणो मन्त्रो दा नाम त्वा कामाय मत्वा दीर्घा ननु प्रमिति-दशानुमेषां देवो वः सविता हिरण्य-पाणिः प्रति-गृह्णात्यच्छिद्रेण शिला-चक्षुषे त्वा मही मां पयोऽसि।**

फिर धान्य-बीजों के ऊपर निम्न मन्त्र से घट स्थापित करे—**ॐ आजिघ्र कलशं मह्यात्मा विश-न्तुन्दवम्। पुनरूर्जानि वर्त्तस्व सानः। सहस्रम् धुक्षोरु-धारा पयस्वती पुनर्माविशताद् रयिः।**

इसके बाद निम्न वस्तुयें उनके आगे लिखित मन्त्रों से घट में डाले या उस पर चढ़ाए--

जल—**ॐ आप्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम-वृष्ट्यं भवा वाजस्य सङ्गथे।**

शाखा के ऊपर ताम्बूल, श्रीफल, कदली (केला)—**ॐ धन्नना गा धन्नना जिञ्जयेम धन्नना तीव्राः समदो जयेम। धनुः शत्रोरप-कामं कुणोतु धन्ननाः सर्वाः प्रदिशो जयेम।**

पुष्प, फल-सहित शालि-चूर्ण-युक्त शराव (प्याला)—**ॐ श्रोश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्या अहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनी व्याप्तमिष्टुमीशानमुं म ईशानः सर्व-लोक-महेशानः।**

क्षीरि (दूधवाले) वृक्ष की शाखा-सहित वस्त्र—**ॐ वस्त्रं च पावनं श्वेतं बहु-तन्तु-विनिर्मितम्। मया निवेदितं भक्त्या वस्त्रं च प्रति-गृह्यताम्।**

घट को पृष्ठ ६ पर कथित ५० औषधियों और क्षीर-वृक्षों की छाल के क्वाथ से पूर्ण करे तथा इन्द्रवल्ली लता से उसे लपेटे और उसमें सिन्दूर लगाये। तब उसे निम्न मन्त्र से इस प्रकार स्थिर करे कि दीक्षा-विधि के पूर्ण होने तक वह ठीक से रखा रहे—**ॐ स्थिरो भव विडङ्ग आशुर्भव वाय्वर्वन् पृथुर्भव सुषदस्थमग्ने पुरीशराहनः।**

फिर हाथ जोड़ कर निम्न मन्त्रों से प्रार्थना और स्वस्तिवाचन करे—**ॐ गुरुभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमो विरूपेभ्यो विश्व-रूपेभ्यश्च वो नमः। व्रातेभ्यो व्रात-पतिभ्यश्च नमः। नमो गृह्येभ्यो गृह्य-पतिभ्यश्च वो नमः।**

ॐ स्वस्ति न इन्द्रो वृद्ध-श्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्व-वेदाः स्वस्ति नस्तार्क्ष्योऽरिष्ट-नेमिः। स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु।

तदनन्तर 'अस्त्राय फट्' से भूमि के विघ्नों को और 'दिव्य दृष्टि' (बिना पलक मारे एकटक देखते हुए) से चारों दिशाओं को देखकर दिव्य विघ्नों को दूर करे।

❀ १ मुक्ता (मोती), २ माणिक्य (लाल रंग का रत्न), ३ वैदूर्य, ४ गोमेद, ५ वज्र (हीरा), ६ विद्रुम (मूँगा), ७ पुष्प (पुखराज), ८ मरकत, ९ नील (नीलम)।

फिर भूत-प्रेत-पिशाच हेतु यव (जौ) से युक्त माष भक्त (उड़द-चावल) की वलि छाग के कर्ण-रक्त, दुग्ध और मिष्ठान्न के साथ निम्न मन्त्र से प्रदान करे---ॐ **भूताः प्रेताः पिशाचाश्च पाताल-भूतले स्थिताः। पर्वताग्रे तथा वृक्षे गृह-क्षेत्रादिषु स्थिताः। तुष्टा भवन्तु ते सर्वे मम गृह्णन्त्विमं बलिम्।**

तीर्थ-यात्रा में, प्रासाद (भवन) बनवाने में, धर्मानुष्ठान करने में, व्रत-यज्ञ के प्रारम्भ में विघ्न हुआ ही करते हैं। अतः लाल पुष्पों, बलि-पशु के रक्त एवं मत्स्य-मांस, दही, मोदक आदि की उक्त प्रकार बलि देकर विघ्नों का निवारण करना चाहिये। इसके सिवा अपने शरीर में भी विघ्न रहते हैं, जिनमें से कुछ '**निवर्तक**' होते हैं और कुछ '**प्रवर्तक**'। आलस्य, शोक, मोह, ज्वर, व्याधि, वासना, धन-लालसा, पत्नी से कलह, दुर्भिक्ष, ग्रह-सङ्कट आदि मानसिक विघ्न होते हैं, जिनसे धर्म-कर्म में प्रवृत्ति नहीं हो पाती। अतः बुद्धि द्वारा वह्नि-वीज '**रं**' से अपने चारों ओर अग्नि की चारदीवारी की भावना कर अपने को सुरक्षित करे और '**वं**' वीज का उच्चारण करते हुए नीचे से ऊपर को तीन वार ताली बजाकर गुरुओं को प्रणाम करे---'**ॐ गुरुभ्यो नमः।**' इत्यादि

गुरु, परम गुरु, परापर गुरु, परमेष्ठि गुरु को विधिपूर्वक प्रणाम कर गुरु-पादुका का जप करे। अपने दाएँ गणेश को और सामने इष्ट-देवता को प्रणाम कर पूर्वोक्त घट में निम्न मन्त्र से गणेश का अञ्जलि-मुद्रा से आवाहन करे---**आवाहयाम्यहं देवं गणेशं शिव-नन्दनम्। व्याघ्र-चर्माम्बर-धरं व्याल-यज्ञोपवीतिनम्। गण-कोटचा परिवृतं देवं मोदक-भोजनम्। अविघ्नेशं महा-कायं सर्व-लोकैक-पूजितम्। बलिनं सर्व-शान्त्यर्थं रौद्रमावाहयाम्यहम्। एह्येहि भगवन्! देव! सर्व-विघ्न-विनाशक! इमां पूजां गृहाण त्वं सर्वं मे सफलं कुरु।**

तदनन्तर सिन्दूर, लाल पुष्पादि से गणेश का पूजन कर स्वागतादि पूर्वक आसन देकर निम्न मन्त्र से '**पाद्य**' प्रदान करे---ॐ **पाद्यं सुवासितं देव! सर्व-भूत-सुखावहम्। दूर-यात्राश्रम-हरं पाद्यं तत् प्रति-गृह्यताम्। पाद्यं नमः पाद-युगे स्वाहा।**

इसी प्रकार शिर पर अर्घ्य देकर मन्त्र के अन्त में '**स्वधा**' लगाकर '**मधुपर्क**' (दही, मधु और घृत) '**मया निवेदितं भक्त्या मधुपर्कं गृहाण मे**' से देकर पुनः '**आचमनीय**' दे और 'स्नानीयं नमः' कहकर पुनः '**गन्ध**' आदि देकर '**वस्त्र**' और '**यज्ञोपवीत**' मन्त्र के अन्त में '**नमः**' लगाकर प्रदान करे। '**स्वधा**' अन्तवाले मन्त्र से '**नैवेद्य**' देकर विधिपूर्वक '**धूप, दीप**' से पूजन करे। यज्ञोपवीत आदि देने के मन्त्र निम्न प्रकार हैं---

यज्ञोपवीत---ॐ **यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं वृहस्पते र्यत् सहजं पुरस्तात्।**
आयुष्यमग्र्यं प्रति-मुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः।

आभूषण---ॐ **नाना-रत्नैश्च घटितं विश्व-कर्मादि-निर्मितम्। सर्वाङ्ग-शोभाभरणं गृहाण फल-हेतवे।**

गन्ध—**मूलं गन्धं नमः।**

पुष्प—**मूलं पुष्पाणि वौषट्।**

नैवेद्य—**मूलं नैवेद्य निवेदयामि नमः।**

धूप---ॐ **वनस्पति-रसोत्पन्नो गन्धाढ्यो गन्ध उत्तमः। आघ्रेयः सर्व-देवानां धूपोऽयं प्रति-गृह्यताम्।**

दीप---ॐ **सुप्रकाशो महा-दीपः सर्वतस्तिमिरापहः। सबाह्याभ्यन्तरं ज्योतिर्दीपोऽयं प्रति-गृह्यताम्।**

'**अर्घ्य**' का जल '**शङ्ख**' में रखे। उसमें छः वस्तुयें डाले---१ कुश, २ तिल, ३ सरसों, ४ विष्णु-क्रान्ता, ५ यव (जौ) और ६ दूर्वा। '**ॐ काण्डात्०**' मन्त्र से '**अर्घ्य**' देना चाहिये।

'नमः स्वाहा' से युक्त मन्त्र से पाद्य और आचमनीय देने से ब्रह्मत्व की प्राप्ति होती है। सर्वत्र **'ॐ मूलं नमः'** का उच्चारण करे। 'मूलं' = मूलमन्त्र।

गणेश की पूजा करने के बाद विधिपूर्वक घट में सूर्य, विष्णु, शिव और शक्ति की अर्चना करे। इससे सभी समृद्धियाँ मिलती हैं।

तदनन्तर **'ॐ फट्'** कहकर **'कूर्च-मुष्टि'** (तिल, कुश, सरसों) को फेंक कर **'ॐ अस्त्राय फट्'** से सात बार अभिमन्त्रित विघ्न-विनाशक **'विकिर'** (लाज, चन्दन, श्वेत सरसों, भस्म और दूर्वा) को फेंके। तब गुरुदेव मूल-मन्त्र का स्मरण कर पुष्पाञ्जलि में नासिकाग्र से निकल कर आई हुई इष्ट-देवता की मूर्ति का ध्यान करें और मस्तक तक उस अञ्जलि को उठाकर उसके पुष्पों को घट के ऊपर स्थापित करें। फिर घट में इष्ट-देवता का आवाहन, संस्थापन, सन्निधान, सन्निरोध, सम्मुखीकरण, अवगुण्ठन, अमृतीकरण और परमीकरण विधिपूर्वक क्रमशः मुद्रा दिखाते हुये करें। तब आसनादि उपचारों की कल्पनाकर अङ्ग-भूत आवरण-देवताओं का क्रमशः पूजन करे। यह पूजन 'हिन्दी तन्त्रसार' में द्रष्टव्य है।

तब आठो दिशाओं में क्वाथ-जल से भरे हुये आठ घट पूर्वोक्त-मन्त्रों से स्थापित करे। उनमें ब्राह्मी आदि आठ मातृकाओं का ध्यानावाहन पूर्वक पूजन करे। फिर दस दिशाओं में इन्द्रादि लोकपालों और अष्ट-गजों---१ ऐरावत, २ पुण्डरीक, ३ वामन, ४ कुमुद, ५ अञ्जन, ६ पुष्प-दन्त, ७ सार्वभौम, ८ सुप्रतीक का पूजन करे। तब लोकपालों के वज्रादि अस्त्रों का पूजन कर इष्ट-देवता को धूप-दीप-नैवेद्य अर्पित करे। मातृकाओं के ध्यान निम्न प्रकार करे---

१ ब्राह्मी---**दण्डं कमण्डलु-करमक्ष-सूत्राभयं तथा। बिभ्रती कनकच्छायां ब्राह्मी कृष्णाजिनोज्ज्वला ॥**
२ महेश्वरी---**शूलं कपालं परशुं नृणां पोतं मनोहरम्। वहन्ती हेम-सङ्काशा ध्येया माहेश्वरी शुभा ॥**
३ कौमारी---**अंकुशं दण्ड-खट्वाङ्गं पाशं च दधती करैः। ध्येया बन्धूक-सङ्काशा कौमारी शर्म-दायिनी ॥**
४ वैष्णवी---**चक्रं घण्टां गदां खड्गं बिभ्रती सुमनोहरा। तमाल-श्यामला ध्येया वैष्णवी शर्म-दायिनी ॥**
५ वाराही---**मुषलं कर-वालं च खेटकं दधती हलम्। करैश्चतुर्भिर्वाराही ध्येया काल-घनच्छविः ॥**
६ इन्द्राणी---**अंकुशं तोमरं विद्युत् कुलिशं बिभ्रती करैः। इन्द्रनील-निभेन्द्राणी ध्येया सर्व-समृद्धिदा ॥**
७ चामुण्डा---**शूलं कपालं नृ-शिरः कपालं दधती करैः। मुण्ड-स्रङ्-मण्डिता ध्येया चामुण्डा रक्त-विग्रहा ॥**
८ महा-लक्ष्मी---**अक्ष-स्रजं वीजपूरं कपालं पङ्कजं करैः। वहन्ती हेम-सङ्काशा महा-लक्ष्मी हरि-प्रिया ॥**

अब वेदी के दाईं ओर मण्डल बनाकर अंकुर-पात्रों को स्थापित करे। फिर दाईं ओर ही स्थण्डिल बनाकर उसमें अग्नि रखकर उसका संस्कार कर वैश्वदेव-कर्म आरम्भ करे। यथा-विधि अग्नि में देवता का गन्धादि से पूजन कर प्रणव-युक्त व्याहृतियों **ॐ भूः स्वाहा, ॐ भुवः स्वाहा, ॐ स्वः स्वाहा** से हवन कर मूल-मन्त्र द्वारा पायस-घृत की २५ आहुतियाँ दे। फिर पुनः व्याहृतियों से आहुति देकर गन्ध-पुष्पादि से पूजनकर पीठ-मूर्ति में उसका नियोजन कर अग्नि का विसर्जन करे। अवशिष्ट पायस की बलि चन्दन, पुष्पाक्षत से युक्त कर पार्श्व-देवों के लिये दे। नैवेद्य को वहाँ से उठाकर उस स्थल का मार्जन करे। पुनः घट में इष्ट-देवता का दशोपचारों से पूजन कर १ दर्पण, २ व्यञ्जन (पंखा), ३ छत्र, ४ चामर, ५ ताम्बूल अर्पित कर मूलमन्त्र का १००८ बार जप करे।

तदनन्तर जप अर्पित कर **'मङ्गल'**-कर्म करे अर्थात् द्विज-स्त्रियों और ब्राह्मणों से आशीर्वाद प्राप्त करे। **'जय ब्रह्म'** शब्दों से ब्राह्मणों को और बन्धुवर्ग को सन्तुष्ट करे। फिर **'अधिवास'** की क्रिया करे अर्थात् निम्न मन्त्रों से निर्दिष्ट द्रव्य शिष्य के मस्तक से स्पर्श कराये—

गन्ध—ॐ गन्ध-द्वारां दुराधर्षां नित्य-पुष्टां करीषिणीम् । ईश्वरीं सर्व-भूतानां त्वामिहोपह्वये श्रियम् ।

शिला—ॐ प्रपर्वतस्य वृषभस्य पुष्टां वावश्चरन्ती शशि च इयानाता आववृत्तमदधागुदक्ता । अहि व्रध्नमनुरीषमणा विष्णोर्विक्रमणमसि विष्णोर्विक्रान्तमसि विष्णोः क्रान्तमसि वैष्णवे त्वा ।

दूर्वा—ॐ काण्डात् काण्डात् प्ररोहन्ती पुरुषं पुरुषः पवि । एतान् दूर्वे प्रतनु सहस्रेण शतेन च ।

फूल—ॐ श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्या अहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनी व्याप्तमिष्टुमीशानमुं म ईशानः सर्व-लोक-महेशानः ।

फल—ॐ या फलिनीर्याऽअफलाऽपुष्पायाश्च पुष्पिणोः वृहस्पति-प्रसूतास्ता नो मुञ्चं त्व ँ हंसः ।

ध्यान—ॐ दधिक्रान्वोऽत्यकार्षं जिष्णोरश्वस्य वाजि वः । सुरभीनो मुखाकरत् प्रणतानंसितायत् ।

अधिवास—ॐ घृतवती भुवनानामभिश्रियोर्वी पृथ्वी-मधु-दुघे सुपेशसा । द्यावा-पृथिवी वरुणस्य धर्मणा विष्कभीते अजरे भूरि-रेतसा ।

स्वस्तिक—ॐ स्वस्ति न इन्द्रो वृद्ध-श्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः स्वस्ति नस्ताक्ष्योऽरिष्ट-नेमिः । स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ।

सिन्दूर—ॐ सिन्धोरिव प्राध्वने सुघनासो वात-प्रमीय-पतन्ती जिह्वा घृतस्य धारा अरुषो न वाजी-काष्ठाभिन्दन्नूर्मिभिः पिन्नमानः ।

शङ्ख का स्पर्शन-मन्त्र—ॐ शङ्ख ! त्वं शङ्ख-पुण्यानां मङ्गलानां च मङ्गलम् । विष्णुना विधृता नित्यं मम शान्ति-प्रदो भव ।

कज्जल—ॐ समिधोऽञ्जनं कृदरं मतीनां घृतमग्ने मधु-मत् पिन्नमानः । वाजी-वहन् वाजिनं जात-वेदा देवानां वाक्षि-प्रियमादधन्त ।

रोचना—ॐ युञ्जन्ति व्रध्न-मरुषं चरन्तं परि-तस्थुषः । रोचन्ते रोचना दिवि ।

स्पर्शन—ॐ अन्नपते अन्नस्य ने धेह्यन्नमोरस्य शुष्मिणः । प्रदातारं तार्ष ऊर्जं नो धेहि द्विपदेशं चतुष्पदे । विश्व-कर्मणे स्वाहा ।

काञ्चन (स्वर्ण)—ॐ हिरण्य-गर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् । स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम वा ।

रजत—ॐ रूपेण वै रूप-मर्त्यानां पुथोमा विश्व-वेदा विभजतुमुत्तमस्य पथा वेदश्चन्द्र-दक्षिणा-पश्यव्यन्त-रीक्षं यत् सुषदुच्चैः ।

ताम्र—ॐ असौ यस्ताम्रोऽरुण उत बभ्रुः सुमङ्गलः । ये चैनं रुद्रा अभितो दिक्षु श्रिताः । सहस्रशो बै यां हेलषीमहे ।

सरसों—ॐ रक्षोहनो बल्-गहनः प्रोक्षयामि, वैष्णवान् रक्षोहनो बल्-गहनो बल, यामि-वैष्णवान् रक्षो-हनो बल्-गहनो वस्तृणामि, वैष्णवान् रक्षोहनो बल्-गहन उप-दधामि, वैष्णवं रक्षोहनोबल्-गहनः पर्यमामि, वैष्णवीन् वैष्णवमसि वैष्णवाः स्थ ।

दर्पण—ॐ आकृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च । हिरण्मयेन सविता रथेन देवो याति भुवनानि पश्यन् ।

दीप—ॐ मनो-ज्योतिर्जुषतामाज्यस्य वृहस्पतिर्यज्ञमिमं तनोतु । अरिष्टं यज्ञमिमं दधातु विश्वे-देवाः स इह मादयन्तामोम्प्रतिष्ठ ।

वन्दना—ॐ प्रतिपदसि प्रति-पदे त्वा अनु-पदसि अनु-पदे त्वा सम्पदसि सम्पदे त्वा तेजोऽसि तेजसे त्वा तेजोमयि धेहि । ॐ प्रशस्त-मात्रमसि भूत-पात्रे शिरसार्थं मम कुरु सर्वं देवी-चरण-युगलं वन्दनीयम् ।

इसके बाद ताम्र आदि के किसी नवीन पात्र को 'फट्' मन्त्र से धोकर उसमें मूल-मन्त्र से अभिमन्त्रित दस प्रसृति चावल रखे। उस पर 'हुं' मन्त्र का जप कर पूर्व-मुख हो 'चरु' को पकाये। स्रुवा से उसमें घृत डाले। फिर मूल-मन्त्र युक्त 'हूं' मन्त्र से उसे उतार कर ठण्डा करे। 'फट्'-मन्त्र से अभिमन्त्रित मण्डल पर बिछाये कुशों पर उस 'चरु' के तीन भाग करके रखे। एक भाग देवता को अर्पित करे, दूसरा भाग अग्नि में हवन करे और तीसरे भाग को 'देशिक' (आचार्य, गुरु) शिष्य के साथ ग्रहण करे। भोजनोपरान्त आचमन कर सकलीकरण (अङ्ग-न्यास) कर क्षीरि-वृक्ष की १२ अंगुल लम्बी दातून शिष्य को दे। शिष्य उस दातून से दाँतों को शुद्ध कर, धोकर फेंक दे। शिष्य के आचमन कर लेने पर शिखा-बन्धन से रक्षा कर वेदी के पास दर्भासन पर गुरु-शिष्य रात्रि में शयन करें। यही **'अधिवास'**-विधि है।

अंकुरार्पण का प्रयोग

पृष्ठ ८२ पर **'अंकुरार्पण'** का वर्णन किया गया है। उसकी प्रयोग-विधि यह है कि दीक्षा-दिन के ५,७ या ९ दिन पूर्व पूजा-मण्डप के भीतर पाँच हाथ के बराबर ५ सूत्र पूर्व से पश्चिम की ओर गिराये। फिर दक्षिण से उत्तर को ओर बारह अंगुल के अन्तर से ११ सूत्र गिराये। इस प्रकार ४० कोष्ठों का मण्डल बनेगा। पहले बाहर की ४ वीथियों का मार्जन करे—(१) पूर्व के ४ कोष्ठ, (२) दक्षिण के ८ कोष्ठ, (३) पश्चिम के ४ कोष्ठ, (४) उत्तर के ८ कोष्ठ। फिर भीतर के चतुष्क के पूर्व और पश्चिम पार्श्वों में २-२ कोष्ठ को २ वीथियाँ मार्जित करे। इस प्रकार 'मण्डल' में ४ कोष्ठों के तीन कोष्ठ बचेंगे। इनके १२ स्थानों को श्वेत आदि रंग की मिट्टी से रञ्जित करे—वायु-स्थान : श्वेत, आग्नेय : पीत, नैर्ऋत : अरुण, ईशान : कृष्ण। श्याम वर्ण से मार्जित वीथियों की पूर्ति करे।

पश्चिमादि-क्रम से अग्नि-कोण से प्रारम्भ कर ईशान-कोण तक के प्रत्येक चतुष्कोष्ठ पर पञ्च-मुखी 'पालिका' और 'शराव' को स्थापित करे, जो शुष्क गोमय (गोबर) के चूर्णादि से पूर्ण और त्रिगुण-सूत्र से वेष्ठित हो। पश्चिम दिशा के पालिका-चतुष्क में **'विष्णु'** का, मध्य के पालिका-चतुष्क में **'ब्रह्मा'** का और पूर्व के पालिका-चतुष्क में 'रुद्र' का ध्यानावाहन कर उनका पूजन करे। विष्णु-सम्बन्धी 'शराव' में **'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'** इस मन्त्र से दूध और जल द्वारा प्रक्षालित वीजों पर उक्त मन्त्र का १०८ बार जप करे। इसी प्रकार स्कन्द, वायु, वह्नि, निर्ऋति, सोम, वैवस्वत, प्रजापति, अनन्त, सूर्य और वरुण का यथोक्त वीजों में पूजन कर वीजों को मिश्रित करे। फिर उनमें 'सोम' का पूजन कर पूर्व या उत्तर को मुख कर निम्न मन्त्र से वोजों को उक्त पात्रों में बो दे—

ॐ त्रि-पञ्चकाय सर्वाय शङ्कराय च, सर्व-लोक-प्रधानाय शाश्वताय नमो नमः।

तदनन्तर हल्दी के चूर्ण और गन्ध से मिश्रित जल द्वारा वीजों को सींचे। इस प्रकार जल से सींचने का कार्य और 'सोम' का पूजन **'अधिवास'** के दिन तक प्रत्येक दिन करता रहे। उक्त पात्रों को नये वस्त्रों से आच्छादित करके रखे और प्रत्येक रात्रि में निर्दिष्ट देवताओं को बलि प्रदान करता जाय। यथा—प्रथम रात्रि में **'ॐ भूतेभ्यो नमः'** से गन्ध-पुष्प से पूजन कर निर्दिष्ट बलि दे। बलि देने के बाद स्थान का मार्जन करे। द्वितीय रात्रि में **'ॐ पितृभ्यो नमः'** से, तृतीय रात्रि में **'ॐ यक्षेभ्यो नमः'** से, चतुर्थ रात्रि में **'ॐ नागेभ्यो नमः'** से, पञ्चम रात्रि में **'ॐ ब्रह्मणे नमः'** से, षष्ठ रात्रि में **'ॐ शिवाय नमः'** से, सप्तम रात्रि में **'ॐ विष्णवे नमः'** से पूजन कर बलि दे। अन्त में पायसादि से लोकपालों को बलि देकर ईशान-पूर्व के मध्य में **'ब्रह्मा'** को, नैर्ऋत और पश्चिम के मध्य में **'अनन्त'** को बलि प्रदान करे।

पाँचवाँ परिच्छेद

'दीक्षा' का वर्णन

'दीक्षा' का विषय

गुरु को निमन्त्रित कर साधक अगले दिन वस्त्रालङ्कार आदि और गायों की व्यवस्था कर विधि-पूर्वक नदी आदि में स्नान कर साधक सङ्कल्प करे। तान्त्रिक कर्मों में सङ्कल्पादि में सौर-मास का उल्लेख करे। 'सौर'-मास में ही 'दीक्षा' शुभ होती है, 'चान्द्र' या 'तारक' मास में नहीं। प्रयोगादि सभी कर्म 'सौर' मास के ही अनुसार करे।

फिर 'अंकुरारोपण' करे। गणेश एवं पूर्वोक्त गौरी आदि मातृकाओं की पूजा कर **'क्षमस्व'** कह-कर उनसे क्षमा-प्राथना करे। तब सब विघ्नों को नष्ट करनेवाली **'वसोर्धारा'** दे। तब 'वृद्धि-श्राद्ध' करे। १ पिता, २ पितामह, ३ प्रपितामह और ४ मातामह, ५ प्रमातामह, ६ वृद्ध-प्रमातामह—इन छः की पूजा कर छः पिण्डदान करे। नाम-गोत्र के अनुसार सविधि श्राद्ध करे। फिर 'नान्दीमुख श्राद्ध' करे। इस सबकी विधि **'हिन्दी महा-निर्वाण तन्त्र'** के पृष्ठ ७६ पर दी है।

पञ्च-देवादि की पूजा

सभी कार्यों में १ गणेश, २ सूर्य (सविता), ३ शक्ति (शिवा), ४ शिव, ५ विष्णु—इन पाँचों देवताओं का पूजन करने से कार्य सफल होता है। साथ ही १ लक्ष्मी, २ सरस्वती, ३ गङ्गा, ४ यमुना, ५ दिक्-पाल, ६ दिक्-गज, ७ देव-गण, ८ ऋषि-गण, ६ विघ्न-वासिनी, १० ग्रह, ११ मास, १२ राशि, १३ तिथि, १४ योग, १५ करण—इन सबकी भक्ति-पूर्वक पूजा करे। दिक्-पाल आदि को पूजा पहले बताई जा चुकी है। यहाँ 'ग्रह-पूजा' हेतु ग्रहों के मन्त्र बताते हैं—

नव-ग्रह-मन्त्र और उनका पूजन-पुरश्चरणादि

१ रवि—ॐ ह्रां ह्रीं सः। २ चन्द्र—ॐ घौं स्रौं सः। ३ मङ्गल—ॐ ह्रां ह्रीं सः। ४ बुध—ॐ ह्रौं ह्रौं ह्रां सः। ५ गुरु—ॐ त्रौं त्रौं त्रौं सः। ६ शुक्र—ॐ ह्रौं ह्रीं सः। ७ शनि—ॐ शौं शौं सः। ८ राहु—ॐ छौं छां छौं सः। ६ केतु—ॐ फौं फां फौं सः।

पहले 'मन्त्र' का उच्चारण कर देय **'द्रव्य'** का नाम लेकर, उसे अर्पित करने का सूचक शब्द कहे। यथा— **'मूलं एतत् पाद्यं ॐ सूर्याय ग्रहाय नमः'** इत्यादि।

ग्रह विपरीत हो, रोग या शत्रु द्वारा पीड़ित हो, देश में सङ्कट हो, मृत्यु-भय हो, जाति-कुल के नाश की आशङ्का हो या धन-पुत्रादि के प्राप्त करने की कामना हो, तो 'ग्रह'-मन्त्र का पुरश्चरण करे। ग्रह-दशा जितने वर्ष की हो, उतने ही सहस्र-**'जप'** करने से. **ग्रह-मन्त्र का पुरश्चरण** होता है। **'जप'** का दशांश त्रि-मधु-युक्त समिधा से **'होम'** करे। कल्पोक्त गन्ध और कर्पूर से मिश्रित जल द्वारा **'होम'** का दशांश **'तर्पण'** करे। कर्पूर से सुगन्धित जल से **'तर्पण'** का दशांश **'मार्जन'** (अभिषेक) करे। **मार्जन** के दशांश-संख्यक ब्राह्मणों को भोजन कराये। पुरश्चरण के आरम्भ और अन्त में यथाशक्ति **'महा-पूजा'** कर **'दान-दक्षिणा'** दे।

'ग्रह' के दोष से सब उपायों के करने पर भी अभीष्ट कार्य में सफलता नहीं मिलती। अतः ग्रह-**पूजा** आवश्यक है। इसके लिए जिस दिन चन्द्रमा और नक्षत्र अपने अनुकूल हों, उस शुभ दिन में जो 'ग्रह' अपने प्रतिकूल हो, उसका विधिपूर्वक पूजन करे। उसके प्रिय रंगवाले वस्त्र और पुष्प अर्पित करे। यथा-शक्ति होम करे। 'ग्रह-पूजा' के साथ ही दान करने से आपत्ति दूर होती है और दीर्घायु मिलकर संसार-सुख की प्राप्ति होती है। सुवर्ण के तुला-दान से 'शुक्र', ताँबे के दान से 'मङ्गल', पीतल के दान से 'बुध', लोहे के दान से 'शनि', सीसक के दान से 'राहु', 'खर्पर' के दान से केतु, ताँबे के दान से 'सूर्य' और कांसे के दान से 'चन्द्रमा' सन्तुष्ट होते हैं और ऐश्वर्य तथा दीर्घायु प्रदान करते हैं।

वैदूर्य, नीलम, माणिक्य, पद्म-राग, मौक्तिक, वज्र, गोमेद और मरकत—इन रत्नों को दान में दे या स्वयं धारण करे, तो कल्याण होता है।

ग्रह-कवच स्तोत्र

विनियोग—ॐ अस्य जगन्मङ्गल-कारक ग्रह-कवचस्य श्री भैरव ऋषिः। अनुष्टुप् छन्दः। श्री सूर्यादि-ग्रहाः देवताः। सर्व-कामार्थ-संसिद्धये पाठे विनियोगः।

पार्वत्युवाच—श्रीशान ! सर्व-शास्त्रज्ञ देवताधीश्वर प्रभो ! अक्षयं कवचं दिव्यं ग्रहादि-दैवतं विभो ! पुरा संसूचितं गुह्यं सुभक्ताक्षय-कारकम्। कृपा मयि तवास्ते चेत् कथय श्रीमहेश्वर !

शिव उवाच—शृणु देवि प्रियतमे ! कवचं देव-दुर्लभम्। यद् धृत्वा देवताः सर्वे अमराः स्युर्वरानने ! तव प्रीति-वशाद् वच्मि न देयं यस्य कस्यचित्।

ॐ ह्रां ह्रीं सोः मे शिरः पातु श्रीसूर्य ग्रह-पतिः। ॐ घौं सौं श्रौं मे मुखं पातु श्रीचन्द्रो ग्रह-राजकः। ॐ ह्रां ह्रीं ह्रां सः करौ पातु ग्रह-सेनापतिः कुजः। पायादथ ॐ ह्रौं ह्रां सः पादौ ज्ञो नृप-बालकः। ॐ जौं जौं जौं सः कटिं पातु पायादमर-पूजितः। ॐ ह्रौं ह्रीं सोः दैत्य-पूज्यो हृदयं परिरक्षतु। ॐ शौं शौं सः पातु नाभिं मे ग्रह-प्रेष्यं शनैश्चरः। ॐ छौं छां छौं सः कण्ठ-देशं श्रीराहुर्देव-मर्दकः। ॐ फौं फां फौं सः शिखी पातु सर्वाङ्गमभितोऽवतु। ग्रहाश्चैते भोग-देहा नित्यास्तु स्फुटित-ग्रहाः। एतदंशांश-सम्भूताः पान्तु नित्यं तु दुर्जनात्। अक्षयं कवचं पुण्यं सूर्यादि-ग्रह-दैवतम्। पठेद् वा पाठयेद् वापि धारयेद् यो जनः शुचिः। स सिद्धिं प्राप्नुयादिष्टां दुर्लभां त्रिदशैस्तु याम्। तव स्नेह-वशादुक्तं जगन्मङ्गल-कारकम्। ग्रह-यन्त्रान्वितंऽकृत्वाभीष्टमक्षयमाप्नुयात्।

॥ ग्रह-यामले पार्वतीश्वर-सम्वादे जगद्-दुर्लभाक्षय नाम कवचम् सम्पूर्णम् ॥

तिथि-पूजा

'तिथि' का ध्यान और मन्त्र जाने विना जो दिन के कर्म करता है, वे व्यर्थ होते हैं। 'तिथि' महा-माया, आद्या-मूर्ति और जगन्मयी है; कृष्ण-पक्ष में वह कृष्ण-वर्णा और शुक्ल-पक्ष में चन्द्रमा के समान प्रभावाली होती है। तिथियों के ध्यान और उनके मन्त्र निम्न प्रकार हैं—

१ **द्वि-भुजां शुक्ल-रूपां च खेलत्खञ्जन-गामिनीं। द्वि-लोचनां शशि-कलां सिन्दूर-तिलकोज्ज्वलां।**
तप्त-हाटक- निर्माण-नानालङ्कार- भूषितां। दाड़िमी-वीज - सदृश - दशन - द्युति - शोभनां।
ध्यायेत् प्रतिपदं देवीं जप - पूजा - विशुद्धये। मन्त्र ... ग्रीं प्रतिपद्भ्यः स्वाहा।

२ **द्वि-लोचनां शशि-कलां शुद्ध-स्फटिक-शोभनां। शुद्धाभरण-शोभाढ्यां शुक्ल-वस्त्र-परिच्छदां।**
नाना - कटाक्ष-संयुक्त-भ्रू-लता-परिशोभितां। सिन्दूर-तिलकोद्दीप्तां खञ्जनाश्रित-लोचनां।
द्वि-भुजां सुन्दराङ्गीं च किशोरीं नव-यौवनां। मन्त्र ... ऐं द्वितीयायै स्वाहा।

३ शुक्ल-पद्म-प्रतीकाशां शुक्ल-वस्त्र-परिच्छदां । शुक्लाभरण-शोभाढ्यां पुण्डरीकोपरि-स्थितां ।
द्वि-लोचनां शशि-कलां सिन्दूर-तिलकोज्ज्वलां । कटाक्ष-विशिखोपेतां द्वि-भुजां तृतीयां भजेत् ।

मन्त्र…ॐ ऐं तृतीयायै स्वाहा ।

४ चतुर्थीं शुक्ल-चार्वङ्गीं यज् ज्ञात्वा सिद्धितां व्रजेत् । कुन्द-पुष्प-समाभासां द्वि-भुजां लोल-लोचनां ।
शुक्ल-वस्त्र-परीधानां शुक्लाभरण-भूषितां । सिन्दूर - तिलकोद्दीप्तां खञ्जनाञ्चित-लोचनां ।

मन्त्र…ऐं हुं चतुर्थ्यै स्वाहा ।

५ शुद्ध-स्फटिक-सङ्काशां श्वेत-पद्मोपरि-स्थितां । हास्य-युक्तां प्रसन्नास्यां कटाक्ष-विशिखोज्ज्वलां ।
कन्दर्प - धनुराकार- भ्रू-लता-परिशोभितां । द्वि-भुजां श्वेत - वर्णां च श्वेतालंकार- भूषितां ।
लोचन-द्वय-संयुक्तां सिन्दूर-तिलकोज्ज्वलां । मृणाल - सदृशाकार - बाहु - वल्ली-विराजितां ।
खेलत्खञ्जन-गामीं च चारु-चूड़ा-विराजितां । मन्त्र…ह्रीं ऐं ह्रीं पञ्चम्यै स्वाहा ।

६ कुन्द-पुष्प-समाभासां द्वि-भुजां लोल-लोचनां । कटाक्ष-विशिखोद्दीप्तां सिन्दूर-तिलकोज्ज्वलां ।
दाड़िमी- वीज- सदृश -दशन - द्युतिमुज्ज्वलां । शुक्लालङ्कार-सुभगां शुक्लासन-निवासिनीम् ।
शुक्ल-वस्त्र-परिच्छिन्नां शुक्ल-हार-विनोदिनीं । द्वि-भुजां चन्द्र-वदनां ध्यायेदात्म-विभूतये ।

मन्त्र…ॐ ह्रीं षष्ठ्यै स्वाहा ।

७ शरच्चन्द्र-प्रतीकाशां द्वि-भुजां शशि-शेखरां । लोचन-द्वय-संयुक्तां खेलत् खंजन-गामिनीं ।
सिन्दूर-तिलकोद्दीप्तामञ्जनाञ्चित - लोचनां । कटाक्ष- विशिखोपेतां भ्रू-लता- परिशोभितां ।
शुक्लासन-समासीनां शुक्लाभरण-भूषितां । शुक्ल-वस्त्र-परीधानां ध्यायेदात्म-विभूतये ।

ह्रीं ॐ सप्तम्यै स्वाहा ॐ ह्रीं ।

८ राका-चन्द्र-प्रतीकाशां द्वि-भुजां चन्द्र-शेखरां । पूर्ण-चन्द्र-मुख-श्रेणीं कुटिलालक-शोभितां ।
हास्य-युक्तां प्रसन्नास्यां श्वेत-वस्त्र-परिच्छदां । श्वेताभरण-शोभाढ्यां किशोरीं नव-यौवनां ।
माला-कटाक्ष-संयुक्तां भ्रू-लता-परिशोभितां । सिन्दूर-तिलकोद्दीप्तामञ्जनाञ्चित-लोचनां ।

क्रीं हुं ऐं अष्टम्यै स्वाहा ऐं हुं क्रीं ।

९ श्वेत-पद्म-प्रतीकाशां द्वि-भुजां लोल-लोचनां । दाड़िमी-वीज-सदृश-दन्त-पंक्ति-परिच्छदां ।
शुक्ल-पट्टाम्बर-धरां शुक्ल-वस्त्रोत्तरीयिणीं । ललाटे पट्टिकां शुद्धां सिन्दूर-तिलकोज्ज्वलां ।
नानाभरण-दीप्ताङ्गीं पीत-गन्ध-प्रलेपितां । मुक्ता-वर्तुल-हारेण कम्बु-कण्ठ -सुशोभितां ।
नाना-माल्य-परिच्छिन्नां चित्र-राज-विराजितां । …ॐ हुं नवम्यै स्वाहा हुं ॐ ।

१० मल्लिका-पुष्प-सङ्काशां द्वि-भुजां लोल-लोचनां । श्वेतासनोपविष्टां च श्वेतांशुक-परिच्छदां ।
श्वेताभरण - संयुक्तां श्वेत - गन्ध-विलेपनीं । सिन्दूर - तिलकोद्दीप्तामञ्जनाञ्चित-लोचनां ।

ऐं ॐ दशम्यै स्वाहा ॐ ऐं ।

११ केतकी-पुष्प-सङ्काशां भ्रू-लता-परिभूषितां । नाना-कटाक्ष-संयुक्तां मत्त-द्विरद-गामिनीम् ।
नानालङ्कार-सुभगां पीत-वस्त्र-परिच्छदां । पीत-गन्ध-प्रलिप्ताङ्गीं सिन्दूर-तिलकोज्ज्वलां ।
दाड़िमी- वीज - सदृश - दन्त - पंक्तिमनुत्तमां । द्वि-भुजां सुन्दरीं देवीं नमाम्यात्म - विभूतये ।

ॐ क्रीं ॐ एकादश्यै स्वाहा ॐ क्रीं ॐ ।

१२ पीत-पद्म-समाभासां शुक्ल-वस्त्र-परिच्छदां । शुक्ल-चन्दन-सिक्ताङ्गीं द्वि-भुजां लोल-लोचनां ।
शुक्लाभरण-शोभाढ्यां शुक्लासन-समाश्रयां । दाड़िमी-वीज-सदृश-दशन-द्युति - शोभनां ।
सिन्दूर-तिलकोद्दीप्तां ललाट-पट्टिकां शुभां । ...ह्रीं ॐ ह्रीं द्वादश्यै स्वाहा ह्रीं ॐ ह्रीं ।

१३ रक्त-चन्द्र-प्रतीकाशां किशोरीं नव-यौवनां । रक्त-वस्त्र-परीधानां कुटिलालक-मण्डितां ।
द्वि-भुजां सुन्दरीं शुद्धां पूर्ण-चन्द्र-मुख-प्रभां । द्वि-लोचनां चन्द्र-रेखां विष्णु-पूज्यां वृहत्-कटीं ।
सिन्दूर-तिलकोद्दीप्तामञ्जनाञ्चित-लोचनां । नाना - कटाक्ष-संयुक्तां नाना-शृंगार-शोभनां ।
ॐ ऐं त्रयोदश्यै स्वाहा ऐं ॐ ।

१४ शुद्ध-स्फटिक-सङ्काशां हरिद्-वस्त्र-विनोदिनीं, नानालङ्कार-सुभगां पीत-माल्य-परिच्छदां ।
श्वेत-पद्म-समासीनां द्वि-भुजां लोल-लोचनां, कटाक्ष-विशिखोद्दीप्तां सिन्दूर-तिलकोज्ज्वलां ।
दाड़िमी-वीज - सदृश - दशन - द्युतिमुज्ज्वलां, कदम्ब-कोरकाकार-स्तन-द्वय- मनोहरां ।
हास्य-युक्तां प्रसन्नास्यां किशोरीं नव-यौवनां, ...क्रीं ॐ ह्रीं चतुर्दश्यै स्वाहा ह्रीं ॐ क्रीं ।

१५ कोटि-विद्युल्लताकारां चतुर्बाहु-समन्वितां, पीतांशुक-परीधानां रत्न-हार-विराजितां ।
शङ्ख-कङ्कण - केयूर - नाना - शृङ्गार - भूषितां, रत्न-कुण्डल-संयुक्त-स्फुरद्-गण्ड-मनोहरां ।
त्रि-भङ्ग-ललिताकारां सिन्दूर-तिलकोज्ज्वलां, कटाक्ष-लक्ष-संयुक्तां भ्रू-लता-परिशोभितां ।
ह्रीं ॐ क्रीं ॐ पूर्णिमायै स्वाहा ॐ क्रीं ॐ ह्रीं ।

कृष्ण-पक्ष की तिथियों का ध्यान एक ही है अर्थात् प्रतिपदा से लेकर अमावास्या तक की प्रत्येक तिथि का ध्यान निम्न प्रकार करे—

दलिताञ्जन-सङ्काशां पीतांशुक-परिच्छदां, पीत-गन्ध-प्रलिप्ताङ्गीं पीताभरण-भूषितां ।
पीत-पद्म-समासीनां किशोरीं नव-यौवनां, द्वि-लोचनां चन्द्र-रेखां द्वि-भुजां कोरक-स्तनीं ।
ललाट-पट्टिका-शुद्धां सिन्दूर-तिलकोज्ज्वलां, खेलत्-खञ्जन-गामीं च त्रिभङ्गि-ललिताकृतिम् ।
दाड़िम-बीज-सदृश-दशन-ज्योतिरुज्ज्वलां ।

कृष्ण-पक्ष की प्रतिपदा से चतुर्दशी तक की तिथियों के मन्त्र वही हैं, जो शुक्ल-पक्ष की इन तिथियों के ऊपर बताये गये हैं । 'अमावास्या' का मन्त्र भिन्न है, यथा—

ॐ ह्रीं ह्रीं ॐ अमावास्यायै स्वाहा ॐ ह्रीं ह्रीं ॐ

पक्षों के ध्यान और मन्त्र

पक्षों और तिथियों के ध्यान जो साधक प्रतिदिन करता है और उनके मन्त्रों का जप करता है, उसे सिद्धि शीघ्र ही मिलती है । पहले पक्ष का ध्यान करे, तब तिथि का; फिर पक्ष के मन्त्र का जप करे, तब तिथि का । जो ऐसा नहीं करता, उसके जप-पूजादिक सभी कर्म निष्फल होते हैं । सूर्य का दर्शन कर मन्त्र का १०-१० बार जप करे । पक्षों के ध्यान निम्न प्रकार हैं—

१ शङ्ख-कुन्द-समाभासां नव-यौवन-संयुक्तां, चतुर्भुजां त्रि-नयनां मत्त-द्विरद्-गामिनीं ।
ललाट-पट्टिका - मध्ये सिन्दूर - तिलक-स्थितिं, भ्रमद्-भ्रमर-नीलाभामञ्जनाञ्चित-लोचनां ।
पीतांशुक-परीधानां कृष्ण-वस्त्रोत्तरीयिणीं, नानालङ्कार-सुभगां नील-पद्मोपरि-स्थितां ।
घूर्णायमान-नयनां नील-पद्म-विधारिणीं, सदा-षोडश-वर्षीयां कदम्ब-कोरक-स्तनीं ।
हीरक - द्युति - सङ्काश - दशन - ज्योतिरुज्ज्वलां, नाना - पुष्प-मयैर्हारैर्नाना-गन्ध-मयीं परां ।
प्रत्यहं भावयेद् देवीं शुक्ल-पक्ष-स्वरूपिणीं, ...ऐं ऐं क्रीं क्रीं शुक्ल-पक्षाय स्वाहा ऐं ऐं क्रीं क्रीं ।

२ महा-मरकत-श्यामां चतुर्बाहु-समन्वितां, पीनोत्तुङ्ग - कुचां रम्यां चित्र-वस्त्र-विलासिनीं ।
नाना-श्रृङ्गार-वेशाढ्यां स्फुरच्चकित - लोचनां, सिन्दूर-तिलकोद्दीप्तामंजनाञ्चित-लोचनां ।
कन्दर्प - धनुराकार - भ्रू-लता - परिशोभितां, रत्न-हारेण सहितां नाग-हार-विराजितां ।
पीत-पद्म-समासीनां चित्र-चूड़ा-विराजितां, पीत-विद्युत्-समा-कान्त्युत्तरीय-वसनच्छविं ।
पूर्ण - चन्द्र - मुखीं देवीं कृष्ण -पक्ष -स्वरूपिणीं, ''ॐ ॐ कृष्ण - पक्षाय स्वाहा ॐ ॐ ।

तिथि-कवच-स्तोत्र

विनियोग—अस्य तिथीनां कवचस्य श्रीअश्वत्थामा - बलि -व्यास - हनुमद् - विभीषण - कृप - परशुरामाः ऋषयः । गायत्री छन्दः । श्रीमृत्युञ्जय-शिवः देवता ।[धर्मार्थ-काम-मोक्षेषु पाठे विनियोगः ।

ऋष्यादि-न्यास—श्रीअश्वत्थामादि-ऋषयो नमः शिरसि । गायत्री-छन्दसे नमः मुखे । श्रीमृत्युञ्जय-शिव-देवतायै नमः हृदि । धर्मार्थ-काम-मोक्षेषु पाठे विनियोगाय नमः अञ्जलौ ।

पूर्वे पातु सदा नित्या क्रोङ्कारी प्रतिपत्-तिथिः, क्लीङ्कारी पातु मे नित्यं द्वितीया ब्रह्म-पूजिता ।
ऐङ्कारी पातु मे नित्यं तृतीया पश्चिमे परा, ब्लुङ्कारी पातु मे नित्यं चतुर्थी विष्णु-पूजिता ।
ब्लुङ्कारी पातु मे नित्यमूर्ध्व-देहमहर्निशं, ह्रींकारी पातु मे नित्यं पञ्चमी मुख-मण्डलं ।
श्रीङ्कारी पातु मे नित्यं षष्ठी-रूपा च पार्वती, स्त्रीङ्कारी सप्तमी पातु नित्यं मे नाभि-मण्डलं ।
हुङ्कारी चाष्टमी नित्यं कण्ठं मे पातु सर्वदा, श्रीङ्कारी नवमी नित्यं स्वाधिष्ठानं सदाऽवतु ।
दशमी पातु मे नित्यं हस्त-युग्मं यथा तथा, एकादशी सदा पातु चाक्षि-युग्ममहर्निशम् ।
द्वादशी पातु मे नित्यं हस्त-युग्मं यथा तथा, त्रयोदशी महा-लक्ष्मीः क्षेत्र-स्थान-निवासिनी ।
त्रयोदशी पातु नित्यं हंस इत्यक्षरात्मिका, हङ्कारः पातु मे नित्यं पाद-युग्ममहर्निशं ।
सःकारः पातु मे नित्यं पादाग्रात् केश-मण्डलं, चतुर्दशी महा-माया सर्वत्र परिरक्षतु ।
स्वाकारश्चतुर्दशी नित्यानित्यं मे धन-सम्पदं, हाकारः पूर्णिमा नित्यं देहि मे आयु-वर्धनं ।
श्रीं हुं ह्रीं स्वाहा सर्व - रूपा देवी तिथि - रूपा च मां परि - रक्षतु सर्वदा ।
हूं ह्रीं अमावास्या सदा पातु दारान् पुत्र-परिच्छदं ह्रीं हुं स्वाहा ।
कथितं कवचं देवि ! त्रैलोक्येषु च दुर्लभम्, इदं कवचमज्ञात्वा कवचान्यं पठेत् तु यः ।
अन्येषां कवचानां च तेजांसि हरते तिथिः, तस्माद् यत्नाद् हे देवि ! तिथीनां कवचं पठेत् ।
ध्यानं मन्त्रं तथा स्तोत्रं कवचं च तथा प्रिये ! कलि-काल-मतं देवि ! पर-तत्वं विनिर्गतं ।

॥ श्री वर्ण-विलास-तन्त्रे गणेश-जतुकर्ण-सुभगा-सम्वादे तिथि-कवचं सम्पूर्णं ॥

अकारादि वर्णों का ध्यान

अकारादि वर्णों के ध्यान 'कामधेनु तन्त्र' में दिये हैं । यहाँ वर्णोद्धार-तन्त्रोक्त ध्यान उद्धृत हैं । इन दोनों ही तन्त्रों के ध्यानों को मिलाने से पूरा ध्यान प्राप्य है । तदनुसार प्रत्येक वर्ण का ध्यान कर उस वर्ण को मन्त्र-रूप में दस बार जप लेना चाहिये ।

अ—केतकी-पुष्प-गर्भाभां द्वि-भुजां हंस-लोचनां, शुक्ल-पट्टाम्बर-धरां पद्म-माल्य-विभूषिताम् ।
चतुर्वर्ग-प्रदां नित्यं नित्यानन्द-मयीं परां, वराभय-करां देवीं नाग-पाश-समन्विताम् ।

आ—ध्यानमस्याः प्रवक्ष्यामि षड्-भुजां रक्त-लोचनां । रत्न-कङ्कण-केयूर-हारोज्ज्वल-कलेवरां ।
सिद्धां सिद्धि - प्रदां सौम्यां सिद्ध - गन्धर्व - सेवितां ।

इ—धूम्र-वर्णां महा-रौद्रीं पीताम्बर-युतां परां । कामदां सिद्धिदां सौम्यां नित्योत्साह-विवर्द्धिनीं ।

ई—चतुर्भुजां रक्त-वर्णां रक्त-पुष्पोप-शोभितां । चारु-चन्दन-दिग्धाङ्गीं रक्त-पङ्कज-लोचनाम् ।
रक्त-चीर-परीधानां धर्म-कामार्थ-मोक्षदां ।

उ—पीत-वर्णां त्रि-नयनां पीताम्बर-धरां परां । द्वि-भुजां जटिलां भीमां सर्व-सिद्धि-प्रदायिनीं ।

ऊ—द्वि-भुजां शुक्ल-वर्णां च जटा-मुकुट-शोभितां । शुक्ल-माल्याम्बर-धरां चारु-चन्दन-भूषितां ।
चतुर्वर्ग-प्रदां नित्यां रक्त-पङ्कज-लोचनां ।

ऋ—षड्-भुजां नील-वर्णां च नीलाम्बर-धरां परां । नानालङ्कार-भूषाढ्यां सर्वालंकृत-मस्तकां ।
भक्ति-प्रदां भगवतीं भोग-मोक्ष-प्रदायिनीं । पञ्च-प्राण-मयं ··(देखें 'कामधेनु तन्त्र' पृष्ठ ४)

ॠ—ध्यानमस्याः प्रवक्ष्यामि द्वि-भुजां पद्म-लोचनां । सन्तप्त-स्वर्ण-वर्णाभां सर्वालङ्कार-भूषितां ।
रक्त-पद्मेक्षणां देवीं रत्न-हार-विभूषिताम् । चतुर्ज्ञान-मयं ···(देखें 'का० तं०' पृष्ठ ४)

ऌ—स्वर्ण-चम्पक-वर्णां च स्वर्णालङ्कार-विग्रहां । चतुर्भुजां त्रि-नयनां रक्त-चन्दन-चर्चिताम् ।
प्रणमामि सदा देवीं धर्म-कामार्थ-मोक्षदाम् ।

ॡ—ध्यानमस्याः प्रवक्ष्यामि पीत-वर्णां चतुर्भुजां । पीताम्बर-परीधानां नानालङ्कार-मस्तकां ।
विचित्र- माल्याभरणां देव -दानव- सेवितां । चतुर्वर्ग- प्रदां नित्यां नित्योत्साह- विवर्द्धिनीं ।

ए—रक्ताम्बर-परीधानां षड्-भुजां रक्त-लोचनां । विचित्राभरणां नित्यां चतुर्वर्ग-प्रदायिनीं ।

ऐ—विचित्र-रूपिणीं देवीं विचित्राम्बर-धारिणीं । विचित्र-माल्याभरणां चतुर्बाहु-समन्वितां ।
नानालङ्कार - संयुक्तां चतुर्वर्ग- फल- प्रदां । देव- दानव- गन्धर्वैः सेवितां मोक्ष - कांक्षिभिः ।

ओ—रत्नालङ्कार-संयुक्तां पद्म-राग-प्रभां शुभाम् । शरत्-पूर्णेन्दु-वदनां विचित्र-वसनान्वितां ।
चतुर्भुजां त्रि-नयनां स्मेरास्यां नील-कुन्तलां । विद्युद्-दाम-समानाङ्गीं मुक्ता-पंक्ति-स्रजं भजे ।

औ—चतुर्भुजां त्रि - नयनां जटा - मुकुट - मण्डितां । श्वेत-रोहित-पीतादि-पुष्प-हारोपशोभितां ।
सदा स्मेर-मुखीं सौम्यां चतुर्वर्ग-प्रदायिनीं ।

अं—जवा-दाड़िम-पुष्पाभां द्वि-भुजां रक्त-लोचनां । रक्ताम्बर-परीधानां रक्तालङ्कार-भूषितां ।
चतुर्वर्ग-प्रदां सौम्यां वरदां नाग-शेखरां ।

अः—सन्तप्त- हेम-वर्णाभां सर्वालङ्कार-भूषितां । रत्न-यज्ञोपवीतां च रत्न- कङ्कण - राजितां ।
पूर्णेन्दु-वदनां सौम्यां तुरीय-कर-संयुतां । चन्द्र-सूर्याग्नि - रूपेण नयन - त्रितयान्वितां ।
साधकाभीष्टदां नित्यां धर्म-कामार्थ-मोक्षदां ।

क—जवा-यावक-सिन्दूर-सदृशीं कामिनीं परां। चतुर्भुजां त्रि-नेत्रां च बाहु-वल्ली-विराजताम्।
कदम्ब-कोरकाकार - स्तन-युग्म- विराजिताम्। रत्न-कङ्कण- केयूर-हार- नूपुर- भूषिताम्।
ख—बन्धूक-पुष्प-सङ्काशां रत्नालंकार-भूषिताम्। वराभय-करां नित्यामीषद्-हास्य-मुखीं पराम्।
ग—दाड़िमी-पुष्प-संकाशां चतुर्बाहु-समन्विताम्। रक्ताम्बर-धरां नित्यां रक्तालंकार-भूषिताम्।
घ—मालती-पुष्प-वर्णाभां षड्-भुजां रक्त-लोचनां। शुक्लाम्बर-परीधानां शुक्ल-माल्य-विभूषितां।
सदा स्मेर-मुखीं रम्यां लोचन-त्रय-राजितां। निर्गुणं त्रिगुणो ···(देखें 'का० तं०' पृष्ठ ६)
ङ—धूम्र-वर्णां महा-घोरां ललज्जिह्वां चतुर्भुजां। पीताम्बर-परीधानां साधकाभीष्ट-सिद्धिदां।
च—तुषार - कुन्द - पुष्पाभां नानालंकार-भूषिताम्। सदा षोडश-वर्षीयां वराभय-करां पराम्।
शुक्ल-वस्त्रावृत-कटिं शुक्ल-वस्त्रोत्तरीयिणीं। वरदां शोभनां रम्यामष्ट-बाहु-समन्विताम्।
छ—ध्यानमस्याः प्रवक्ष्यामि द्वि-भुजां तु त्रि-लोचनां। पीताम्बर-धरां नित्यां वरदां भक्त-वत्सलां।
ज—नानालंकार- संयुक्तैर्भुजैर्द्वादशभिर्वृताम्। रक्त- चन्दन- दिग्धाङ्गीं चित्राम्बर- विधारिणीं।
त्रिलोचनां जगद्धात्रीं वरदां भक्त-वत्सलाम्।
झ—सन्तप्त-हेम-वर्णाभां रक्ताम्बर-विभूषिताम्। रक्त-चन्दन-लिप्ताङ्गीं रक्त-माल्य-विभूषिताम्।
चतुर्दश-भुजां देवीं रत्न-हारोज्ज्वलां पराम्।
ञ—चतुर्भुजां धूम्र-वर्णां कृष्णाम्बर-विभूषिताम्। नानालङ्कार-संयुक्तां जटा-मुकुट-राजिताम्।
ईषद्-हास्य-मुखीं नित्यां वरदां भक्त-वत्सलां।
ट—मालती - कुन्द-पुष्पाभां पूर्ण-चन्द्र-निभेक्षणाम्। दश-बाहु-समायुक्तां सर्वालंकार-भूषिताम्।
पर-मोक्ष-प्रदां नित्यां सदा स्मेर-मुखीं पराम्।
ठ—पूर्ण-चन्द्र-निभां देवीं विकसत्-पंकजेक्षणाम्। सुन्दरीं षोडश-भुजां धर्म-कामार्थ-मोक्षदाम्।
ड—जवा-सिन्दूर-संकाशां वराभय-करां पराम्। त्रि-नेत्रां वरदां नित्यां पर-मोक्ष-प्रदायिनीं।
ढ—रक्तोत्पल-निभां रम्यां रक्त-पंकज-लोचनाम्। अष्टादश-भुजां भीमां महा-मोक्ष-प्रदायिनीं।
ण—द्वि-भुजां वरदां वन्द्यां भक्ताभीष्ट-प्रदायिनीं। राजीव-लोचनां नित्यां धर्म-कामार्थ-मोक्षदाम्।
त—चतुर्भुजां महा-शान्तां महा-मोक्ष-प्रदायिनीं। सदा षोडश-वर्षीयां रक्ताम्बर-धरां पराम्।
नानालंकार-भूषाम् वा सर्व-सिद्धि-प्रदायिनीं।
थ—नील-वर्णां त्रि-नयनां षड्-भुजां वरदां पराम्। पीत-वस्त्र-परीधानां सदा सिद्धि-प्रदायिनीम्।
द—चतुर्भुजां पीत-वस्त्रां नव-यौवन-संस्थिताम्। अनेक-रत्न - घटित - हार - नूपुर - शोभिताम्।
ध—षड्-भुजां मेघ-वर्णां च रक्ताम्बर-धराम् परां। वरदां शुभदां रम्यां चतुर्वर्ग-प्रदायिनीम्।
न—दलिताञ्जन-वर्णाभां ललज्जिह्वां सुलोचनाम्। चतुर्भुजां चकोराक्षीं चारु-चन्दन-चर्चिताम्।
कृष्णाम्बर-परीधानामीषद्-हास्य-मुखीं सदा।
प—विचित्र-वसनां देवी द्वि-भुजां पंकजेक्षणाम्। रक्त-चन्दन-लिप्ताङ्गीं पद्म-माला-विभूषिताम्।
मणि-रत्नादि - केयूर- हार- विग्रहाम्। चतुर्वर्ग - प्रदां नित्यां नित्यानन्द - मयींपराम्।

फ---प्रलयाम्बुद-वर्णाभां ललज्जिह्वां चतुर्भुजाम् । भक्ताभय-प्रदां नित्यां नानालंकार-भूषिताम् ।

ब----नील-वर्णां त्रि-नयनां नीलाम्बर-धरां परां । नाग-हारोज्ज्वलां देवीं द्वि-भुजां पद्म-लोचनाम् ।

भ---तड़ित्-प्रभां महा-देवीं नाग-कंकण-शोभिताम् । चतुर्वर्ग-प्रदां देवीं साधकाभीष्ट-सिद्धिदाम् ।

म---कृष्णां दश-भुजां भीमां पीत-लोहित-लोचनां । कृष्णाम्बर-धरां नित्यां धर्म-कामार्थ-मोक्षदाम्।

य---धूम्र-वर्णां महा-रौद्रीं षड्-भुजां रक्त-लोचनां । रक्ताम्बर-परीधानां नानालंकार-भूषिताम् ।
महा-मोक्ष-प्रदां नित्यामष्ट-सिद्धि-प्रदायिनीं त्रिशक्ति-सहितं··· (देखें 'का० तं० पृष्ठ १४) ।

र—ललज्जिह्वां महा-रौद्रीं रक्तास्यां रक्त-लोचनां । रक्त-वर्णामष्ट-भुजां रक्त-पुष्पोपशोभिताम् ।
रक्त-माल्याम्बर-धरां रक्तालंकार-भूषिताम् । महा-मोक्ष-प्रदां नित्यामष्ट-सिद्धि-प्रदायिकाम् ।

ल—चतुर्भुजां पीत-वस्त्रां रक्त-पंकज-लोचनाम् । सर्वदा वरदां भीमां सर्वालंकार-भूषिताम् ।
योगीन्द्र-सेवितां नित्यां योगिनीं योग-रूपिणीं । चतुर्वर्ग-प्रदां देवीं नाग-हारोपशोभिताम् ।

व—कुन्द-पुष्प-प्रभां देवीं द्वि-भुजां पंकजेक्षणाम् । शुक्ल-माल्याम्बर-धरां रत्न-हारोज्ज्वलां पराम् ।
साधकाभीष्टदां सिद्धां सिद्धिदां सिद्ध-सेविताम् ।

श—चतुर्भुजां चकोराक्षीं चारु-चन्दन-चर्चिताम् । शुक्ल-वर्णां त्रि-नयनां वरदां च शुचि-स्मिताम् ।
रत्नालंकार-भूषाढ्यां श्वेत-माल्योपशोभिताम् । देव-वृन्दैरभिवन्द्यां सेवितां मोक्ष-कांक्षिभिः ।

ष---शुक्लाम्बरां शुक्ल-वर्णां द्वि-भुजां रक्त-लोचनां । श्वेत-चन्दन-लिप्ताङ्गीं मुक्ता-हारोपशोभितां।
गन्धर्व-गीयमानां च सदानन्द-मयीं परां । अष्ट-सिद्धि-प्रदां नित्यां भक्तानन्द - विवर्द्धिनीम् ।

स---करीष-भूषिताङ्गीं च साट्टहासां दिगम्बरीं । अस्थि-माल्यामष्ट-भुजां वरदाम्बुजेक्षणाम् ।
नागेन्द्र-हार-भूषाढ्यां जटा-मुकुट-मण्डितां । सर्व-सिद्धि-प्रदां नित्यां धर्म-कामार्थ-मोक्षदाम् ।

ह—चतुर्भुजां रक्त-वर्णां शुक्लाम्बर-विभूषितां । रक्तालङ्कार-संयुक्तां वरदां पद्म-लोचनाम् ।
ईषद्-हास्य-मुखीं लोलां रक्त-चन्दन-र्चाचतां । स्याद् दात्रीं च चतुर्वर्ग-प्रदां सौम्यां मनोहराम् ।
गन्धर्व-सिद्ध-देवाद्यैर्ध्याताामाद्यां सुरेश्वरीं ।

तब वर्ण-मन्त्र से पुटित कर मूल-मन्त्र का १० बार जप करे । ऐसा सभी वर्णों के सम्बन्ध में समझना चाहिये । इस प्रकार जप किए बिना दीक्षा फल नहीं देती । अतः प्रत्येक वर्ण का ध्यान कर वर्ण-मन्त्र का जप कर, वर्ण-मन्त्र से पुटित मूल-मन्त्र का जप करे और अभीष्ट फल प्राप्त करे ।

दीक्षा के बाद से गुरु के साथ मन्त्र का शोधन करना चाहिये । अन्यथा दीक्षा, जप, पूजादि का फल नहीं मिलता । दीक्षा-कार्य के आदि और अन्त में गुरुदेव पचास वर्ण-मन्त्रों से पुटित कर मन्त्रों का जप कर लें, तभी कार्य फल-प्रद होगा । शिष्य को भी सदा इस क्रम का पालन करना चाहिए ।

अकारादि वर्णों के मन्त्र हैं 'ॐ अकाराय नमः' इत्यादि ।

छठा परिच्छेद

दीक्षा की विविध विधियाँ

क्रियावती दीक्षा का पूजन-क्रम

पूजा-मण्डप के द्वार पर हो पहले आचमन कर सामान्यार्घ्य-स्थापन-पूर्वक द्वार-पूजा करे। यह पूजा **'अर्थ-काण्ड'** में द्रष्टव्य है।

आसन के लिए विनियोग—**'मेरु-पृष्ठ ऋषिः, सुतलं छन्दः, कूर्मो देवता, आसन-योगे विनियोगः'** पढ़ कर आसन बिछाये। **'ह्रीं कूर्मासनाय ते नमः'** से उसका पूजन कर उस पर बैठे। एड़ी से तीन बार भूमि पर ठोकर मारकर भूमि की और तीन बार नीचे से ऊपर को ताली बजाकर अन्तरिक्ष के विघ्नों को दूर करे। सौर मासादि का उल्लेख कर सङ्कल्प करे और क्षेत्रपाल एवं गृह-देवी का गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य से पूजन करे। इन दोनों की पूजा किए विना अन्य देवता का अर्चन नहीं करना चाहिये।

याग-मण्डप में मूल-मन्त्र से पञ्च-गव्य और अर्घ्य का जल छिड़के। चतुष्पथ तक दिव्य-दृष्टि से देखकर 'फट्'-मन्त्र से सारे स्थान की शुद्धि करे। 'फट्' से ही कुशों द्वारा ताड़न कर 'हुं' से अभ्युक्षण करे। तब चन्दन, अगुरु, कपूर से मण्डप के भीतरी भाग को धूपित करे। सब विघ्नों के नाशक **'विकिर'** (लाल चन्दन, सिद्धार्थ, भस्म, दूर्वा, कुश और अक्षत) कहे गये हैं। उन्हें सात बार मन्त्र से अभिमन्त्रित कर, 'फट्' से जलद्वारा प्रोक्षित, हुं' से अवगुण्ठित और 'फट्' से अभिमन्त्रित कुशों द्वारा मार्जित कर मण्डप के भीतर ईशान कोण में बिखरा दे। फिर पुण्याहवाचन कर ब्राह्मणों को बिठाकर उक्त मण्डलों पर एक वेदी बनाए। साधक स्वयं पूर्व या उत्तर को मुख कर पद्मासन से बैठे।

दिशाओं में मङ्गल-कारी अंकुर-पात्र स्थापित करे। हाथ जोड़ कर बाएँ और दाएँ ओर क्रमशः गुरु और गणेश को नमन कर भूत-शुद्धि करे। कर-शुद्धि कर तीन बार ताली बजाये। दिग्बन्धन कर अग्नि-प्राकार द्वारा रक्षा-विधान करे। फिर ऋष्यादि-न्यास करे। मन्त्र के ऋषि गुरु-स्वरूप हैं, इससे सिर पर धारणीय हैं; छन्द अक्षर होने से जिह्वा में और देवता की भावना बुद्धि द्वारा होने से वे हृदय में स्थापनीय हैं। इस प्रकार न्यास कर मूल-मन्त्र से यथा-विधि प्राणायाम करे। फिर मातृका-न्यास, मन्त्र-न्यास, कराङ्ग-न्यास, षडङ्ग-न्यास, पीठ-न्यासादि यथाविधि कर देह-मय पीठ में इष्ट-देवता का ध्यान करे।

तब विधिपूर्वक अर्घ्य पात्र, उसके दक्षिण ओर प्रोक्षणी-पात्र और उत्तर ओर पाद्य व आचमनीय पात्रों को स्थापित करे। अपने को और पूजा-सामग्री को प्रोक्षित कर पीठ-न्यास के क्रम से अपनी देह में पीठ-देवताओं का पूजन, नैवेद्य को छोड़ गन्धादि उपचारों से कर उसी पीठ में पर-देवता का अर्चन करे। शेष कार्य गुरु-निर्देशानुसार सम्पन्न करे।

इसके बाद **'मण्डल'** का पूजन गन्धादि से कर कर्णिका के मध्य भाग को तण्डुलों (अक्षतों) से पूरित करे। उनके ऊपर कुशों को बिछाकर उनके ऊपर अक्षत से युक्त **'कूर्च'** को स्थापित करे। सत्ताइस लम्बे कुशों के मूल को छिन्न कर उनके अग्र भाग में ब्रह्म-ग्रन्थि लगाने से **'कूर्च'** बनता है। फिर आधार-शक्ति से लेकर पीठ-मन्त्र तक की उसमें पूजा करे। कूर्च के नीचे शिलारूढ़ा, शरच्चन्द्र-निभा, दोनों हाथों

में कमल-धारिणी '**आधार-शक्ति**' की पूजा करे। उसके सिर पर आसीन नीलाभ '**कूर्म**' का अर्चन कर, ऊपर ब्रह्म-शिला पर बैठे कुन्द-सन्निभ, चक्र-धारी '**अनन्त**' की पूजा करे, जो सिर पर तमाल-श्यामला, नील-कमल-धारिणी '**वसुन्धरा**' को धारण किए हैं। सागर-मेखला से स्फुरित वसुमती पृथ्वी की पूजा कर उसमें स्थित रत्न-मय '**द्वीप**' की, द्वीप में '**मणि-मण्डप**' की और मण्डप में साधक के अभीष्ट-दाता '**कल्प-तरु**' की पूजा करे। कल्पतरु के नीचे मण्डल से उज्ज्वल '**वेदिका**' की पूजा कर उसमें पुनः धर्मादि से पीठ-पूजा करे। केशरों में पीठ-शक्तियों की पूजा कर मध्य में हेमादि के बने '**कुम्भ**' (कलश) की स्थापना करे। 'पीठ' से 'कुम्भ' के ऐक्य की भावना कर कर्पूर-गन्ध-पुष्पादि से सुगन्धित क्षीर वृक्षों के कषाय से या पलाश की छाल के क्वाथ से या तीर्थोदक से उसे भरे। फिर उसमें वह्नि, सोमादि की कलाओं का पूजन कर मन्त्र के देवता की प्राण-प्रतिष्ठा कर अश्वत्थ (पीपल), पनस (कटहल), चूत (आम) के कोमल पत्तों को इन्द्रवल्ली लता से बांध कर उसे कल्पवृक्ष-स्वरूप समझते हुये उससे 'कुम्भ' के मुख को ढँक दे। तब '**कुम्भ**' को दो रेशमी वस्त्रों से लपेटे और संस्थापन, सन्निधान, सन्निबोधन, सकलीकरण, अवगुण्ठन, अमृतीकरण और परमीकरण आदि कर्म मुद्राओं सहित करे। फिर स्वागत, कुशल-प्रश्नादि से आरम्भ कर पाद्यादि उपचार प्रदान कर आवरण-पूजन तक की क्रियायें करे।

फिर पद्धति के अनुसार '**होम**'-कर्म कर '**दीक्षा**'-संस्कार हेतु शिष्य को दिव्य दृष्टि से देखकर शिष्य के चित्त को अपनी आत्मा से संयोजित करते हुये उसके अध्वों का शोधन करे।

अध्वादि-शोधन विधि

अध्वाएँ छः हैं—**१ कलाध्वा, २ तत्वाध्वा, ३ भुवनाध्वा, ४ वर्णाध्वा, ५ पदाध्वा** और **६ मन्त्राध्वा**। 'निवृत्ति' आदि ५ कलायें '**कलाध्वा**' कही जाती हैं। '**तत्वाध्वा**' शैवादि आगम के भेद से विविध-संख्यक है।

शैव-तत्व ३६ हैं, वैष्णव तत्व ३२, मैत्र(सांख्य)-तत्व २४ और त्रिपदात्मा (त्रिपुर) के १७ तत्व हैं। ३६ शैव तत्व हैं—१ शिव, २ शक्ति, ३ सदाशिव, ४ ईश्वर, ५ विद्या—ये पाँच शुद्ध तत्व हैं; १ माया, २ काल, ३ नियति, ४ कला, ५ विद्या, ६ राग, ७ पुरुष—ये ७ शुद्धाशुद्ध तत्त्व हैं; १ प्रकृति, २ बुद्धि, ३ अहङ्कार, ४ मन, ५ से ९ पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ, १० से १४ पञ्च कर्मेन्द्रियाँ, १५ से १९ पञ्च-तन्मात्राएँ और २० से २४ पञ्च-भूत—ये २४ अशुद्ध तत्त्व हैं, कुल ५+७+२४=३६ तत्त्व हैं।

३२ वैष्णव तत्व हैं—१ जीव, २ प्राण, ३ धीः(बुद्धि), ४ चित्त, ५ से ९ पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ, १० से १४ पञ्च कर्मेन्द्रियाँ, १५ से १९ पञ्च-तन्मात्राएँ, २० से २४ पञ्च-भूत, २५ हृत्पद्म, २६ से २८ तीन तेज (अग्नि, चन्द्र, सूर्य), २९ वासुदेव, ३० सङ्कर्षण, ३१ प्रद्युम्न, ३२ अनिरुद्ध।

२४ मैत्र (सांख्य) तत्त्व हैं—१ से ५ पञ्च-भूत, ६ से १० पञ्च-तन्मात्राएँ, ११ से २० दस इन्द्रियाँ, २१ मन, २२ गर्व (अहङ्कार), २३ बुद्धि (महत् तत्व) और २४ प्रधान (प्रकृति)।

१७ त्रिपद (त्रिपुरा) तत्व हैं—१-५ निवृत्ति आदि पञ्च-कलाएँ, ६ बिन्दु, ७ कला, ८ नाद, ९ शक्ति, १० सदाशिव, ११ प्रकृति, १२ आत्म-तत्व, १३ शिव-तत्व, १४ विद्या-तत्व, १५ पर-तत्व, १६ स्वयं (आत्मा), १७ सर्व-तत्त्व।

'**भुवनाध्वा**' भुवनों को, '**वर्णाध्वा**' वर्णों को, '**पदाध्वा**' वर्ण-समूहों को और '**मन्त्राध्वा**' मन्त्र-राशियों को कहते हैं।

गुरुदेव द्वारा शिष्य के उक्त छः अध्वानों का क्रमशः शोधन किया जाता है। शिष्य के पैर, गुह्य (गुदा), नाभि, हृदय, शिर और ब्रह्म-रन्ध्र को क्रमशः छूते हुये घृत-मिश्रित धुले हुये तिलों से **'ॐ अमुष्य अमुं अध्वानं शोधयामि स्वाहा'** इस मन्त्र से अलग-अलग आठ आहुतियाँ दे। इस प्रकार अध्वाओं को सहस्रार-स्थित शिव में लय कर पुनः सृष्टि-क्रम से उन्हें शिव से उत्पन्न करे। तब दिव्य दृष्टि से शिष्य को देख कर गुरु उसमें अपने चैतन्य को स्थापित करे। **'मूलं वौषट्'** से गुरु पूर्णाहुति देकर श्वेत वस्त्र से शिष्य की आँखें बन्द कर उसका हाथ पकड़कर हवन-कुण्ड की प्रदक्षिणा कराकर मण्डल पर ले आये। फूलों से उसकी अञ्जलि भरकर मूलमन्त्र का उच्चारण करते हुये देवता के प्रति कलश पर उससे पुष्पांजलि दिलवाये। फिर शिष्य की आँखों की पट्टी को हटाकर कुशासन पर बैठकर उसके शरीर में भूतशुद्धि के क्रम से देह का संहार कर पुनः नई देह उत्पन्न कर सभी न्यास करे। फिर घटस्थ इष्ट-देवता का पञ्चोपचार से पूजन कर सकलोकरण करे। शिष्य को मण्डल के बाहर ईशान कोण में अन्य मण्डल में—भोग की कामना हो, तो पूर्व-मुख और मुक्ति की कामना हो, तो उत्तर-मुख करके—बैठाये।

तदनन्तर पञ्च वाद्यों की ध्वनि एवं ब्राह्मणों के आशोर्वाद के साथ गुरु घट को हिलायें और उसके मुख पर रखे पल्लवों को उठाकर शिष्य के मस्तक पर रखें। फिर मन-ही-मन विलोम मातृका का पाठ करते हुये मूल-मन्त्र से शोधित जल द्वारा उन्हीं पल्लवों से शिष्य का अभिषेक करे।

अभिषेक-प्रकार

अभिषेक दो प्रकार का होता है—१ **शाक्ताभिषेक** २ **पूर्णाभिषेक**। अन्य मतानुसार **'राजाभिषेक'** और **'ज्ञानाभिषेक'** भेद हैं। **'राजाभिषेक'** में वैदिक क्रिया होती है। अवधूत गुरु 'शाक्ताभिषेक' करें। सभी कलशों का थोड़ा-थोड़ा जल लेकर मुख्य घट **'ब्रह्म-कुम्भ'** में छोड़ दे। फिर **'ब्रह्म-कलश'** को उठाकर अपने सामने रखे।

अभिषेक का फल और उसकी विधि

'अभिषेक' से सभी प्रकार को शान्ति होती है, सभी रोग दूर होते हैं। धन, कीर्ति, आयु की वृद्धि होती है। सभी सौभाग्य मिलते हैं और महा-पाप नष्ट हो जाते हैं। सभी आशाओं की पूर्ति होती है और मन्त्र के सभी दोष दूर होते हैं। सब उद्देश्य सिद्ध होते हैं, सभी तीर्थों में जाने का फल मिलता है। अभिचार का प्रभाव और सभी ग्रहों का दोष दूर होता है। भूतावेश, डाकिनियों का भय नष्ट होता है। तेज और बल की वृद्धि होतो है। तक्षक जैसे नाग-सर्प के विष की भी पीड़ा दूर हो जाती है।

'अभिषेक' से विप्र ब्रह्मत्व को, क्षत्रिय विप्रत्व को, वैश्य क्षत्रियत्व को और शूद्र वैश्यत्व को प्राप्त करता है। अभिषिक्त विप्र के लिये सुरा-पान विहित है। **'अभिषेक'** के बिना ब्राह्मण सुरा न पिये।

अभिषिक्त साधक **'कुल-पूजा'** करे; 'कुल-पूजा' कर चुकने पर **'पितृ-भूमि'** (श्मशान) में रहे; 'पितृ-भूमि' में रहने के बाद एकाकी वन में विहार करे, तो उसे देवों के लिये भी दुर्लभ सिद्धि मिलती है। **'कुलाचार'** के बिना सिद्धि नहीं मिलती। सुरा-पान कर 'विद्या' का जप करे। सुरा के अभाव में **'विजया'** और अनुकल्प निवेदित करे। भगवती काली का मन्त्र कुलाचार के बिना सिद्ध नहीं होता। **'अभिषेक'** के बिना जो 'कुल'-कर्म करता है, उसके पूजादि सभी कर्म अभिचार-रूप होते हैं। जो **'अभिषेक'** के बिना 'सिद्ध-विद्या' का उपदेश करता है, वह अनन्त काल तक नरक में रहता है। **'अधिवास'** पहले करे, फिर **'वृद्धि-श्राद्ध'** कर **'शिव-शक्ति-पूजन'** करे। तब विधिवत् 'गुरु का पूजन' कर सङ्कल्प-पूर्वक **'गुरु रवाण क'**

कर देवी का पञ्च-मकारों से पूजन करे। तब गुरु को प्रणाम कर 'अभिषेक' सम्पन्न करे। फिर शून्य गृह में, नदी के किनारे, बिल्व-मूल में, निर्जन वन में, श्मशान में, पर्वत पर, या देवालय में साधना करे।

शिव-शक्ति का पूजन कर न बहुत छोटा, न बहुत बड़ा, स्वर्ण या रजत का 'घट'-स्थापन करे। विशेषार्घ्य को अपने यन्त्र पर या त्रिकोण पर स्थापित करे। गङ्गादि नदियाँ, सभी समुद्र और सरोवर, स्वर्ग-पाताल-पृथ्वी के सभी तीर्थ 'घट' में प्रवेश करते हैं। 'श्रीं' से अभिमन्त्रित पल्लव, कूर्च-बीज 'हूं' से फल प्रदान करे, 'स्त्रीं' से उसे स्थिर करे। 'रं' से सिन्दूर, 'हसौः' से पुष्प दे। मूल-मन्त्र से दूर्वा देकर 'ॐ' से अभ्युक्षण करे। 'हुं फट् स्वाहा' से कुश द्वारा ताड़न करे। फिर उसमें 'पीठ' का चिन्तन कर उसमें देवी का आवाहन कर उनका पूजन करे।—सभी कर्मों में, विशेष कर षट्-कर्मों में, इसी विधि से 'घट'-स्थापन कर षोडशोपचारों से 'महा-पूजा' करे। फिर गुरुओं, साधकों, कुमारियों, कुल-स्त्रियों का सविधि पूजन कर 'अभिषेक' करने के लिए 'घट' को निम्न मन्त्र से हिलाये—

'ॐ' उत्तिष्ठ ब्रह्म-कलश ! देवताभीष्ट-सिद्धिदः। सर्व-तीर्थाम्बु-पूर्णेन पूरयास्य मनोरथम्। हं-क्लीं लं ह्रीं।

उक्त मन्त्रोच्चारण के समय वाद्य-ध्वनि होती रहे। तब गुरु हो, तो शिष्य का और पुरोहित हो, तो यजमान का 'अभिषेक' घटस्थ जल से करे। भूत-सङ्क्रम हो, तो अश्वत्थ के पत्तों से; मन्त्र-दोष हो, तो औडुम्बर (गूलर) के पत्तों से; यश, धन, आयु, तेज, श्री की कामना हो, तो आम के पत्तों से; सभी पापों के क्षय के लिये तुलसी की मञ्जरी से; सब तीर्थों में जाने का फल पाने के लिये बिल्व-पत्रों से; स्त्री-कृत दोषों की शान्ति के लिये कुशों से; नारियों के असौभाग्य को दूर करने के लिए दूर्वा से और सभी कर्मों की पूर्ति तथा मन्त्र-सिद्धि के लिए आम के पत्तों से 'अभिषेक' करे।

विनियोग एवं अभिषेक के मन्त्र

अस्याभिषेक-मन्त्रस्य श्री दक्षिणामूर्ति ऋषिः। अनुष्टुप् छन्दः। शक्तिः देवता। सङ्कल्प-सिद्धि-प्राप्तये विनियोगः।

ॐ राज-राजेश्वरी देवी भैरवी काल-भैरवी। श्मशान-भैरवी देवी त्रिपुरानन्द-भैरवी।
त्रिकूटा त्रिपुरा देवी तथा त्रिपुर-सुन्दरी। त्रिपुरेशी महा-देवी तथा त्रिपुर-कारिका।
त्रिपुरा-नन्दिनी देवी तथैव त्रिपुरातनी। एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्र-पूतेन वारिणा ॥ १
छिन्नमस्ता महा-देवी तथा चैक-जटेश्वरी। तारा च जय-दुर्गा च शूलिनी भुवनेश्वरी।
त्वरिताख्या महादेवी तथैव च त्रि-खण्डिका। नित्या च नित्य-रूपा च वज्र-प्रस्तारिणी तथा।
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्र-पूतेन वारिणा ॥ २
अश्वारूढ़ा महेशानी तथा महिष-मर्दिनी। दुर्गा च वन-दुर्गा च श्रीदुर्गा भग-मालिनी।
तथा भगन्दरी देवी भग-क्लिन्ना तथा परा। सर्व-चक्रेश्वरी देवी तथा नील-सरस्वती।
सर्व-सिद्धिकरी देवी सर्व-गन्धर्व-सेविता। उग्रतारा महा-देवी तथा दक्षिण-कालिका।
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्र-पूतेन वारिणा ॥ ३
क्षेमंकरी महा-काली चानिरुद्ध-सरस्वती। मातङ्गिनी चान्नपूर्णा राज-राजेश्वरी तथा।
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्र-पूतेन वारिणा ॥ ४
उग्रचण्डा प्रचण्डा च चण्डोग्रा चण्ड-नायिका। चण्डा चण्डवती चैव चण्ड-रूपाति-चण्डिका ॥ एता० ५
उग्र-दंष्ट्रा महा-दंष्ट्रा शुभ-दंष्ट्रा कपालिनी। भीम-नेत्रा विशालाक्षी मङ्गला विजया जया ॥ एता० ६
मङ्गला नन्दिनी भद्रा कीर्तिर्लक्ष्मीर्यशस्विनी। पुष्टिर्मेधा शिवा साध्वी यशः शोभा जया धृतिः ॥एता० ७

विजया नन्दिनी भद्रा स्मृतिः शान्तिर्धृतिः क्षमा। सिद्धिस्तुष्टी रमा पुष्टिः श्रीर्वृद्धिश्च रतिस्तथा।
दीप्तिः कान्तिर्यशोलक्ष्मीरीश्वरी बुद्धिरेव च। शाक्री मायावती ब्राह्मी जयन्ती चापराजिता।
अजिता मानवी श्वेता दितिश्चादितिरेव च। माया चैव महा-माया मोहिनी क्षोभिणी।
कमला विमला गौरी शरण्याम्बुधि-सुन्दरी। दुर्गा क्रियारुन्धती च घण्टाकर्णा कपालिनी।
रौद्री काली च मायूरी त्रिनेत्रा चापराजिता। स्वरूपा बहु-रूपा च तथैव विग्रहात्मिका।
चर्चिका चापरा ज्येष्ठा तथैव सुर-पूजिता। वैवस्वती च कौमारी तारा माहेश्वरी परा।
वैष्णवी च महा-लक्ष्मीः कार्तिकी कौषिकी तथा। शिव-दूती च चामुण्डा मुण्ड-माला-विभूषिता ॥ एता० ८
इन्द्रो वह्निर्यमश्चैव नैर्ऋतो वरुणस्तथा। पवनो धनदेशानौ ब्रह्मानन्तौ दिगीश्वराः ॥ एता० ९
सम्वत्सरश्चायनौ च मासाः पक्षौ दिनानि च। तिथयश्चाभिषिञ्चन्तु मन्त्र-पूतेन वारिणा ॥ १०
रविः सोमः कुजः सौम्यो गुरुः शुक्रः शनैश्चरः। राहुः केतुश्च सततमभिषिञ्चन्तु ते ग्रहाः ॥ ११
नक्षत्रं करणं योगः अमृतं सिद्धिरेव च। दग्धं पापं तथा भद्रा योगा वाराः क्षणास्तथा।
वार-वेला काल-वेला दण्डा वृद्धादयस्तथा। अभिषिञ्चन्तु सततं मन्त्र-पूतेन वारिणा ॥ १२
असिताङ्गो रुरुश्चण्डः क्रोध उन्मत्त-सञ्ज्ञकः। कपाली भीषणश्चैव संहारोऽष्टौ च भैरवाः ॥ अभि० १३
डाकिनी-पुत्रकाश्चैव राकिणी-पुत्रकास्तथा। लाकिनी-पुत्रकाश्चान्ये काकिनी-पुत्रकाः परे।
शाकिनी-पुत्रका भूयो हाकिनी-पुत्रकास्तथा। ततश्च यक्षिणी-पुत्रा देवी-पुत्रास्ततः परम्।
मातृणां च तथा पुत्रा ऊर्ध्व-मुख्याः सुताश्च ये। अधोमुख्याः सुता ये च उन्मुख्याश्च सुताः परे ॥एते०१४
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवाः ॥ एते त्वाम०॥१५
पुरुषः प्रकृतिश्चैव विकाराश्चैव षोडश। आत्मान्तरात्म-परम-ज्ञानात्मानः प्रकीर्तिताः।
आत्मनश्च गुणा ये तु स्थूलाः सूक्ष्मास्तथापरे ॥ एते० त्वाम० १६
वेदादि-वीजं हुं-वीजं स्त्री-वीजं मीन-केतनम्। शक्ति-वीजं रमा-वीजं माया-वीजं सुधाकरम्।
चिन्ता-रत्नं महा-वीजं नारसिंहं च शांकरम्। मार्तण्ड-भैरवं दौर्गं वीजं श्रीपुरुषोत्तमम्।
गाणपत्यं च वाराहं काली-वीजं भयापहम्। एते त्वाम० ॥१७
गङ्गा गोदावरी रेवा यमुना च सरस्वती। आत्रेयी भारती चैव सरयूर्गण्डकी तथा।
करतोया चन्द्रभागा श्वेत-गङ्गा च कौशिकी। भोगवती च पाताले स्वर्गे मन्दाकिनी तथा ॥ एता० १८
भैरवी भीम-रूपश्च शोणो घर्घर एव च। सिन्धु-तोय-ह्रदाः पान्तु तथा पाताल-सम्भवाः।
यानि कानि च तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च। तानि त्वाम० ॥ १९
जम्बु-द्वीपादयो द्वीपाः सागरा लवणादयः। अनन्ताद्यास्तथा नागाः सर्पा ये तक्षकादयः ॥ एते० २०
रतिश्च वल्लभा वह्नेर्वषट्-कूर्चमतः परम्। वौषट्-कारस्तु फट्कारमभिषिञ्चन्तु सर्वदा ॥२१
नश्यन्तु प्रेत-कूष्माण्डा राक्षसा दानवाश्च ये। पिशाचा गुह्यका भूता अभिषेकेण ताडिताः ॥२२
अलक्ष्मीः काल-कर्णी च पापानि सुमहान्ति च। नश्यन्तु चाभिषेकेण तारा-वीजेन ताड़िताः ॥२३
रोगाः शोकाश्च दौर्बल्यं दारिद्र्यं चित्त-विक्रिया। नश्यन्तु चाभिषेकेण वाग्वीजेनैव ताड़िताः ॥२४
लोकानुराग-त्यागश्च दौर्भाग्यमपि दुर्यशः। नश्यन्तु चाभिषेकेण मन्मथेनैव ताड़िताः ॥२५
तेजोह्रासो बल-ह्रासो बुद्धि-ह्रासस्तथैव च। नश्यन्तु चाभिषेकेण शक्ति-वीजेन ताड़िताः ॥२६
विषापमृत्यु-रोगश्च डाकिन्यादि-भयं तथा। घोराभिचाराः क्रूराश्च ग्रहा नागास्तथापरे।
नश्यन्तु चाभिषेकेण काली-वीजेन ताड़िताः ॥ २७
नश्यन्तु चापदः सर्वा सम्पदः सन्तु सुस्थिराः। अभिषेकेण शाक्तेन पूर्णाः सन्तु मनोरथाः ॥ २८

अभिषेक करने के बाद बचे जल से शिष्य को आचमन कराकर देवता-स्वरूप शिष्य का---'सकलीकरण' करे। तब शिष्य उठकर शुद्ध वस्त्र पहन कर आचमन कर चुपचाप गुरु के पास आकर बैठे। अभिषेक द्वारा शिष्य में आविर्भूत देवता का अपने देवता से ऐक्य चिन्तन करते हुए गुरु गन्ध-पुष्प-धूप-दीप से उसका पूजन कर शिष्य के मस्तक पर हाथ रख देय मन्त्र का १०८ बार जप करें। फिर शिष्य के हाथ में जल देकर उसके दाएँ कान में ऋष्यादि-सहित मन्त्र को तीन बार सुनाएँ। मन्त्र प्राप्त कर शिष्य उसका आठ बार जप करे। तब गुरु, मन्त्र और देवता के ऐक्य की भावना करते हुये शिष्य देवतात्मक गुरु को दण्डवत् प्रणाम कर उनके दोनों चरणों को अपने सिर से लगाए और अपने शरीर, अर्थ, प्राणादि सर्वस्व को उन्हें अर्पित करे। इस प्रकार दीक्षा पाकर शिष्य गुरु को प्रसन्न करनेवाले कार्य करे। तदनन्तर भोजन, दक्षिणादि से ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करे।

यह सर्व-समृद्धि-दायिनी '**क्रियावती दीक्षा**' की विधि है। दीक्षा के बाद तीन दिन तक गुरु के पास रहे, अन्यथा सञ्चारिणी शक्ति गुरु के पास वापस लौट आती है।

'आणवी' दीक्षा

'**आणवी दीक्षा**' दस प्रकार की है—१ '**स्मार्ती**' विदेश-स्थित शिष्य को स्मरण कर गुरु उसके तीनों पापों को दूर करते हैं। २ '**मानसी**' में अपने पास बैठे शिष्य को देखकर मन में चिन्तन कर उसके तीनों मल नष्ट करते हैं। ३ '**यौगी**' में योग द्वारा शिष्य की देह में प्रवेश कर उसको आत्मा को निर्मल करते हैं। ४ '**चाक्षुषी**' में गुरु यह ध्यान कर कि '**मैं शिव हूं—शिवोऽहम्**', शिष्य को करुणामयी दृष्टि से देखकर सभी पापों से मुक्त करते हैं। ५ '**स्पार्शिकी**' में गुरु पर-शिव-रूप होकर शिष्य के सिर पर '**शिव-हाथ**' रखकर अपने मन्त्र का स्पर्श कराकर उसका कल्याण करते हैं। '**शिव-हाथ**' की विधि यह है कि गुरु अपने दाएँ हाथ में अपने गन्धाष्टक द्वारा मण्डल बनाकर उसमें सविधि देव-पूजन करें। ६ '**वाचिकी**' में गुरु अपने मुख से मन्त्र-न्यासादि बताते हैं। ७ '**मान्त्री**' में जैसे दीपक से दीप जलाते हैं, वैसे-ही मन्त्र-न्यास से युक्त हो गुरु शिष्य को मन्त्र देते हैं। ८ '**हौत्री**' में कुण्ड या स्थण्डिल में सविधि अग्नि स्थापन कर अध्वान-क्रम से शोधन कर दीक्षा देते हैं। ९ '**शास्त्री**' में सेवा-शुश्रूषा करनेवाले भक्त और योग्य शिष्य को गुरु शास्त्रीय ज्ञान कराते हैं। १० '**अभिषेचिका**' में कुम्भस्थ शिव और शिव-पत्नी की पूजा कर गुरु कुम्भ-जल से शिष्य का अभिषेक करते हैं।

वर्ण-मयी दीक्षा

आगम में यह दीक्षा बताई है। वर्ण (अक्षर) पुरुष और प्रकृति-स्वरूप हैं, शरीर भी पुरुष और प्रकृति-स्वरूप हैं। इसी से गुरु शिष्य की देह में वर्णों का न्यास करते हैं, फिर परमात्मा से शिष्य के चैतन्य का संयोजन कर अपने देव-भाव-हेतु आज्ञा-विधान से उस-उस स्थान से युक्त वर्णों का प्रतिलोम-क्रम से संहार करते हैं अर्थात् अग्रिम-स्थानस्थ वर्ण को पूर्व-स्थानस्थ वर्ण में लय करते हैं। इस प्रकार शिष्य विलीन-तत्व होकर दिव्य-देह-धारी होता है। फिर गुरु सृष्टि-क्रम से पुनः उसी परमात्मा से उन-उन वर्णों को यथा-विधि अर्थात पूर्व-स्थानस्थ वर्ण से अग्रिम स्थान के वर्ण को उत्पन्न कर शिष्य की देह में उनका न्यास कर चैतन्य की स्थापना करते हैं। इससे शिष्य में परमानन्द-मय देव-भाव उत्पन्न होता है।

ज्ञान-दायिनी यही '**वर्ण-मयी दीक्षा**' कही गई है।

कलावती दीक्षा—इस दीक्षा का विवरण 'हिन्दी-तन्त्रसार' पृष्ठ ४५ पर द्रष्टव्य है।

वेध-मयी दीक्षा—यह दीक्षा प्रचलित नहीं है। इसे 'शारदातिलक तन्त्र' पाँचवें पटल में देखें।

क्रम-दीक्षा की विधि

'कामाख्या-तन्त्र' के ३२ वें पटल में भगवान् शिव का कथन है कि कलियुग में **'क्रम-दीक्षा'** के बिना सिद्धि नहीं मिलती। अभिमन्त्रित पारद से विद्ध हो जैसे लौह स्वर्ण बन जाता है, वैसे ही **'क्रम-दीक्षा'** के प्रभाव से आत्मा शिवत्व को प्राप्त कर लेती है।

पहले काली, तारा और तब सुन्दरी—यही **'क्रम-दीक्षा'** के नाम से विख्यात है। दीक्षा, अभिषेकादि क्रम से उक्त देवताओं की क्रमशः साधना करने में सिद्धादि विचार, अधिकार या मन्त्र-शोधनादि की चिन्ता न करे। गुरु-मुख से मन्त्र पाकर क्रमशः पुरश्चरण-विधि से उनकी पूजा करे।

प्रथम दिन शिष्य संयतात्मा, जितेन्द्रिय होकर रहे। द्वितीय दिन उपवास रखे और तृतीय दिन गुरु **'दीक्षा'** संस्कार करें। शिष्य से **'कुलीनत्व'** स्वीकार कराकर मन्त्रों को बताये। भ० काली का एकाक्षर, त्र्यक्षर या ३२ अक्षरों का मन्त्र सुनाये। इसी प्रकार द्वितीया (तारा) का। तृतीया (षोडशी) का त्रिकूटात्मक मन्त्र बताये। क्रम से एक दिन में या एक-एक वर्ष के अन्तर में दीक्षा-पूर्वक मन्त्र-दान करे। शिष्य गुरु को यथा-शक्ति दक्षिणा प्रदान करे। भाग्य से ही यह सिद्धि-दायिनी **'क्रम-दीक्षा'** मिलती है।

पत्र-रत्न-दीक्षा

मृत व्यक्ति के भी साथ विशेषतया विद्या (शक्ति) मन्त्र रहते हैं। मन ही मनुष्य के पूर्व-कर्मों की अनुभूति कराता है। तभी 'दीक्षा' के प्रति उसकी प्रवृत्ति होती है। अतः पूर्वाजित विद्या का उद्धार यत्नपूर्वक करना चाहिये।

वकुल (अगस्त), अश्वत्थ (पीपल) और वट (बरगद) के पत्ते रत्नों के समान श्रेष्ठ हैं। वट-पत्र पर रक्त-चन्दन से शक्ति का, अश्वत्थ-पत्र पर श्वेत-चन्दन से विष्णु का और वकुल-पत्र पर भस्म से शिव का मन्त्र लिखे। ७-७ पत्तों (सप्तकों) पर प्रत्येक का मन्त्र लिख कर मन्त्र के देवता की प्राण-प्रतिष्ठा कर यथा-शक्ति उपचारों से पूजा करे। सूर्य को अष्टाङ्ग अर्घ्य (१ जल, २ दुग्ध, ३ कुशाग्र, ४ घी, ५ दही, ६ मधु, ७ लाल चन्दन, ८ करवीर) निम्न मन्त्र से दे—

ॐ भो देव ! पृथिवी-पाल ! सर्व-शक्ति-समन्वित ! ममार्घ्यं च गृहाण त्वं पूर्व-विद्यां प्रकाशय।

फिर निम्न मन्त्र से प्रार्थना कर एक पत्ता उठा ले—

ॐ सूर्यः सोमो यमः कालो महा-भूतानि वै। एते शुभाशुभस्येह कर्मणो नव साक्षिणः॥
सर्व-देवाः शरीरस्थाः मम मन्त्रस्य साक्षिणः। पूर्व-जन्मार्जितां विद्यां मम हस्ते प्रदापय॥

उक्त पत्ते को गुरु को दे, जो अक्षरों का उद्धार कर **'सेतु'** बताकर १०८ बार जपें। फिर गुरु आचमन, प्राणायाम, ऋष्यादि न्यास कर शिष्य के मस्तक पर हाथ रखकर मन्त्र को १०८ बार जपें। गुरु पूर्व को, शिष्य पश्चिम को मुख करके बैठें। शिष्य के दाएँ कान में ऋष्यादि-सहित मन्त्र को तीन बार और बाएँ कान में एक बार सुनाएँ। स्त्री और शूद्र को इसके विपरीत अर्थात् बाएँ कान में तीन बार और दाएँ कान में एक बार सुनाएँ। गुरु से महा-विद्या को प्राप्त कर शिष्य १०८ बार जप करे। अन्त में गुरु को, गुरु-पुत्र को, गुरु-पत्नी को यथा-शक्ति दक्षिणा प्रदान कर भोजन-वस्त्रादि से प्रसन्न करे।

गुरु के प्रसन्न होने से देवता प्रसन्न होते हैं और देवता के प्रसन्न होने से मन्त्र सिद्ध होता है। इसमें सन्देह नहीं। कलियुग में **'पत्र-रत्न'** की विधि से दीक्षा देने से अवश्य मन्त्र-सिद्धि मिलती है।

प्रबल 'कलि'-लक्षण, 'कलि'-शान्ति के उपाय और 'कलि' के गुण

'हिन्दी महा-निर्वाण तन्त्र' चौथे उल्लास (पृष्ठ १७ से १९) में यह सारा विषय दिया है।

• • •

2848
10.10.67

SVB Library
S.No.- 9
Subject- Tantric Meditation
Sub. Code- TM

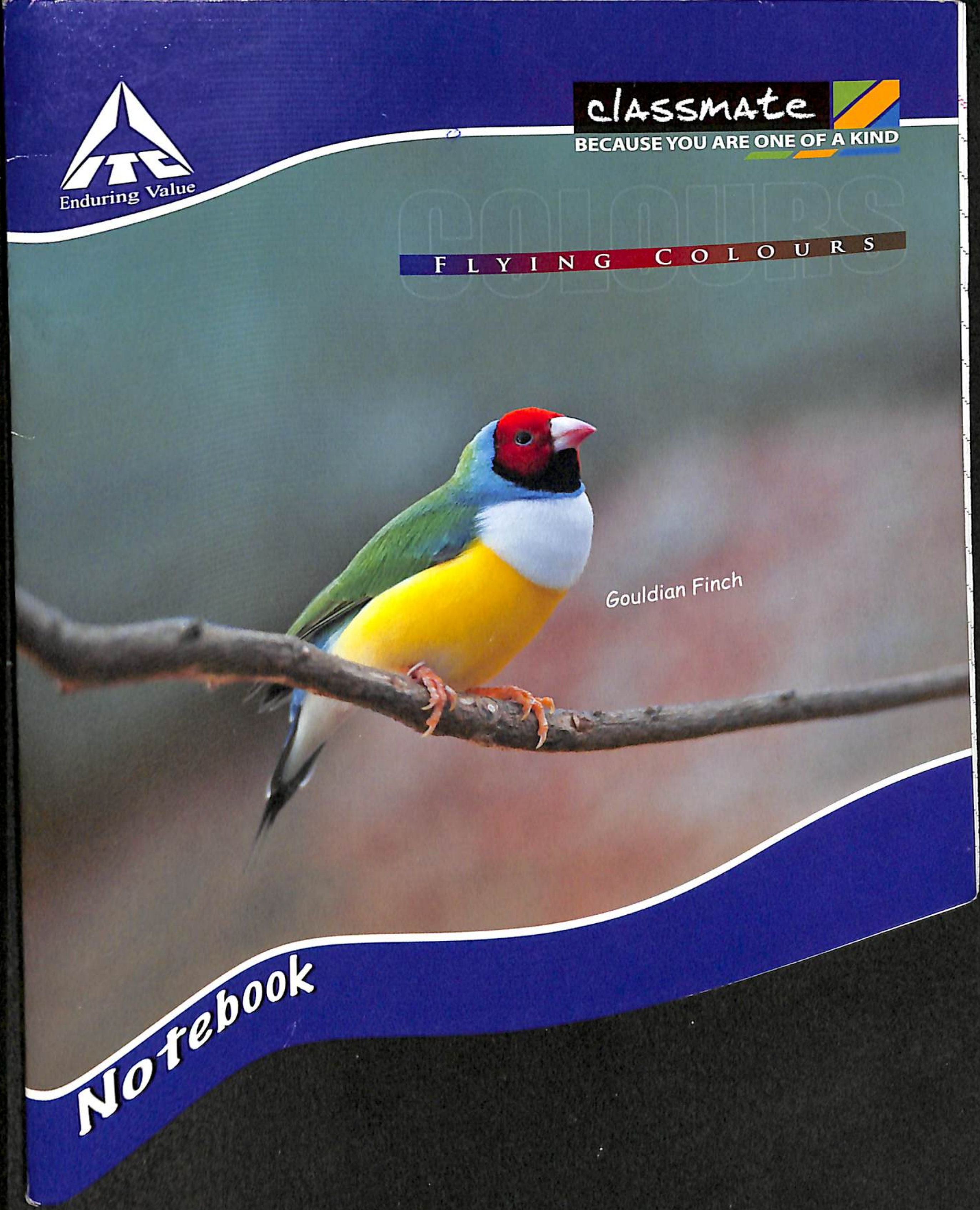
Enduring Value
classmate
BECAUSE YOU ARE ONE OF A KIND
COLOURS
FLYING COLOURS
Gouldian Finch
Notebook